ज़मीन के पुराने पट्टे जल रहे हैं
पुरानी ज़िन्दगी जल रही है

ज़मीन के नये पट्टे दिये जा रहे हैं।
ज़िन्दगी की नयी सुबह हो रही है →

मैं एशियाई और प्रशान्त क्षेत्रीय शान्ति सम्मेलन के एक भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से चीन गया था। यह सम्मेलन पिछले साल २ अक्तूबर से १३ अक्तूबर तक पीकिंग मे हुआ था।

मैं २२ सितम्बर को नये चीन मे दाखिल हुआ और ७ नवम्बर को बाहर आया।

लौटते समय मैंने क़रीब तीन रोज हांगकांग में गुजारे। मैंने १० ता० की दोपहर बैंकाक के लिए बी० ओ० ए० सी० का हवाई जहाज लिया। शाम को ६ बजे बैंकाक पहुँचा। चौबिस घण्टे बैंकाक में गुजारे, ११ की शाम को फिर हवाई जहाज पकडा और आधी रात डमडम के हवाई अड्डे पर उतरा।

अपने संस्मरणों की इस छोटी सी किताब में मैं सिर्फ उन सीधी-सादी मानवी बातों की चर्चा करूंगा जिनका संस्कार मेरे मन पर है, जो कि एक साधारण भारतीय नागरिक का मन है जिसका अकेला दावा यह है कि उसे अपने देश से प्यार है।

बहुत सी किताबें हैं और बड़ी अच्छी अच्छी, योग्य व्यक्तियों की लिखी हुई किताबें हैं जिन्होने नये चीन की कहानी कही है, उसकी महान आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सिद्धियों की कहानी।

बहुत से अंग्रेज और अमरीकी लेखकों ने अपने हवाले दिये हैं और खुद हमारे देश में दो महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमें से एक विख्यात गांधीवादी नेता पंडित सुन्दरलाल की है और दूसरी प्रगतिशील पत्र 'ब्लिट्ज़' के सम्पादक करन्जिया की है। उन दोनों का चित्रफलक बड़ा है

और उन्होंने बहुत से आंकड़ों और नक्शों की मदद से नये चीन की चौमुखी प्रगति का विवरण दिया है।

इस छोटी सी किताब में आपको ऐसी कोई चीज नहीं मिलेगी। इसका दायरा बहुत छोटा है। जिन साधारण पुरुषों और स्त्रियों के सम्पर्क में मैं आया, उनके माध्यम से मैंने चीन की जिन्दगी के नये लय-सुर को समझने की कोशिश की है। इस दृष्टिकोण से भी यह कहानी कहना जरूरी था क्योंकि इन्हीं साधारण पुरुषों और स्त्रियों ने जनक्रान्ति के लिए संघर्ष किया और वे ही आज फिर अपने तहस-नहस देश को बनाने में लगे हुए हैं। वे ही नये चीन के निर्माता हैं।

अपने संस्मरण देते समय मैंने इस बात का ध्यान रक्खा है कि अतिरंजना से काम न लूँ। बहुत बार बात को बढ़ा चढ़ा कर सजा कर संवार कर कहना सत्य को कमजोर कर देता है। नंगे, अनलंकृत सत्य से बढ़कर शक्तिवान् कोई शब्द नहीं होता। इसलिए मैंने सच और केवल सच कहने की कोशिश की है। और इसीलिए मुझे विश्वास है कि अगर इस सत्य में कोई बल होगा तो वह मेघ-गर्जन के स्वर में अपनी बात बोलेगा...और मैं जानता हूँ कि मेघ का नाद किसी भी ढोल से बढ़कर होता है! अगर आज चीनी जिन्दगी नये प्रभात की आभा से दीप्त है तो वह इसीलिए कि यह नया प्रभात सत्य है। उसकी ज्योति और उसके रंग को कोई न देखे, यह नही हो सकता। मुझे लगता है कि मैंने उनके इस नये प्रभात को उनके चेहरे पर देखा, उनकी आँखो में देखा और उनके दृप्त, आत्मविश्वासी पदक्षेप में देखा।

और मैं केवल उसी का आभास आपको देना चाहता हूँ।
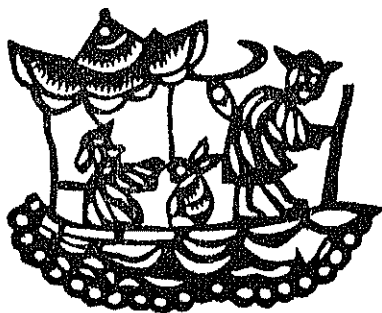
चिड़ियाँ

वाङ् शेन-सुन

जंगल

ली श्युङ्-त्साइ

बहुत दिनों की बात है चीन के किसी बड़े शहर में एक ग़रीब दर्ज़ी मुस्तफ़ा अपनी बीवी के साथ रहता था। उनके एक लड़का था जो कुछ भी काम-धाम नहीं करता था और आवारागर्दी मे ही सारा वक्त गंवा देता था। लड़के का नाम अलादीन था। मुस्तफ़ा बहुत ग़रीब था, इसलिए उनकी जिन्दगी के दिन बहुत भारी कटते थे। अक्सर ऐसा होता कि उनके घर में चूल्हा भी न जलता। जाहिर बात है कि मुस्तफ़ा इस तरह बहुत दिन न चल सकता था और वह जल्दी ही मर गया। बाप के मर जाने पर घर को चलाने की ज़िम्मेदारी अलादीन पर आ गई।

क़िस्मत की बात, एक बदमाश जादूगर की साजिश नाकाम हो जाने से अलादीन को एक जादू का चिराग़ हाथ लग गया। उस चिराग़ में यह सिफ़त थी कि जैसे ही उसका मालिक उसे रगड़ता, एक बड़ा भारी देव गुलाम की तरह हाथ बांधे मालिक का हुकुम बजा लाने के लिये सामने आकर खड़ा हो जाता था। अब क्या था, अलादीन के हाथ में चिराग़ आ जाने से अब उसे किसी चीज

की कमी न रही और इच्छा करने भर से उसे सब चीजें मिल जातीं जैसे खाने के लिए अच्छे से अच्छे पकवान, पहनने के लिए खूबसूरत से खूबसूरत, कीमती से कीमती कपड़े, रहने के लिए जवाहरात का आलीशान महल और इनके अलावा तमाम हीरों, मोतियों, लालों, नीलमों, पुखराजों का कभी न चुकने वाला खजाना। इस तरह अपने जादू के चिराग की मदद से अलादीन दुनिया भर के शाहजादों से ज्यादा अमीर हो गया और फिर उसे खूबसूरत शाहजादी बद्रुदबदर से शादी करने में कोई रुकावट बाकी न रही और वह बद्रुदबदर से शादी करके चैन से रहने लगा......

• काश नये चीन की सफलताओं की कहानी अलिफ़ लैला की इस कहानी की ज़बान में बयान की जा सकती! चीन में बहुत कुछ जो मैंने देखा वह मुझे जादू मालूम पड़ा और कई बार मुझे अलिफ़ लैला की यह कहानी याद आई जो मैंने अपने बचपन में आज से पचीस साल पहले पढ़ी थी।

मगर ऐसा करना शायद मुमकिन नहीं है क्योंकि ज़माना बहुत बदल गया है और इसलिए वह पुराना रूपक भी काम नहीं दे सकता। क्योंकि शायद यही झगड़ा उठ खड़ा हो कि बदमाश जादूगर से मुराद किससे है या कि उस देव का इशारा किसकी तरफ़ है या यही कि खुद अलादीन किसकी नुमाइन्दगी करता है! इसलिए अच्छा हो कि इस कहानी को और उसकी अन्योक्ति को वहीं का वहीं छोड़ दिया जाय।

मगर इस कहानी में आज हमारे काम की और कोई बात हो चाहे न हो, यह एक बात ज़रूर है कि वह दर्जी का बेटा अलादीन जो एक समय आवारों की तरह, भूखा-प्यासा चीथड़े लपेटे सड़कों पर मारा मारा घूमता था, अब उसकी वह हालत नहीं है। भले उसके पास खाने को बहुत अच्छे अच्छे पकवान न हों मगर भर पेट खाने को है, पहनने को कीमती कपड़े चाहे न हों मगर ऐसे मोटे-झोटे कपड़े ज़रूर हैं जो सर्दी-गर्मी से उसकी हिफाज़त करते हैं। और उसके सर पर छत भी है ही। पिछड़े हुए, अर्द्ध-औपनिवेशिक

चीन में होनेवाले ये परिवर्तन, जिनका प्रमाण भूख और बदहाली, वेश्यावृत्ति और भिखमंगपन के समूल नाश में मिलता है, इतनी तेजी से हो रहे हैं कि सचमुच यह चीज जादू जैसी मालूम होती है। चीन प्राचीन काल से अपने जादू के लिए विख्यात है। तो फिर क्या अजब कि नया चीन पुराने जादू में अपने नये जादू के वर्क जोड रहा है। भूत प्रेत वाला जादू नहीं बल्कि वह जादू जो करोड़ो लोगों की अवरुद्ध सृजनात्मक प्रतिभा को उन्मुक्त कर देने से पैदा होता है। जैसा कि पहले सोवियत रूस ने क या था, वैसे ही चीन अब यह दिखला रहा है कि एक बार जब समाज का क्रान्तिकारी परिवर्तन जनता की सृजनात्मक प्रतिभा का, उसकी विराट् शक्तियों का द्वार खोल देता है तो उस देश की दुःख और विपदा की ,कहानी परियों की कहानी में बदल जाती है जिसमें नाच है, गाना है, प्यार है, उल्लास है। चीन जैसा सामाजिक परिवर्तन ऐसे ही जादू के युग का सूत्रपात करता है, वैज्ञानिक जादू के युग का।

मगर सचमुच कैसी जादुई परिवर्तन...

एक समय चीन को 'एशिया का बीमार' कहा जाता था।

अब शायद ही कोई उसको इस नाम से पुकारने का साहस करे!

एक समय चीन को लम्बी लम्बी चुटइयावाले अफ़ीमखोरों का देश कहा जाता था।

अब चीन में न तो चुटइया है न अफ़ीम। चीन का अभिशाप, चीनी जनता के लिए साम्राज्यवादियों का जहर अफ़ीम अब सबके लिए नफ़रत की चीज है। अब कोई अफ़ीम नहीं खाता और जहाँ तक चुटइया का ताल्लुक है, मर्द तो दर-किनार औरतों को भी अब चोटी नहीं है।

एक समय चीन अकाल और बाढ, बाढ और सूखे का देश कहा जाता था।

अब कहीं अकाल नहीं है। अब हर आदमी के पास खाने के लिए काफ़ी है। इतना ही नहीं, अपनी जरूरत से कुछ ज्यादा ही है। जितना भी चावल हमारे देश ने उनसे माँगा, उन्होंने हमको भेजा। जहाँ तक बाढ़ और सूखे की बात है, प्रकृति को बदलने की उनकी विराट् योजनाएँ .उसकी व्यवस्था कर रही हैं। ऐसी ही एक योजना ह्वाई नदी को बाँधने की है।

इनयोजनाओं को दृष्टि में रखकर विश्वास के साथ यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि कुछ हीं वर्षों में ये विपदाएँ अतीत का दुःस्वप्न मात्र रह जायेंगी। बहुत हद तक उन पर विजय प्राप्त की भी जा चुकी है।

एक समय चीन संसार भर में अपनी सुस्वादु वेश्याओं और रखेलों के लिए विख्यात था!

अब न वेश्याएँ हैं और न रखेलें। अब वहाँ नारी को एक नई ही मर्यादा, एक नया ही सम्मान मिला है जिसका उसके बर्बर अतीत से कोई मेल नहीं है।

एक समय चीन अपने ब्लैक मार्केट के लिए मशहूर था और शांघाई उन डकैतों की राजधानी थी।

अब चीन में कहीं भी ब्लैक मार्केट नहीं है। शांघाई में भी नहीं।

एक समय चीन रिश्वतखोर नौकरशाहों का बहिश्त था।

अब सान फान और वू फान--आन्दोलनों के बाद ब्लैक मार्केट और रिश्वतखोरी दोनों का बुनियादी तौर से खातमा किया जा चुका है और कुछ लोग अगर कहीं कोनों-अंतरों में बाकी रह गये हों तो उन्हें नख-दन्त तोड़ कर बेकाम कर दिया गया है। जनता मुस्तैदी से अपने हितों की पहरेदारी करती है।

एक समय चीन अपनी गन्दगी के लिए मशहूर था और कहा जाता था कि चाइनामैन के शरीर से बदबू आती है।

अब चीन सफ़ाई का आदर्श है और किसी चाइनामैन के शरीर से बदबू नहीं आती — कम से कम उन लोगों में से किसी के शरीर से नहीं आती थी, जिनके सम्पर्क में हम आये और हम हजारों लोगों के सम्पर्क में आये जिनमें किसान मजदूर सभी थे।

लेकिन अब आइए हम इस एक समय की कहानी पर परदा डाल दें। इसमें शक नहीं कि एक समय चीन सभी गन्दी और पिछड़ी हुई और पतित चीज़ों का प्रतीक था। मगर वह आज की नहीं, एक समय की बात है! वह पुराने जर्जर साम्राजी-सामन्ती चीन की बात है। और यह नया चीन है, जनता

का चीन, जो पुराने चीन से उतना ही भिन्न है जितना अँधेरे से रोशनी।

नेपोलियन ने चीन के बारे में कभी यह भविष्यवाणी की थी कि चीन सोया हुआ एक देव है और किसी दिन अगर वह जागा तो दुनिया को हिला कर रख देगा। हम लोग चीन में छः हफ्ते रहे और इन छः हफ्तों में हमने नेपोलियन की भविष्यवाणी को सही उतरते देखा लेकिन एक अन्तर के साथ।

वह सोया हुआ देव अब जाग गया है, अच्छी तरह जाग गया है और गो कि उसकी नेपोलियन जैसी कोई भी साम्राज्य-विस्तार की भूख नहीं है, तो भी वह दुनिया को हिला रहा है और खास कर पूरब के देशों को—प्रकृति की एक विराट सत् शक्ति के रूप में, जन-शक्ति के एक गगनचुम्बी देवपुरुष के रूप में।

नाटक शुरू होने के पहले पर्दा उठता है न! सो चीन-यात्रा का नाटक शुरू होने के पहले मुझे भी एक पर्दा उठाना पड़ा, एक भारी सा खादी का पर्दा......

लोहे के पर्दों और बांस की टट्टियों की बात बहुत सुनी जाती है। लेकिन जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, वे पर्दे तो केवल एक बात थे मगर यह खादी का पर्दा तो खुरदुरा यथार्थ था। मैंने चीन के लिए पासपोर्ट की दरख्वास्त दी थी और उसे डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट 'शासन प्रबन्ध सम्बन्धी कारणों से' रद कर दिया था। मैंने जब इस फैसले के खिलाफ गृह मन्त्री के यहाँ अपील की, जो कि मुझे बरसों से जानते थे, तो उन्होंने बहुत भोलेपन से इस विषय में कुछ भी कर सकने में अपनी असमर्थता दिखलाई। और कारण उन्होंने यह दिया कि मेरी दरख्वास्त शासन प्रबन्ध सम्बन्धी कारणों से रद हुई है! मानो चाहे न मानो। मैं चला आया लेकिन यही सोचता रहा कि अगर डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ही सब कुछ है और उसके ऊपर कोई नहीं है जिसके यहाँ सुनवाई हो सके तो

फिर गृह मन्त्री की जरूरत ही क्या है ?

मगर खैर यह मेरा पहला अनुभव नहीं था। ऐसी ही चीज करीब पाँच साल पहले एक बार और हो चुकी थी। तब सोवियत यूनियन के पासपोर्ट की बात थी। मुझे महान ताजिक राष्ट्रकवि अली शेर नवई की पंचशती के सिलसिले में ताजिकिस्तान से निमंत्रण आया था। मगर तब भी मेरी सुनवाई नहीं हुई। उस बार और इस बार में फ़र्क बस इतना था कि उस बार सरकार मेरी दरख्वास्त को एकदम पी गई और हा ना कुछ भी नहीं कहा, जब कि इस बार उसने बड़ी मुस्तैदी से मेरी दरख्वास्त रद कर दी। तब भी खादी राज था और अब भी खादी राज है। इसलिए मानना पड़ता है कि खादी का पर्दा एक असलियत है। लोहे का पर्दा हो चाहे न हो, बाँस का पर्दा हो चाहे न हो मगर खादी का पर्दा तो है, यह मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ। मगर खैर यह बात भी मुझे यहाँ जोडनी ही चाहिए कि केन्द्रीय सरकार में निस्बतन् ज्यादा खुले दिमाग़ के लोग हैं। उन्होंने मुझे इतना बहुत खतरनाक नहीं समझा और पासपोर्ट दे दिया। ग़रज अब पासपोर्ट मेरे पास था। पासपोर्ट यानी वह जादू का क़ालीन जिस पर उड़ कर मैं चीन पहुँच सकता था !

अपने देश के करोड़ों लोगों की तरह मेरे मन में भी चीनी जनता के सफल स्वातन्त्र्य संग्राम के लिए बड़ा आकर्षण था और मेरे मन में जबर्दस्त चाह थी कि मैं अपनी आँख से जाकर देखूँ कि विजयी स्वातन्त्र्य संग्राम जनता की ज़िन्दगी के संग क्या कीमिया कर देता है। हमें १९४७ में आजादी मिली। चीनियों ने दो बरस बाद, १९४९ में, अपनी आजादी हासिल की। जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, हमारी आजादी से जनता की जिन्दगी में कोई परिवर्तन नहीं आया है और अगर कोई परिवर्तन आया है तो वह उनकी जिन्दगी को और भी दूभर बनाने वाला ही है। मेरी ही तरह आप ने भी बहुत लोगों को कहते सुना होगा कि कि इस कॉंग्रेस राज से तो अंग्रेज का राज ही अच्छा था ! लिहाजा मैं अपनी आँखों से देखना चाहता था कि आखिर वे कौन से करिश्मे हैं जो चीनियों ने तीन साल के छोटे से अरसे में कर

दिखाए हैं और जिनकी प्रशंसा वहाँ से लौटने वाले हर आदमी ने की है, चाहे मुक्त,कंठ से चाहे कुछ कम मुक्त कंठ से। सरकारी और गैर सरकारी प्रतिनिधि-मण्डल चीन होकर आये हैं और उन सब ने नये चीन की महान् आर्थिक और सामाजिक सफलताओं की बात कही है। कुछ ज़ोर से बोले हैं कुछ धीमे बोले हैं लेकिन शायद एक फ्रैंक मोरेज़ को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है जिसने चीनियों की प्रशंसा न की हो। उनकी प्रशंसा का आधार इतने कम समय में ऐसी समाज व्यवस्था का निर्माण है जिसमें से भूख और चोरी, वेश्यावृत्ति और चोर बाजारी और रिश्वतखोरी को देश निकाला दे दिया गया है, जिसमें नारी को स्वाधीनता मिली है और शिक्षा व संस्कृति की दिशा में कल्पनातीत प्रगति हुई है।

चीन में यह चीज़ें हो चुकी हैं और हिन्दुस्तान में हम, करना तो दूर रहा, इनकी कल्पना भी नहीं कर सकते। स्वभावतः मुझे सबसे ज़्यादा तंग करने वाला सवाल यही था कि आखिर नये चीन की इन सफलताओं का रहस्य क्या है? क्या मनुष्य के नाते चीनी हमसे श्रेष्ठतर हैं। क्या हमारे यहाँ के आदमियों में कोई खराबी है?

सदा से मेरा यह दृढ़ विश्वास रहा है कि जनता सब जगह एक है, कि हमारे पास इस शिकवे का कोई कारण नहीं कि हमारे देश की जनता खराब है। मैं समझता हूँ कि हमारे देश की जनता संसार की किसी भी जनता से घटकर नहीं है। विद्या में, बुद्धि में, प्रतिभा में, त्याग में, कर्मठता में, किसी बात में वह किसी से पीछे नहीं है। तब फिर गड़बड़ी क्या है? हम लोग भी उसी तरह प्रगति क्यों नहीं करते जैसे कि मैंने चीनियों को करते देखा?

मैं समझता हूँ कि गड़बड़ी के मूल में वह सामाजिक स्थिति है जिसमें हमारे देश की जनता अपने आप को पाती है, एक ऐसी सामाजिक स्थिति, जिसमें उसकी रचनात्मक प्रतिभा के विकास के लिए क्षेत्र ही नहीं है और इसी-लिए हमारी श्रेष्ठतम मानव-पूँजी बर्बाद हो जाती है। और नतीजा होता है वह रेगिस्तान जिसमें हमारा यह बाग़ तबदील होता जा रहा है, रेगिस्तान जिसमें सिर्फ़ नागफनी उग सकती है!

इसके विपरीत चीन एशिया को और सारी दुनिया को दिखला रहा है कि एक बार जनता की रचनात्मक प्रतिभा को राह मिल जाने पर हर करिश्मा उनके लिए आसान हो जाता है। वे चाह तो पहाड़ों को यहाँ से उठाकर वहाँ रख दें। सच, मेरे लिए तो चीन की कहानी की यही सीख है।

नया चीन पूरब के दुखी देशों को आजादी की राह दिखा रहा है, सच्ची आजादी की जो एक ही वक्त में धरती को भी आजाद करती है और आत्मा को भी आजाद करती है और आजाद करती है उनकी सोती हुई शक्तियों को, उनकी विराट् सृजनात्मक प्रतिभा को। यह चीन की आजादी ही है जिसने अब तक के सोते हुए पूरब में बिजली दौड़ा दी है और उपनिवेश जाग पड़े हैं। आज पूरब के देशों की जनता जो अपनी साम्राजी-सामन्ती बेड़ियों को काटने के लिए, अपने को आजाद करने के लिए, अपनी किस्मत अपने हाथ में लेने के लिए कृतसंकल्प है तो इसका भी रहस्य नये चीन में मिलता है। चीन उनको प्राक्-इतिहास के घेरे से निकल कर इतिहास की विशाल भूमि पर खड़े होने की क्रान्तिदीक्षा दे रहा है।

और हो सकता है कि इसीलिए खादी का पर्दा खड़ा किया गया है ताकि आड़ रहे.....

हमारा पैन-अमेरिकन क्लिपर वाइकिंग रात दो बजे डमडम के हवाई अड्डे से उड़ा। उसे ठीक आधी रात को उड़ना था मगर मौसम खराब होने की वजह से दो घण्टे के लिये रुकना पड़ा।

सबेरे साढ़े सात बजे हम लोग वैंकाक पहुँचे, नाश्ता किया और आध घण्टे बाद जो फिर उड़े तो अपनी घड़ियों से बारह बजे और हांगकांग की घड़ियों से तीसरे पहर चार बजे हांगकांग पहुँचे।

हांगकांग बहुत खूबसूरत शहर है। शक्ल-सूरत में वह बहुत कुछ बम्बई जैसा है। लेकिन हांगकांग का प्राकृतिक दृश्य शायद बम्बई से भी अधिक नयनाभिराम है। वह बम्बई से छोटा और अधिक सुगठित और शायद अधिक मनोरम है। पहाड़ियों की गोद में गहरा नीला चीन सागर बड़ा ही सुन्दर दीख पड़ता है। शाम होने पर जब चिराग जल जाते हैं तब इस पार काउलून से हांगकांग का दृश्य बिलकुल दीपमालिका जैसा जान पड़ता है। पहाड़ और समुन्दर दोनों यहाँ बड़े सुन्दर हैं।

लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि यह तसवीर का सिर्फ एक ही पहलू है। दूसरा पहलू अत्यन्त वीभत्स और ग्लानिकर है। हांगकांग की सड़कों पर घूमिए या कहीं होटल-रेस्तोरां में बैठिए तो ऐसा मालूम होता है कि आप किसी ब्रिटिश फौजी छावनी में बैठे हैं। दिन दहाड़े, नशे में चूर ब्रिटिश सिपाही लड़कियों को बगल में दबाए, फोहश बातें बकते हुए सड़क पर घूमते रहते हैं।

कभी शांघाई पूरब में गुनाहों का सब से बड़ा अड्डा था। अब हांगकांग के सिर वह सेहरा है। हांगकांग दूसरी शराबों के साथ साथ साम्राज्यवादी अभिमान की शराब पिये टामियों, ब्लैकमार्केट करने वालों, चोरों डकैतों, रंडियों और उनके दलालों, भिखमंगों और गिरहकटों, खूनियों और बदमाशों का शहर है। चोरी के माल का जबर्दस्त व्यापार वहाँ चलता है। चोरी के मालों की तरह आदमी की जिन्दगी भी हांगकांग में बहुत सस्ती है और दिन दहाड़े खून हो जाना आम बात है। जहाँ भी जाइये आपको सड़ती हुई मछली, शराब, सस्ते इतर, औरत के बिके हुए जिस्म और साम्राज्यवाद की बदबू मिलेगी। शाम होने के बाद कोई महिला तो क्या ही सड़क पर निकलेगी, कोई शरीफ़ आदमी भी नहीं निकल सकता। मै अपने होटल से निकल कर यों ही जहाज के घाट तक घूमने के लिये जाना चाहता था। मैं आपको कैसे बतलाऊँ कि रास्ते में मुझे कितने रिक्शेवाले और कुछ सफेदपोश दलाल भी मिले जो मुझे इस या उस छोकरी के यहाँ ले जाना चाहते थे ? हर कदम पर दलाल थे और मानना होगा कि उन्हें अपने माल का इश्तिहार करना आता था : ...हुजूर, देखियेगा तो जानियेगा...अभी बिलकुल लड़की है.....सोलह की भी तो न होगी ...जरा चलकर तो देखिये..और और भी बहुत कुछ जो लिखा नहीं जा सकता।

उफ़, ऐसी बेशर्मी ! बड़ी वीभत्स चीज थी। आज भी सोचता हूँ तो मुँह का जायका खराब हो जाता है। मैं घाट तक नहीं जा सका और आधे रास्ते से ही लौट आया। मगर होटल में भी वही किस्सा जारी था.... व्हिस्कियों और लड़कियों का दौर चल रहा था और नंगी बेशर्म खिलखिलाहट

बुलबुले की तरह शाराब के प्याले से उठ रही थी।

यह है हांगकांग, आकर्षक और वीभत्स, सुन्दर और कुत्सित, अपरूप प्राकृतिक श्री और आदमी के पैदा किये हुए कोढ़ के ग़लीज दाग़—सब एक में गडमड और सचमुच यही है हागकांग—एक प्यारा शरीर जिसमें आत्मा नहीं है और जिसकी शिराओं में साम्राज्यवाद की पीप बह रही है।

मैंने कुछ चीनियो से बातें कीं। हागकाग की प्रायः निन्नानबे प्रतिशत आबादी इन्हीं की है। उनमें से कुछ पर तो वहाँ का रंग चढ़ गया है मगर अधिकाश अभी ठीक हैं, उनकी आत्मा स्वस्थ है। वे खड़े होकर, पच्चीस मील दूर नये चीन की सीमा की ओर देखते हें और उनकी निगाहों में प्यास होती है। मैंने एक चीनी को उंगली से पहाड की दूसरी तरफ इशारा करते हुए टूटी फूटी अंग्रेजी में कहते सुना : वे चीनी। हम चीनी। हम भाई भाई। वे खुश। हम कुत्ते। हे भगवान!

मैंने जब चीनी सीमा के लिये लोकल पकड़ी तो मेरे मन में एक ही बात गूँज रही थी कि वह दिन कब आवेगा जब हागकांग के पास अपने इस सुन्दर शरीर के अनुरूप ही सुन्दर आत्मा भी होगी।

हांगकांग से नये चीन के बार्डर स्टेशन शुनचुन की दूरी पच्चीस मील नहीं, एक युग है !

नये चीन की धरती पर पैर रखते ही फ़र्क मालूम होता है। महसूस होने लगता है कि यह हवा कुछ और है। जो लोग हाथ मिलाते हैं या गले मिलते हैं, वे भी कुछ और हैं। उनके चेहरे से मालूम होता है कि यह आजाद और खुश लोग हैं, कि यह भिखारियों और रण्डियों, दलालों और ठगों, पंडों और जिन्दगी से ऊबे हुए बुद्धिजीवियों की दुनिया नहीं बल्कि एक नई ही दुनिया है। इनके चेहरे नये हैं और आजादी ने उनको ये नये चेहरे दिये हैं। वे बहुत संयत स्वर में धीमे धीमे बात करते हैं मगर सुनने वाले को महसूस होता है कि उनके शब्दों में एक खास भरात्र है। जब वे हाथ मिलाते हैं तो लगता है कि उस हाथ मिलाने में कुछ ज्यादा सगापन, कुछ अधिक आत्मीयता है। उनको चलते हुए देखिए तो उनके क़दमों से उनके गहरे आत्मविश्वास की आहट मिलती है।

हांगकांग की ओर का आखिरी स्टेशन लोवू है और नये चीन का पहला स्टेशन शुनचुन है। एक छोटा सा लकड़ी का फाटक और दोनों ओर खड़े हुए कुछ सन्तरी इन दोनों दुनियाओं को एक दूसरे से अलग करते हैं। दोनों को अलग करने वाली वह चीज दो इंच से ज्यादा मोटी न होगी मगर दोनों हिस्सों में कैसा जमीन आसमान का फ़र्क है। उधर है लोवू, वीरान, उजड़ा उजड़ा सा गन्दा लोवू का स्टेशन और उस पर बैठे हुए वे मुसाफ़िर जिनके चेहरे भूखे और पीले हैं, जिनकी आँखें किसी चीज पर ज्यादा देर नहीं ठहरतीं और जो ऊट-पटांग, थके और उकताये हुए बैठे हैं। और इधर यह शुनचुन है जहाँ हर चीज कितनी साफ़-सुथरी और सुव्यवस्थित है और लोगों के चेहरे खुशी से दमक रहे हैं। मुसाफ़िरों का सामान प्लेटफ़ार्म पर एक तरफ़ क़ायदे से सँजाकर रक्खा हुआ है और कहीं कोई गन्दगी नहीं है। सभी मुसाफ़िर कुछ न कुछ कर रहे हैं। बुड्ढे लोग बेंचों पर बैठे गपशप कर रहे हैं। जवान लोग कैरम या शतरंज खेल रहे हैं। बच्चे मस्ती से इधर-उधर दौड़ लगा रहे हैं। एक बड़ी से मेज पर बहुत सी चीनी किताबें और पत्र-पत्रिकाएं रक्खी हुई हैं और कुछ लोग बैठे पढ़ रहे हैं। हर ओर शान्ति और व्यवस्था है। देखकर लगता है कि जैसे एक सुखी परिवार के लोग अपने घर के बरामदे में बैठे हों।

किसी भी खुले दिमाग़ के आदमी पर जो पहला जबर्दस्त असर पड़ता है वह शायद चारों ओर फैली हुई इसी खुशी और लोगों के आत्मविश्वास का है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि अगर किसी के मन में द्वेष नहीं है तो यह असम्भव है कि इस चीज का सस्कार उसके मन पर न पड़े। वह इतनी प्रबल है कि अपने संग बहा ले जाती है।

चारों ओर खुशी के इस वातावरण के अलावा जो दूसरी चीज मन पर तत्क्षण अपना गहरा असर डालती है और जिसका असर वक्त गुजरने के साथ और भी गहरा होता चलता है, वह है सफ़ाई। उसका अन्दाजा देना बहुत मुश्किल है और सुनने वाले को यकीन करने में शायद और भी मुश्किल होगी क्योंकि वह सफ़ाई का इतना ऊँचा स्तर है कि हम एक पिछड़े हुए, जाहिल, कृषि-प्रधान, अर्द्ध-औपनिवेशिक देश के संग उसका कुछ मेल ही नहीं बिठा पाते। चीन

हमारे देश से कुछ ज्यादा ही पिछड़ा हुआ रहा होगा, कम नहीं। तब फिर यह कैसे मुमकिन हुआ कि रातोंरात एक पिछड़ा हुआ देश इतना साफ़ और सफ़ाईपसन्द हो गया ? हमारा आश्चर्य और बढ जाता है जब हम इस बात को याद करते हैं कि एक समय चीन अपनी गन्दगी के लिए बदनाम था और कहा जाता था कि चीन के लोगों के शरीर से बदबू आती है। तब फिर यह चमत्कार कैसे हो गया ? चीन के लोग हमें अपने ही जैसे साफ़ और सुथरे नज़र आए और उनकी सड़कें और सिनेमा और आपेरा हाउस और पार्क और होटल और स्टेशन, शहर और गाँव सब इतने साफ़ हैं कि आज हम उस सफ़ाई की कल्पना भी नहीं कर सकते। मैंने योरप के देश नहीं देखे हैं लेकिन मुझे बहुत से लोग वहाँ मिले जो योरप के ही थे या वहाँ होकर आए थे। उन्होंने मुझे बतलाया कि यह सफ़ाई योरप के शहरों और गाँवों से भी कहीं बढ चढ़ कर है। उन्होंने बतलाया कि पीकिंग, पेरिस, लन्दन और न्यूयार्क से भी ज्यादा साफ़ है। तब सवाल उठता है कि यह चमत्कार कैसे सम्भव हुआ ? यह चमत्कार इसीलिए सम्भव हुआ कि इसके पीछे देश की करोड़ों जनता है। मुहल्ले मुहल्ले और गाँव गाँव कमेटियाँ बना दी गई हैं और हर आदमी अपने घर और पास-पड़ोस को साफ़ रखने में सच्ची दिलचस्पी लेता है और सफ़ाई विभाग के कर्मचारी, अन्य विभागों के लोगों की ही तरह, खूब जी लगाकर काम करते हैं, अपने देश को साफ़ रखना हर व्यक्ति अपनी निजी ज़िम्मेदारी समझता है। करोड़ों आदमियों को यह बात सिखाई गई है कि वह सफ़ाई को अपने राष्ट्र के सम्मान की चीज़ समझें। करोड़ों आदमियों के अन्दर सफ़ाई की आदतें डालना बहुत बड़ा काम है। मगर मानना होगा कि यह काम पूरा किया गया है और हर आदमी के अन्दर इस बात की कर्तव्य चेतना जगाई गई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जनता के सम्पूर्ण सहयोग के बिना कोई भी सफ़ाई विभाग जिसका आधार केवल पैसा है, कभी देश को ऐसा साफ़ नहीं रख सकता, चाहे कितना ही पैसा क्यों न खर्च किया जाय। यह सफ़ाई क्या चीज़ है इसको आप इस रूप में समझिए कि तमाम गन्दगी और ग़लाज़त और कूड़े करकट और मक्खियों, मच्छरों, खटमलों, चूहों,

पिस्सुओं और लावारिस कुत्तों के खिलाफ़ समूची क़ौम ने जंग छेड़ दी है। यक़ीन मानिए यह सच बात है कि कहीं कोई गन्दगी नहीं मिलती, न सिर्फ़ राजमार्गों पर बल्कि गलियों में भी, न सिर्फ़ शहरों में बल्कि गाँवों में भी। कमोवेश सब जगह बहुत कुछ एक ही सी सफ़ाई है। लोग यहाँ वहाँ थूकते नहीं और न सिगरेट के टुकड़े और जली हुई दियासलाइयाँ ही इधर उधर फेंकते हैं। वे इस बात का बहुत ध्यान रखते हैं कि थूकदानों और डस्टबिनों का इस्तेमाल करें। यह बात बहुत कुछ उनकी आदत में दाखिल हो गई है। कुछ लोग अब भी इधर उधर थूक देते हैं और गन्दगी फैलाते हैं लेकिन वे अपवाद ही हैं। आम तौर पर कोई ऐसा नहीं करता। मेरे सामने उस दिन की तसवीर है जब मज़दूरों के एक सांस्कृतिक भवन में घूमते समय हम में से किसी नें जली हुई सिगरेट का टुकड़ा बरामदे में फेंक दिया और एक मज़दूर ने ख़ामोशी से उसे उठा लिया और ले जाकर एक थूकदान में डाल दिया। बात बहुत छोटी थी मगर उसने हमारी पूरी नसीहत कर दी और हम आगे से ज्यादा सावधान रहने लगे।

यहाँ पर मैं तियेनृजिन की एक सरकारी सूती मिल की बात बतलाना चाहता हूँ। यह कपड़े की मिल थी मगर तमाम विभागों में उसका फ़र्श ऐसा साफ़ और चिकना था जैसा नाच के हॉल का होता है। रुई के तमाम टुकड़े हवा में उड़ रहे थे और फ़र्श पर यहाँ वहाँ गिर रहे थे मगर गिरते ही एक बड़ा सा झाडू आकर उन्हें साफ़ कर जाता था। एक आदमी उसी काम पर तैनात था और वह एकाग्र होकर बस यही काम कर रहा था।

इस सफ़ाई आन्दोलन का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है मक्खी मच्छर वग़ैरह की सफ़ाई जो कि सचमुच आन्दोलन के रूप में वहाँ पर चलाई गई थी और अब भी चल रही है। दुनिया जानती है कि चीन में अमरीकी चीनी जनता के खिलाफ़ कीटाणु युद्ध चला रहे हैं और अपने इस मानव संहार में मक्खियों, मच्छरों, पिस्सुओं, चूहों वग़ैरह का इस्तेमाल कीटाणुओं के वाहक के रूप में कर रहे हैं। इस लिहाज़ से इन कीड़े मकोड़ों की सफ़ाई चीनी जनता के लिए और भी जीवन मरण की समस्या बन जाती है। चीनियों की व्यवहार

बुद्धि तो प्रसिद्ध ही है। इसलिए जान पड़ता है उन्होंने यही तय किया है कि सारे कीड़े मकोड़ो की सफ़ाई कर डालेंगे ताकि न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी ! हम अपने देश से जब एक एक मच्छर, मक्खी, पिस्सू, चूहा बीन बीन कर खतम कर देंगे तब यह अमरीकी क्या करेंगे ? देखना है बच्चू, तुम डाल डाल तो हम पात पात ! मुझे तो इस सफ़ाई आन्दोलन के पीछे गहरे संकल्प का यही मनोभाव मिला।

यहाँ मैं एक छोटी सी घटना का ज़िक्र करना चाहता हूँ। पीकिंग से करीब दस मील दूर एक बड़े से गाँव में हम लोग गए थे। हमारी तहसीलों के बराबर था यह गाँव। इसका नाम काओ बेई पे था। दूसरी जगहों की तरह यहाँ भी देखने-दिखाने का नक्शा वही था। यहाँ गाँव के मुखिया ने हमें पहले गाँव के सम्बन्ध में बड़ी विशद रिपोर्ट दी और जो कुछ बतलाया जा सकता था सभी कुछ बतलाया जैसे कि गाँव में कुल कितनी जमीन पर काश्त होती है, कुल कितने परिवार हैं, कितने काम करने वाले हैं, आजादी के पहले किस चीज की कितनी पैदावार होती थी और आजादी के बाद अब कितनी होती है वगैरह वगैरह। यह सब तो ठीक था मगर मुझे उस वक्त हँसी आई जब मुखिया ने और बातों के साथ साथ यह भी बतलाया कि उस महीने में कुल कितने लाख, कितने हजार, कितने सौ कितनी मक्खियाँ मारी गईं ! मैं मानूँगा कि पहले मुझे यह चीज बड़ी दिल्लगी की मालूम हुई। लेकिन जब यह बात जरा गहरे उतरी और मैंने इस पर गौर किया तो फिर मुझे हँसी नहीं आई बल्कि अचरज मालूम हुआ। जाहिर सी बात है कि मुखिया ने ये आंकड़े अपने दिमाग से निकाल कर तो दिये नहीं होंगे। लोगों ने वाकई जितनी मक्खियों का खातमा किया होगा, उनका बाक़ायदा रेकार्ड रक्खा होगा, मुखिया को बराबर नियमित रूप से सूचना दी होगी तब तो उसके पास ये आंकड़े जमा हुए। और आप ज़रा यह सोचिए कि मक्खी और मच्छर मारने जैसे काम में लोगों की ऐसी गहरी राजनीतिक दिलचस्पी पैदा करना क्या कोई हँसी खेल है ? सच पूछिए तो यह स्तब्ध कर देने वाली बात है।

मैं समझता हूँ कि इस छोटे से उदाहरण से यह साफ हो गया होगा कि

नये चीन के सामाजिक स्वास्थ्य रक्षा आन्दोलन के पीछे देश के बच्चे बच्चे का कैसा कल्पनातीत सहयोग है। इसके बाद अब शायद आप मेरी बात का ज्यादा यकीन करें कि अपने लगभग पाँच हजार मील के सफर में मुझे एक मच्छर कहीं नहीं मिला और सिर्फ पाँच छः मक्खियाँ मिलीं ! बात इतनी बड़ी है कि विश्वास करने को जी ही नही चाहता मगर सच्ची है यह मैं हलफिया कह सकता हूँ। कैण्टन, पीकिंग, तियेन्त्सिन, नानकिंग, शांघाई, हांगचो,—कहीं भी मुझे एक मक्खी या मच्छर नहीं मिला। चन्द मक्खियाँ जो मिलीं वह ह्वाई नदी के तरी वाले इलाके में मगर वहाँ भी मच्छर नहीं मिले।

'पश्चिमी जनतन्त्र' अपनी इन्हीं सिद्धियों पर बड़ा गर्व करते हैं। लेकिन जब आप उसकी तुलना नये चीन के साथ करते हैं तो इस नतीजे पर पहुँचना ही पड़ता है कि चीन की सफलता कहीं बड़ी है। जरा गौर कीजिये कि देश कितना बड़ा है, कितनी गरीब जाहिल पिछड़ी हुई हालत से उसने शुरुआत की और कैसी बिजली की तेजी से इस काम को पूरा कर डाला। और इतने पर भी यह जनता के शासन की कोई मुख्य सिद्धि नहीं बल्कि गौण सी ही चीज है जब कि साम्राज्यवादी देशों के पास गर्व करने के लिये इसके अलावा और कुछ भी नहीं।

हमारे देश की ही तरह पुराना चीन भी गन्दा था क्योंकि वह पिछड़ा हुआ था। पिछड़ापन आखिर क्या चीज है? जब लोगों के अन्दर विकास करने का न तो सामर्थ्य हो न संकल्प तब उसी को तो पिछड़ापन कहते हैं? और संकल्प भी तो सामर्थ्य से ही आता है? इसी नियम को जब हम सफाई के क्षेत्र में लागू करते हैं तो इसका मतलब होता है कि साम्राजी-सामन्ती गुलामी और अत्याचार की पिछड़ी हुई हालत में जनता के अन्दर सफाई से रहने के लिए न तो सामर्थ्य होता है और न इच्छा ही। इच्छा उनके अन्दर इसलिए नहीं होती कि एक तो वे अशिक्षित होते हैं और सफाई से रहने के महत्व को नहीं समझते और दूसरे जहाँ उनकी जिन्दगी की बड़ी बड़ी समस्याओं का ही कोई हल न हो वहाँ सफाई सुथराई और सुघड़पन की चिन्ता भला किसे हो सकती है। रही सामर्थ्य की बात सो सामर्थ्य उनमें नहीं होता

क्योंकि वे भयंकर ग़रीबी के शिकार होते हैं। अक्सर उनके पास खाने के लिए नहीं होता और तन ढकने के लिए चीथड़े होते हैं और उनके रहने की जगह सुअर के बाड़े से भी गई-गुज़री होती है और सरकार को इसकी खाक धूल परवाह नहीं होती कि लोग कहाँ रहते हैं, क्या खाते हैं, कैसे अपना तन ढँकते हैं। जाहिर सी बात है कि यह सामाजिक हालत ऐसी नहीं है जिससे सफ़ाई की चेतना को बल मिले। नये चीन में लोगों के पास सफ़ाई से रहने का संकल्प भी है और सामर्थ्य भी। चीन में जो क्रान्तिकारी युग परिवर्तन हुआ है वह दूसरी चीजों ही की तरह उनकी लाजवाब सफ़ाई में भी दिखलाई देता है।

यह शीर्षक मैंने पीकिंग के मेयर पेंगचेन की दावत से लिया है। जिस हॉल में दावत थी, उसके सामने लकड़ी का एक बड़ा सा मेहराब तैयार किया गया था। यह मेहराब लाल कपड़े से ढँका हुआ था और उस पर सुनहले चीनी अक्षरों में यह चीज लिखी हुई थी। यह दावत भी एक ही चीज़ थी। बिना उसको अपनी आँख से देखे कोई इस बात का यकीन भी नहीं कर सकता कि इस तरह की दावत में इतनी मस्ती की जा सकती है। किसी तरह का कोई बन्धन नहीं था और सब जी खोल कर खुशियाँ मना रहे थे। मैं इसके बारे में आगे और विस्तार से बात करूँगा क्योंकि मैं समझता हूँ कि चीनी आतिथ्य सत्कार का यह एक चरम शिखर था। तोरन के ये शब्द 'शान्ति के देवदूतों, स्वागत !' बहुत अच्छी तरह उस दावत के मूड को बतलाते हैं। उनसे उन मस्तियों का तो कोई अन्दाजा नहीं मिलता जो कि हमने उस रात वहाँ पर कीं मगर मैं समझता हूँ कि इस चीज का पता जरूर बहुत अच्छी तरह लग जाता है कि तमाम चीनी जनता उन लोगों को कितना प्यार

करती है जो दुनिया में शान्ति और जीवन के पक्षधर हैं। अगर वे स्वागत मुर्दा, रस्मिया चीज होते तो उनके बारे में कुछ कहने की जरूरत न होती। लेकिन उनके बारे में कहना जरूरी है क्योंकि उनसे एक नये जागे हुए राष्ट्र के शान्ति-प्रेम और देशों के बीच आपसी भाईचारे की भावना का पता चलता है। सारे स्वागतों में एक ऐसी सच्ची मार्मिकता थी जो दिल को छुए बिना नहीं रह सकती थी। हर बार हर जगह उसी स्नेह की आवृत्ति होती थी लेकिन हर बार हर जगह मन गद्गद हो जाता था क्योंकि वह चीज़ सच्ची होती थी और दिल के तारों को छू जाती थी।

पहले मैं रेलवे स्टेशनों पर होने वाले स्वागतों को लेता हूँ।

प्लेटफार्म खचाखच भरा हुआ है। लोग स्वागत में बेतहाशा तालियाँ बजाये जा रहे हैं, नारे लगा रहे हैं, नाच रहे हैं। उनमें तरुणों और तरुणियों का प्राधान्य है मगर बूढ़े दादा दादी भी हैं और अपनी मांओं की गोद में नन्हें नन्हें दूधपीते गोलमटोल बच्चे भी हैं। छोटे छोटे लड़के लड़कियाँ लाल लाल स्कार्फ़ बाँधे खड़े हैं। ये यंग पायनियर हैं। सचमुच वह एक दृश्य होता...

गाड़ी रुकी। आप अपने डब्बे में से बाहर आये। प्लेटफार्म हो पिंग वान स्वे (शान्ति की जय, अमन जिन्दाबाद) चीन-भारत मैत्री जिन्दाबाद, दुनिया के सब देशों की जनता का भाईचारा जिन्दाबाद के नारों से गूँज रहा है। आप अभी अपने डब्बे से उतरे हैं और इधर उधर नज़र दौड़ा रहे हैं जब कि एक छोटा सा यंग पायनियर लड़का (चाहे लड़की) आपके पास जाता है, आपको पायनियर का सलाम देता है, फूलों का एक गुच्छा आपके हाथ में पकड़ा देता है और आपकी बाँह में अपनी छोटी सी बाँह डालकर आपके संग संग खड़ा हो जाता है। और फिर आप आगे बढ़ना शुरू करते हैं। और आपकी ऐसी ले-लपक होती है और लोग इतने सम्भ्रम में खड़े आपको देखते रहते हैं कि लगता है जैसे आप कोई बड़ा किला फतेह करके घर लौट रहे हों। उस वक्त आदमी अपने गरेबान में मुंह डालकर देखे तो उसे हँसी आये बिना न रहे। लेकिन उस वक्त भला किसे फुरसत है। प्लेटफार्म के दोनों ओर तालियाँ बजाते और गाते हुए लोग ठट के ठट खड़े हैं। इसी भीड़ में एक

से एक रंग बिरंगे कपड़े पहने वे खूबसूरत नाचने वाले भी खड़े हैं जिनकी कमर पर ढोल या मृदंग जैसी चीज बँधी है। और रंगों की तो ऐसी बहार है कि कुछ मत पूछिए। खून के से लाल और कत्थई और सुनहले और हरे और बैंगनी और गुलाबी और नीले—सभी रंगो का एक मेला सा लगा हुआ है। स्पष्ट ही चीनियों को रंगो से बहुत प्रेम है। यह भी सही है कि उन्हें शोख़ रंग बहुत भाते हैं लेकिन उस शोख़ रंग का जोड़ वह किसी हलके रंग से ऐसा मिलाते हैं कि शोखी ग़ायब हो जाती है और एक नई ही बात पैदा हो जाती है। उस वक्त जवान गलो से निकली हुई बुलन्द आवाजें हवा में गूंजती रहती हैं और आप धीरे धीरे आगे बढ़ते हैं तो आपको ऐसा महसूस होता है कि जैसे आप फूलों और रंगों, नाच और गानों, प्रेम और शान्ति की एक हरी भरी वादी में से गुज़र रहे हो।

और इस तरह एक नन्हें से यंग पायनियर के हाथ में हाथ डाले, बड़ा सा एक फूलों का गुच्छा लिये हुए, दोनों ओर खड़ी हुई स्वागत करती गाती हुई क़तारो के बीच और रंग-बिरंगे कपड़े पहने स्वागत नृत्य करते हुए लड़कों और लड़कियो के पास से आप आगे बढ़ते हैं और उस बस पर पहुँचते हैं जो आपको होटल ले जाने के लिए बाहर खड़ी है। आप तेज चलने की कोशिश करते हैं, (गोकि मैं समझता हूँ कि आप पूरी कोशिश नही करते क्योंकि इस दृश्य में ऐसा कोई सम्मोहन है जो आपको पीछे की तरफ़ खींचता है!) लेकिन आप तेज़ नहीं चल पाते क्योंकि बडी भीड है और आपको अगर हजारो नहीं तो सैकड़ों लोगों से तो हाथ मिलाना ही है। हो सकता है कि आप अपनी समझदारी में आकर खुद हाथ आगे न बढाएँ लेकिन जब हर क़दम पर दोनो तरफ़ से बीसियों हाथ आप को तरफ़ बढे हों तो आप उन हाथों को न पकड़ें, ऐसा कैसे हो सकता है? वे हाथ जो आपके दादा दादी और काका काकी की उम्र के लोगों के हाथ हैं और आपके भाई बहनों के हाथ हैं और जरा ज़रा से लड़कों और लड़कियों के हाथ हैं, यहाँ तक कि कभी कभी गोद के बच्चो के हाथ हैं जिन्हें माँ उठाकर हमारे हाथ में देना चाहती है। नहीं, यह हो नहीं सकता कि आप उन हाथों को न थामें। वह सचमुच विभोरता की सी स्थिति

होती है और कोई कितना ही मनहूस और घुन्ना क्यों न हो उस पर भी इस चीज का जादू चल ही जाता है। इस मुहब्बत का जादू कुछ ऐसा है कि आगे पीछे वह सबके पैर उखाड़ देता है और सबको अपने संग बहा ले चलता है। मैं कितनी ही कोशिश क्यों न करूँ, उस दृश्य का वर्णन नहीं कर सकता, शायद जादू कहने से ही उसका कुछ बोध हो। जब लाखों शान्तिप्रेमी, स्नेही लोग अपने प्यार को वाणी देते हैं तब यह अनोखा जादू पैदा होता है, यह जादू जो शराब की तरह रग रग में बहने लग जाता है।

मैंने जब इस चीज का जिक्र कलकत्ते पहुँचने पर एक दोस्त से किया तो उन्होंने कहा : आप कैसे कह सकते हैं कि इसके पीछे कोई सरकारी मजबूरी नहीं थी ? आप दावे के साथ कह सकते हैं कि सब लोग जो आये थे, स्वेच्छा से आये थे ?

मैं जानता हूँ आज की दुनिया में सरकारी मजबूरी बहुत सी चीजें करा लेती है। लेकिन मैं नहीं समझता कि कठोर से कठोर तानाशाह भी हजारों लाखों लोगों की सच्ची भावनाओं को साँचे में ढाल सकता है। कभी नहीं। ये हजारों-लाखों लोग जो जगह जगह हमारे स्वागत के लिए आये थे, और जिनकी सच्ची भावनाएँ उनके चेहरों पर ऐसी लिखी हुई थीं कि अन्धा भी पढ़ सकता था, उनको कोई भी सरकारी मजबूरी प्रेम और सौहार्द का ऐसा सफल अभिनय करने के लिए विवश नहीं कर सकती। कहीं ऐसा मुमकिन है कि जो भावनाएँ लोगों के दिलों में नहीं हैं, उनको वह इस तरह अपने चेहरे पर गिलाफ़ की तरह चढ़ा ले कि झूठ-सच की तमीज़ करना मुश्किल हो जाय ? मैं जानता हूँ कि चीन की अभिनय कला बहुत बढ़ी चढ़ी है, मैंने उनके नाटक और आपरा देखे हैं, लेकिन मैं समझता हूँ कि उनके लिए भी ऐसा धोखा खेलना मुमकिन नहीं क्योंकि यह चीज की नहीं जा सकती, क्योंकि दिल को दिल से राह होती है, क्योंकि यह अभिनय नहीं सच्चाई थी। अभिनय और सच्ची भावना दो अलग अलग चीजें होती हैं और दोनों में विवेक करना इतना कठिन नहीं है। सच्चाई मुझे उसी वक्त पता चल गई जब मैंने उन हाथों को अपने हाथों में लिया, उन हाथों को, जिनकी उंगलियों की पोर पोर में

उत्सुकता थी, वे हाथ जो हमारे पास तक पहुँचने के लिए आपस में लड़ रहे थे, जिनके पास अपनी जबान थी, वे सभी छोटे-बड़े हाथ, किसानों-मजदूरों के खुरदुरे हाथ और लेखकों-कलाकारों के अपेक्षाकृत सुकुमार हाथ, बच्चों के हाथ और बुड्ढों के हाथ, लड़कियों के हाथ और लड़कों के हाथ। उन हाथों को पकड़ना जैसे स्नेह और आत्मीयता की लहर में बह जाना था। उस वक्त आपके चेहरे पर भी एक कोमलता आ जाती है, वही कोमलता जो उनके चेहरों पर है और आपका हाथ मिलाना केवल हाथ मिलाना न रहकर जैसे एक शपथ बन जाता है, एक प्रतिज्ञा कि हम विश्व शान्ति को बचायेंगे, इस मुहब्बत और इस दोस्ती को बचायेंगे। यह दुनिया सचमुच बड़ी खूबसूरत जगह है जहाँ इतना प्यार और इतना सुख है और कोई भी भावुक आदमी जिसे इस दुनिया से प्यार है, इसको कभी तबाह नहीं होने दे सकता। वह आदमी सचमुच भुस का पुतला होगा जो इस ख़ूबसूरत दुनिया को मुट्ठी भर गिद्धों के खून-टपकते पंजों से बचाने के लिए आप्राण संघर्ष न करे। ये गोलमटोल, छोटे-छोटे, तुतलाते बच्चे मेरे अपने बच्चों की तरह हैं। ये लड़के-लड़कियाँ मेरे अपने छोटे भाई-बहन हैं और ये मजबूत तगड़े जवान भी जिनकी जिन्दगी मेरी जिन्दगी है, जिनकी इज्जत मेरी इज्जत है। और ये गालों और पेशानियों की झुर्रियाँ लिये बुड्ढे बाबा भी तो हमारे ही हैं। वे सब मेरा हाथ दबाते थे और जैसे बार बार मेरे कानों में कहते थे :

तुम मेरे भाई हो। मै तुम्हारा भाई हूँ। सभी इन्सान भाई भाई हैं। जनता सब जगह एक है। हम शान्ति चाहते हैं। संसार के सभी लोग शान्ति चाहते हैं! हमारे जिस्म का एक-एक रग और रेशा जानता है कि जनता कभी लड़ाई नहीं चाहती मगर तब भी बहुत बार लड़ाइयाँ हुई हैं और बहुत खून बहा है। यह दुनिया बहुत खूबसूरत जगह है। वह अब और इस जिल्लत को नहीं बर्दाश्त कर सकती कि भाई भाई का गला काटे। हमें इस जिल्लत को दफ़न करना ही होगा। हम जानते हैं कि यह काम आसान नहीं मगर तब भी हमें अपनी इस क़दीम जिल्लत को दफ़न करना ही होगा और इसके लिए हमें जंग करने वालों से जंग करनी होगी। जंग एक बाँझ डाकिन कुतिया है जो

सिर्फ लाशों को जनम देती है, लाशें जिन्हें गिद्ध खाते हैं। इसलिए हमें एक होना होगा ताकि हम एक होकर अपनी हिफ़ाज़त, अपने बाल-बच्चों की हिफ़ाज़त, अपने घरों और खेत खलिहानों की हिफाज़त के लिए लड़ सकें। यह सब नाच और गाना, यह जवानी और यह हुस्न, ये फूल और ये बच्चे, यह मुहब्बत और यह इज्जत इस सब को बचाना होगा। इस काम से मुँह नहीं चुराया जा सकता। लड़ाई हर चीज़ को तबाह कर देती है इसलिए हमको अपनी रक्षा के लिए और पास आना होगा, और भी पास, और भी, और भी...

लिहाज़ा आदमी हाथ मिलाता है और मिलाता जाता है, ज्यादा से से ज्यादा लोगों से और हर हाथ मिलाने में जैसे अपने दिल की सारी मुहब्बत और सारी गर्मी को उँड़ेल देता है। यहाँ तक कि यह चीज़ जैसे पागलपन की हद पर पहुँच जाती है जब कि नौजवान ताकतवर हाथ इन शान्तिदूतों को झंडों की तरह अपने कन्धों से ऊपर उठा लेते हैं और झंडा हवा में फहराने लगता है। ऊपर ही ऊपर एक कन्धे से दूसरे कन्धे की यात्रा हवा में फहराने से ज्यादा भिन्न नहीं होती। मुझे इस चीज़ का अनुभव नानकिंग में हुआ।

ग़रज यह कि जब आप इन सारी मधुर आपदाओं को पार करके बस में पहुँचते हैं और अपनी सीट पर बैठते हैं तो उस वक्त आपके दाहिने हाथ में दर्द हो रहा होता है मगर आपका दिल अन्दर ही अन्दर गुनगुनाता रहता है और आपकी आँखों में एक छोटा सा मोती चमक रहा होता है.....

सभी जगहों पर हमारा स्वागत बहुत ही शानदार था। लेकिन यांगजो नाम के उस छोटे से शहर में (बल्कि कस्बा कहिए उसे!) जो स्वागत हुआ उसने तो बिल्कुल चकित ही कर दिया। यांगजो हूवाई नदी के इलाके में पचास हज़ार की आबादी का एक छोटा सा शहर है। यांगजो ही वह मुकाम है जहाँ से हमलोग हूवाई नदी पर बने काओलिएंगचेंग और सेनखो नाम के बाँधों को देखने के लिए बसों के ज़रिये सौ मील अन्दर, देहातों में होकर गये थे। यह भ्रमण हमारी यात्रा के शेष पर्व में हुआ था और तब तक हम इन स्वागतों के आदी से हो चुके थे मगर यांगजो में मैंने जो चीज़ देखी उसकी तो हम कल्पना भी

नहीं कर सकते थे। कुल पचास हजार तो लोग और सड़क के दोनों तरफ़ आठ-आठ दस-दस आदमी एक के पीछे एक खड़े हुए कोई डेढ मील तक चले गये थे। ठट लगा हुआ था। ऐसा लगता था कि सिवाय बीमारों के अब घर के अन्दर कोई नहीं रह गया है और औरत, मर्द, बच्चे, बूढे, जवान सब सड़क पर निकल आये हैं। देखकर कुछ अजीब ही एहसास होता था। नौजवान माएँ अपने बच्चों को गोद में लिये हुए और बुड्ढी नानियाँ और दादियाँ पेशानी पर झुर्रियाँ लिये हुए। उस भीड में जो कि फ़ौज की क़तार की तरह खड़ी थी, नन्हे-नन्हे बच्चे भी थे और सत्तर, अस्सी, नब्बे साल के बुड्ढे भी, किशोर किशोरियाँ, तरुण-तरुणियाँ, मजदूर, किसान, विद्यार्थी–एक पूरा समुन्दर था जो उबला पड़ता था। उन्ही के बीच-बीच खूब चटख रंग के कपड़े पहने हुए नाचने वाले भी थे जिनकी कमर पर पखावज जैसा कोई बाजा बँधा हुआ था और जो तन्मय होकर नाच रहे थे। ऐस दृश्य जीवन में बहुत बार देखने को नहीं मिलते! और सच बात यह है कि मैंने इसके पहले ऐसी कोई चीज नहीं देखी थी। न तो ऐसा उत्साह और न ऐसा अनुशासन। कहना न होगा कि ये सारे लोग जो आये थे अपनी खुशी से आये थे, उनके संग किसी तरह की जोर-जबर्दस्ती नहीं की गई थी। उन्हे किसी फ़ौजी कानून के रस्से से बाँधकर यहाँ नहीं ले आया गया था। उन्हें हुकुम नहीं मिला था कि अमुक लोग तुम्हारे यहाँ से गुजरेंगे, उनकी अगवानी के लिए खड़े मिलना, नहीं तुम्हारे सिर पर डण्डा पड़ेगा! ऐसी कोई चीज नहीं थी। मुझे कहीं भी पुलिस या फ़ौज का एक सिपाही नहीं नजर आया और सिपाही तो दरकिनार उन चेहरों पर किसी तरह की जोर-जबर्दस्ती की, डर या घबराहट की कोई छाया नहीं थी। उसको भी जाने दीजिए, मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि उन चेहरों पर ऊब या उकताहट तक का कोई निशान नहीं था। वे खुली हुई किताब की तरह खुले हुए चेहरे थे जिनमें आप उनके नैसर्गिक आह्लाद, उनके सीधे-सच्चे प्यार और आदर भाव को पढ सकते थे। और यह चीज बिलकुल वही थी जो हमारे संग होती है, जब हमारा कोई प्यारा अतिथि हमारे घर आता है। इसमें रहस्य की ऐसी कोई बात नहीं। मगर याद रखने की जरूरत है कि

सिर्फ़ रहस्यमयी चीज़े ही आश्चर्यजनक नहीं होतीं, कभी-कभी एकदम सीधी-सादी साधारण चीजें सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक हो जाती हैं। जैसे लाखों-करोड़ो आदमियो की यह खुशी जिसका कारण इससे ज्यादा कुछ नहीं कि कुछ थोड़े से शान्ति-सैनिक, शान्ति के रखवाले हमारे देश मे आये हैं। कौन कहेगा कि यह कोई बड़े आश्चर्य की बात है मगर तब भी लोग हैं कि अपनी खुशी और उमंग से फूटे पड़ते हैं।

लेकिन मैंने जो बात अभी कहा है, मैं नही चाहता कि उसका यह मतलब लगाया जाय कि ये जो हज़ारो-लाखो आदमी शहर-शहर में गाँव-गाँव में इकट्ठा हुए इस चीज के पीछे कोई संगठन नहीं था। निस्सन्देह यह सारे स्वागत संगठित किये गये थे। लेकिन संगठन और फ़ौजी जकड़बन्दी दो चीजे हैं। दोनो के अन्तर को ठीक से समझ लेना जरूरी है क्योंकि बहुत बार कुछ लोग हर संगठन को फ़ौजी जकड़बन्दी की शकल में पेश करने की कोशिश करते हैं जब कि असलियत मे दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर है। संगठन फ़ौजी जकड़बन्दी में भी होता है लेकिन इस संगठन का आधार जनता की स्वेच्छा नही, ज़ोर जबर्दस्ती और आतंक होता है। और यहां मै जिस संगठन की बात कर रहा हूँ, उसका आधार जनता की स्वेच्छा थी। आप पूछ सकते हैं कि मैं कैसे इतने दावे के साथ यह बात कह रहा हूँ। जवाब में मैं सिर्फ़ उस साक्ष्य की दुहाई दूँगा जो कि मैंने अपनी आँखो से देखा। मैं समझता हूँ कि मेरी आँखें जल्दी धोखा नहीं खातीं और यहाँ तो धोखे की कोई गुञ्जाइश भी नही थी क्योंकि सारे वातावरण से यह बात स्पष्ट थी और लोगों के चेहरों पर उनके दिल की उमंग, उनका उल्लास, उनका प्यार सब कुछ लिखा हुआ था। जनता ने खुद संगठित होकर हमारा स्वागत किया था। कई विशाल जन-संगठनों ने मिलकर इस चीज की तैयारी की थी। चीन की शान्ति-कमेटी, मजदूर सभा, जनवादी-महिला-सघ, जनवादी युवक-संघ, चीन-भारत-मैत्री-सङ्घ, यंग पायनियर, नौजवान-कम्युनिस्ट लीग वगैरह-वगैरह जन संगठन जिनके लाखों सदस्य हैं, सब जी-जान से इस काम के प्रचार-आन्दोलन और संगठन में लगे रहे थे। उसके बगैर ऐसी चीज़ की भी नहीं जा सकती थी। क्या हम

लोग इतने संगठन-द्रोही हैं कि यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि स्वागत सत्कार भी संगठित रूप से किया जा सकता है ? हम लोग चीनी जनता के मेहमान थे तो फिर इसमें क्या अजब बात थी कि चीनी जनता अपने जन-संगठनों के माध्यम से हमारे स्वागत के लिए अनथक उद्योग करती ? ज़ाहिर सी बात है कि यह लाखों लोग ज़मीन फोड़कर नहीं निकल आये और न आसमान से टपक पड़े। वे अपने घरों से ही आये और बड़ी कसरत से आये और वह इतनी बड़ी तादाद में आयें इसके लिए उनका आवाहन किया गया, उनको समझाया गया, संगठित किया गया।

इस जगह पर मैं फ़ौजी जकड़बन्दी का भूत खड़ा करने वाले आदमी की आवाज़ अपने कानों में बजते सुन रहा हूँ : हाँ, अब आप आये ठीक रास्ते पर ! मैंने क्या कहा था ? मैंने भी तो यही कहा था न कि इस चीज़ के पीछे बहुत ठेलठाल है, इधर-उधर से बहुत तार खींचे ताने गये होंगे तब यह चीज़ मुमकिन हुई होगी ! आप भी तो दूसरे शब्दों में यही बात कह रहे हैं !

मैं जानता हूँ कि मैं क्या कह रहा हूँ और मुझे हँसी मालूम होती है। ऐसे व्यक्ति को कोई जवाब दे भी तो क्या दे ? बस यही कह सकता हूँ कि ज़रा कुछ लोगों को, इससे कहीं कम छोटे पैमाने पर ठेल-ठालकर लाने की कोशिश कीजिए तब आपको आटे-दाल का भाव मालूम होगा। इतना आसान खेल नहीं है। आपको शायद उन स्वागतों की याद हो जो हमारे गौरांग महाप्रभु लोग अपने आला अफ़सरों के लिये सजाया करते थे । याद है न कैसी मुर्दा, बेजान, दीमक-चटी चीज़ होती थी वह ! और कोई एक बार की बात नहीं थी वह, उसका सदा यही हश्र होता था क्योंकि जनता कभी उस चीज़ का साथ नहीं देती थी। सारी ठेलठाल के बावजूद, जोर-जबर्दस्ती के बावजूद। नतीजा होता था कि दस-बारह टोडी बच्चे, राय साहब और खान साहब, स्टेशन पर इकट्ठा हो जाते थे और थोड़ी देर खीसें निपोरकर मुस्कराते थे, अहो रूपम् अहो ध्वनिः के कुछ चषक चलते थे और उसके बाद सब जल्दी-जल्दी अपने घर की राह लेते थे !

इस कहानी का आशय बस इतना है कि लाखों करोड़ों लोगों की फ़ौजी

जकड़बन्दी मुश्किल काम है और उसमे भी मुश्किल काम यह है कि यह चीज़ की भी जाय और इसका कोई दाग़ किसी के चेहरे पर दिखाई न दे। फ़ौजी जकड़बन्दी और मुस्कराहट में सौतिया डाह है। किसी हालत में दोनो संग नहीं रह सकते और जब तक कि आदमी एकदम आँख का अन्धा नहीं है वह झूठी और सच्ची मुस्कराहट में फ़र्क भी कर ही सकता है। और जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं अपने को कतई अन्धा नही समझता। और फिर, उनकी मुस्कराहट को सच्चा समझने में मुझे इस बात से भी मदद मिलती है कि मैने उनको जी-जान से अपना नया घोसला बनाते देखा और जो घोंसला बनाता है, वह अपने घोसले की हिफ़ाज़त के लिए दुनिया मे शान्ति चाहता है और मुस्कराहट शान्ति और प्रेम की ही वाणी है।

कितने शानदार भोज थे वे दोनों जो हमारे सम्मान में किये गये थे इनमें से एक चेयरमैन माओ ने चीनी राष्ट्रीय दिवस के पहले वाली शाम को दिया था और दूसरा भोज पीकिंग के मेयर पेंग चेन ने उस रोज दिया था जब ग्यारह दिन के बाद शान्ति-सम्मेलन का काम खतम हुआ। पेंग चे पीकिंग के मेयर ही नहीं, नये चीन के सबसे बड़े चार-पाँच नेताओं में एक हैं।

चेयरमैन माओ का भोज मुझे उस महान् आदमी को देखने का पहल मौका देने वाला था जो कि चीन का मुक्तिदाता था और युग बीतने के साथ साथ जिसकी छाया लम्बी ही होती चली जा रही थी। यह आदमी वर्षों पहाड़ की कन्दराओं में रहा था और वहाँ से उसने चीन की आज़ादी की लड़ाई का नेतृत्व किया था। इस आदमी के सिर पर सबसे ज्यादा कीमत लगायी गयी थी जितनी कि शायद कभी किसी के नहीं लगायी गयी। मगर इसका उस आदमी को कोई ग़म नहीं था, कोई फ़िक्र नहीं थी। वह आज़ादी के साथ घूमता था

और काम करता था और उसे कभी इस बात का डर नहीं रहा कि कोई उसे पकड़वा देगा। और न किसी ने उसे पकड़वाया। वह आदमी कवि था और आजादी का सैनिक था, दार्शनिक था और महान् राजनीतिक नेता था और विलक्षण रणनीतिज्ञ था और यह कहना मुश्किल है कि उसके इन तमाम पहलुओं में से उसका कौन सा पहलू सबसे बड़ा है। सही मानी में वह चीनी जनक्रान्ति का अनन्य प्रतिभाशाली नेता था। उसमें यह प्रतिभा थी कि उसने मार्क्सवाद का मेल चीन की जीवित वास्तविकता के संग किया। खुद चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर बहुत से तोतारटन्त कट्टरपन्थी लोग थे जो बिना अपने देश की वास्तविकता को देखे या पहचाने बस आँख मूँद कर मार्क्सवाद के सिद्धान्तों को दुहराना जानते थे। माओ को ऐसे नेताओं के खिलाफ़ वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा। अक्सर उसे अकेले ही इस लड़ाई में उतरना पड़ा मगर इसकी भी उसे कोई चिन्ता नहीं थी। जब तक वह यह जानता था कि वह सही रास्ते पर है तब तक अगर ज़रूरत पड़े तो वह अकेले ही सारी दुनिया से लड़ सकता था। उसके अपने पक्के विश्वास थे जिन पर वह मज़बूती से खड़ा था। उसका संकल्प प्रबल था और उसे जनता की शक्ति में चट्टान की तरह अडिग विश्वास था। स्पष्ट ही इस पूँजी के भरोसे उसमें पहाड़ों को हिला देने की ताक़त थी और यही उसने किया। उसको सबसे पहले चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को ठीक करना पड़ा क्योंकि वही तो आज़ादी की लड़ाई का नेतृत्व कर रही थी और ठीक हो जाने पर ही वह ठीक तरह से चीनी जनक्रान्ति के राजनीतिक नेता और संगठक का काम पूरा कर सकती थी। वर्षों के संघर्ष के बाद माओ को इसमें कामयाबी मिली और तोतारटन्त कट्टरपन्थी लोग, जिनमें अपने देश की वास्तविकता को समझने की ताक़त नहीं थी, नेतृत्व के पद से हटाये गये और चेयरमैन माओ चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और स्वातन्त्र्य युद्ध के अन्यतम नेता के रूप में सामने आये। चीन का यह स्वातन्त्र्य युद्ध मामूली नहीं था। इस युद्ध में उनको एक बहुत ही धूर्त और क्रूर शत्रु से वर्षों तक लड़ना पड़ा और यह शत्रु ऐसा था जिसकी मदद दुनिया की एक बहुत मज़बूत साम्राज्यवादी शक्ति खुले आम कर रही थी और जी खोलकर

कर रही थी। अपनी आज़ादी के लिए लड़ती हुई जनता को अनेकानेक विभीषिकाओं का सामना करना पड़ा विशेषकर सन् २७ और सन् ४६ के बीच। सन् २७ वह साल है जब च्यांगकाई शेक ने चीन के स्वातन्त्र्य युद्ध के साथ विश्वासघात किया और सन् ४६ वह साल है जब यह युद्ध विजयी हुआ। इन बाइस सालों के बीच जनता को सब तरह की विभीषिकाओं का सामना करना पड़ा, दुश्मन ने उन पर तरह-तरह के जुल्म तोड़े लेकिन उन सब के बावजूद जनता विजयी हुई जैसा कि उसे होना ही था। चेयरमैन माओ को इस बात का विश्वास था और इसी विश्वास से उन्होंने सदा अपनी जनता का नेतृत्व किया था। इसीलिए आज चेयरमैन माओ का नाम लेते ही चीन के हर आदमी और हर औरत के चेहरे पर एक अजीब ही दीप्ति आ जाती है। वह एक अजब ही भाव है जिसमें असीम प्यार, आदर, विश्वास सभी कुछ मिला हुआ है। वह एक गहरी आत्मीयता है जिसे शब्द नहीं बतला सकते। मैंने देखा कि चेयरमैन माओ की बात करते ही लोगों के चेहरे ममत्व से जैसे नहा उठते हैं। और क्यों न हो क्योंकि वही तो जनता के नये चीन के क्रान्तिकारी निर्माता और शिल्पी हैं। स्वभावतः चेयरमैन माओ के बारे में जनता के अन्दर बहुत सी दन्तकथाएँ प्रचलित हो गई हैं, जैसी कि किसी भी देश के पौराणिक वीरों के बारे में हो जाया करती हैं। उनके बारे में बहुत से लोक-गीत भी लिखे गये हैं। जाहिर सी बात है कि चेयरमैन माओ को क़रीब से और देर तक देख सकना एक ऐसी बड़ी नेमत थी जिससे बड़ी कोई नेमत मेरे लिए चीन में दूसरी नहीं हो सकती थी। उसी चीज़ का मौक़ा मुझे इस भोज में मिलने वाला था। मेरा मन स्वभावतः चंचल हो रहा था।

सचमुच यह एक शानदार भोज था। क़रीब दो हज़ार लोगों के लिए प्रबन्ध किया गया था। शान्ति-सम्मेलन के प्रतिनिधि, चीन के आदर्श मज़दूर और स्वातन्त्र्य युद्ध के वीर और बहुत से दूसरे देशों के मेहमान, सभी इस भोज में शरीक थे। लगभग सारी दुनिया के शान्ति प्रतिनिधि यहाँ मौजूद थे— कोरियन, जापानी, हिन्दुस्तानी, बर्मी, इण्डोनेशियन, सिंघली, पाकिस्तानी, ईरानी, फ्रांसीसी, इटालियन, अंग्रेज़, अमेरिकन और चिली, मेक्सिको, कोलम्बिया

आदि दक्खिनी अमरीका के देशों के लोग सभी तो थे। अपने प्रतिनिधि मंडल के स्टाफ़ को लेकर शान्ति-सम्मेलन के कुल प्रतिनिधियों की संख्या लगभग ८०० थी। पर इस भोज में इन ८०० के अलावा १२०० लोग और थे जिनमें लेबर हीरो और आजादी की लड़ाई के हीरो थे, पूर्वी योरप के जनतन्त्रों से आये हुए सांस्कृतिक और व्यावसायिक प्रतिनिधि मंडलों के लोग थे और सुदूर तिब्बत और सिनकियाग की पिछड़ी हुई जातियों के प्रतिनिधि थे। सब देशों के लोग अपनी राष्ट्रीय वेशभूषा में थे। किसी के यहाँ अगर लुंगी ही राष्ट्रीय पहनावा है, जैसे कि बर्मियों के यहाँ, तो वह लुंगी ही पहने हुए थे। तिब्बत वाले और सिनकियाग वाले अपनी खास वेशभूषा में थे, चोगा, कनटोप वगैरह सब कुछ। यह नहीं था कि सब कोट पतलून ही पहनें और जो न पहनें उन्हें हर वक्त यह महसूस हो और महसूस कराया जाये कि वह जंगली हूश हैं जैसा कि अँग्रेजों की नक़ल पर हमारे देश में भी होता है। चीन सबको अपनी बोली, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी वेशभूषा, अपने रीति रिवाज, अपने तीज-त्यौहार पर गर्व करना सिखलाता है। और इसी का एक छोटा सा उदाहरण चेयरमैन माओ के इस भोज में भी लोगों के पहनावे को देखकर मुझे मिला।

जहाँ पर भोज हुआ था वह एक बहुत ही शानदार हॉल है जिसे अंग्रेजी में हॉल आफ़ काइण्डनेस कहते हैं। यह पुराने राजसी चीन के वक्त से चली आती हुई एक बहुत शानदार इमारत है जिसे अभी हाल ही में जीर्णोद्धार करके एकदम नया बना दिया गया है। वहाँ की सजावट बड़ी ही सुरुचिपूर्ण और आकर्षक थी।

उस वक्त जब मैं उस पुराने 'निषिद्ध नगर' के इस हॉल में खड़ा हुआ था, मेरा मन बरबस इस बात की ओर चला जाता था कि देखो, यहाँ की दुनिया कैसी बदली है। कोई समय था कि साधारण जन के लिए यह नगर निषिद्ध था (उसका नाम ही यह कहानी कह रहा था), मामूली ग़रीब लोग उसके अन्दर घुस नहीं सकते थे और अगर घुसते तो उन्हें कोड़े मारे जाते थे। और कहाँ अब उसी निषिद्ध नगर में हम आप जैसे साधारण जन ही राजा हैं और अब

वह निषिद्ध नगर केवल उन जागीरदारों और देशद्रोही पूँजीपतियों के लिए निषिद्ध रह गया है। जो कल तक वहाँ राजा थे, आज उनकी वहाँ गुज़र नहीं और अभी कल तक जिनकी वहाँ गुज़र नहीं थी आज वही साधारण मज़दूर किसान, नौकरीपेशा लोग वहाँ के राजा हैं। जब किसी देश में क्रान्ति होती है तो व्यवहार में वह इसी तरह दिखायी देती है। बड़े-बड़े पूँजीपति जिन्होंने अपने स्वार्थ को देशहित से भी ऊपर रखकर अपने देश को साम्राज्यवादियों के हाथ बेच दिया उनके लिए नये चीन में कोई जगह नहीं है। वे आज या तो ताइवान (फारमोसा) में अपने दिन गुज़ार रहे हैं या वाशिंगटन के राजनीतिक कक्षों और फ्रांस या स्विटज़रलैंड के नाइट क्लबों की शोभा बढ़ा रहे हैं। बहरहाल नये चीन में, जनता के चीन में उनके लिए जगह नहीं है और जिनके हाथ में इस नये चीन की बागडोर है वे इस बात को छिपाते भी नहीं। जो देशभक्त पूँजीपति हैं और अपने स्वार्थ के साथ-साथ देशहित का भी ख़याल रखने के लिए तैयार हैं या यों कहिए कि देश के व्यापक हित से परिचालित होते हुए अपने उद्योग-धन्धे चलाना चाहते हैं और उससे अपना मुनाफ़ा करना चाहते हैं उनके लिए चीन में जगह है और इतना ही नहीं उन्हें सरकार की ओर से प्रोत्साहन भी मिलता है क्योंकि चीन पिछड़ा हुआ अविकसित देश है और उसे अपने नये निर्माण के लिए उद्योगपतियों की भी ज़रूरत है। इसमें कोई धोखेधड़ी की बात नहीं है, यह तो खुली नीति की बात है। लेकिन इसके विपरीत जो लोग च्याग और कुंग की तरह देशद्रोह के अपराधी हैं उनके लिए कोई भी जगह नये चीन में नहीं है। यह उनकी साफ़ घोषित नीति है। ठीक इसी तरह पुराने जागीरदार जो नये चीन के तौर-तरीक़े पर, उसके नये नैतिक मूल्यों के अनुसार अपनी पुनर्शिक्षा करने के लिए तैयार हैं और ईमानदारी से परिश्रम करना चाहते हैं उनके लिए तो चीन में जगह है लेकिन जो अब भी अपने पुराने सपनों में डूबे हुए हों उनके लिए चीन में जगह नहीं है और बेहतर है कि वे नये चीन के बाहर जाकर दिन-रात अपने चहेते सपने देखा करें!

मौलिक सामाजिक परिवर्तन इसी चीज़ को कहते हैं और अजीब बात है

कि वहाँ उस शानदार हॉल में खड़े-खड़े यही खयाल बारबार आकर मेरे दिमाग़ से टकरा रहा था। हॉल में भारी भारी रेशमी पर्दे चारों तरफ़ झूल रहे थे और फ़र्श पर एक बहुत ही मोटा और गुदगुदा कालीन बिछा हुआ था। मेज़ों पर तमाम तरह के व्यंजन रखे हुए थे, कई तरह से पके हुए मुर्ग़, बतख, मछली, अण्डे, सब्ज़ियाँ वगैरह। इनके अलावा अंगूरों, सेबों और केलों के ढेर और सिर्फ़ फल ही नहीं, तीन तरह की उनकी चीनी शराबें भी वहाँ पर मौजूद थीं। उनमें से एक तो पानी की तरह सफ़ेद शराब थी जो देखने में पानी थी और पीने में आग। इसे चीनी वोडका कहते हैं। दूसरी शराब धान की थी जो पीने में कड़वी थी और नशीली भी मगर सफेदवाली के मुक़ाबले में कुछ भी नहीं। तीसरी अंगूर की बहुत सुस्वादु और बहुत हलके नशे की शराब थी। सफ़ेद वाली शराब से बचकर रहना चाहिए। वह बहुत ही कठिन चीज़ है, खासकर उनके लिए जो पीने के आदी नहीं हैं। शायद यह शराब बहुत तगड़े लोगों के लिए ही बनी है। लेकिन मेरा खयाल है कि तगड़े से तगड़ा आदमी भी बहुत संभालकर ही उसे पीता होगा क्योंकि ज़रा सी ही ग़फ़लत से वह सिर पर चढ़ जाती है। उसे पीजिए तो लगता है जैसे तरल आग पी रहे हों जो जीभ और गले से लेकर नीचे तक अपना रास्ता बनाती चली गयी हो। इसमें अलकोहल की मात्रा कम से कम ६८ और ज्यादा से ज्यादा ६० फ़ीसदी होती है जो कि किसी को भी लिटा देने के लिए काफ़ी है। इन शराबों को देखते-देखते मुझे इस रूपक का खयाल आया कि नये चीन में जैसे शराब की बोतलें तो वही पुराने शहशाहों के वक्त से चली आती हुई खूबसूरत बोतलें हों लेकिन उनमें की शराब एकदम नयी हो! यह वैभव यह शान-शौकत तो सब वही राजसी है लेकिन उसके भोगने वाले पात्र बदल गये हैं। रूप बहुत कुछ वही पुराना और परम्परागत है मगर उसके भीतर की वस्तु नयी है। मदिरा का पात्र वही राजसी है लेकिन उसके अन्दर जनसत्ता की नयी शराब है। अगर ऐसा न होता तो दक्खिनी चीन के क्वानतुंग प्रदेश के इस किसान और उत्तरी चीन के मुकडेन के उस मज़दूर, सिनकियांग के इस मुल्ला और तिब्बत के उस बौद्ध लामा, जन-सेना के इस

साधारण सैनिक और किसी छोटे से अपरिचित गाँव के उस साधारण किसान कवि या क़िस्सा कहने वाले के लिए भला यहाँ जगह होती ? भला उस जगह वे घुस भी सकते थे ? वे तो साधारण जन हैं और पुराने ज़माने में तो वहाँ कुत्तों ही के समान साधारण जन का प्रवेश निषिद्ध था। अगर कोई ग़लती से चला जाता तो उसकी पीठ पर इतने कोड़े पड़ते कि वह लहू-लुहान हो जाता। मगर अब वे ही वहाँ के मालिक हैं। सचमुच जमाना बदल गया !

अपने इसी ख़याल में डूबा हुआ मैं वहाँ पर खड़ा था और मेज पर से कभी यह चीज़ और कभी वह चीज़ उठाकर मुँह में डाल लेता था और सोच रहा था कि ऐसे भोज में सम्मिलित हो पाना कितने बड़े सौभाग्य की बात है। मेरे पास ही बायें हाथ पर चेकोस्लोवाक सेना का एक ख़ूबसूरत तगड़ा अफ़सर खड़ा हुआ था। उसका सीना कासे, चादी, सोने के पदकों से ढँका हुआ था जो सब उसे अपनी वीरता के लिए मिले थे। वह बड़ा ही हँसमुख और ज़िन्दादिल आदमी था जो हर क्षण अपनी शराब का गिलास उठाये मुझको तुझको सभी को कोई न कोई जाम पेश कर रहा था। उसके संग चलना बहुत कठिन बात थी। वह मेरी ज़बान नहीं जानता था और मैं उसकी ज़बान नहीं जानता था तब भी हम अपनी मुस्कराहटों और अपने सिर हिलाने से अपनी बातचीत जारी रखे हुए थे।

मेरे पास ही दाहिने हाथ पर मेरा कोरियन दोस्त खड़ा था, एक नौजवान छापेमार जो अपनी बहादुरी का एक तमग़ा लगाये हुए था। उसके संग भी भाषा ही सबसे बड़ी रुकावट थी। जब अंग्रेज़ीदाँ कोरियन दुभाषिया हमारे साथ होता तब तो कोई बात न थी लेकिन जब वह न होता तो भाषा ज़रूर रुकावट बनती। मगर सच बात यह है कि जब दो दिल आपस में बात करते हैं तो भाषा की रुकावट भी रुकावट नहीं रह जाती। उसका पीला-पीला मंगोलियन, जवान चेहरा, उसकी छोटी-छोटी चुन्दी-चुन्दी आँखों की वह शरीर बच्चों जैसी चमक, उसके रूखे उड़ते हुए बाल, उसका मज़बूत शरीर और उसका वह हाथ मिलाते समय सारे शरीर को झकझोर देना सब कुछ मेरी आँख के आगे है। उसकी चाल-ढाल में, तौर-तरीके में अजब एक बेलौसपन

था कि जैसे दुनिया में उसे किसी चीज़ की कोई चिन्ता न हो। लड़ाई ही उसकी जिन्दगी थी और वह जानता था कि कैसे उस जिन्दगी को जीना चाहिए। बस इतनी सी बात थी। इसी ने उसके अंग अंग में वह बेलौसपन भर दिया था। वह सीधे कोरिया के जंगलों से आ रहा था। वही उसका घर था वही उसका मोर्चा। जंगलों में रहकर ही छापेमार अपनी लड़ाई चला रहे थे। शान्ति-सम्मेलन में आते समय रास्ते में दो बार उसे बमबारी का सामना करना पड़ा। और लौटते समय शायद फिर दो या और ज्यादा बार उसे दुश्मन की बमबारी का सामना करना पड़े। मगर इसका उसे कोई ग़म नहीं था। वही तो उसकी जिन्दगी है। शान्ति-सम्मेलन से वह सीधे अपने जंगलों को लौट गया, उन्हीं खतरनाक जंगलों में, उन्हीं खतरों और उन्हीं इम्तहानों के बीच, दुश्मन की मशीनगनों की उसी गहरी भारी बूम-बूम और छापेमार राइफलों और टामीगनों की कड़कड़-कड़कड़ के बीच। हाँ, जनता के इस ऐक्य सम्मेलन के बाद वह फिर अपनी उसी लड़ाई को लौट जायेगा जो कि उसकी सांस-सांस में भिदी हुई है। अब उसे किसी चीज़ से डर नहीं लगता। मौत से तो उसे खेलना ही पड़ता है। उसने मौतें देखी हैं और बहुत खून बहते देखा है। अब उसे उस चीज़ से डर नहीं मालूम होता। बस इतना होता है कि उसका संकल्प और भी मज़बूत हो जाता है, उसके अन्दर जैसे और भी लोहा दाखिल हो जाता है। कभी उसे भी डर लगता था लेकिन अब नहीं। और कैसे लग सकता है जब कि मातृभूमि खतरे में है और अपने खून के आखिरी कतरे तक उसकी हिफ़ाज़त करनी ही है? ऐसी स्थिति में बहादुरी आ ही जाती है। इसमें कोई खास बात नहीं है। उस कोरियन ने ये तमाम बातें अपने संकेतों से मुझे बतलायीं। मेरी आँखों के आगे तसवीर सी खिंची हुई है जबकि उसने बात करते-करते एकाएक टामीगन पकड़ने की तरह हवा को पकड़ा और काल्पनिक दुश्मन पर गोली छोड़ता हुआ घूम गया और गले से टामीगन छूटने की आवाज़ की। उसका कहने का मतलब था कि इस सम्मेलन के बाद मैं फिर इसी चीज़ में लग जाऊँगा। उस वक्त उसका वह जवान बल्कि कहिए लड़कों जैसा चेहरा वैसा ही कठिन और गम्भीर हो गया

जैसा कि लड़ाई में हो जाता होगा। और फिर उसी तरह एकाएक वह हँस पड़ा। बड़ी शैतान मालूम हुई मुझको उसकी वह हँसी। मगर वही उसका तरीक़ा था। उसका चेहरा बिलकुल बच्चों की तरह भोला था। वह बड़ा विनयी और चिन्तनशील आदमी था। बहुत गम्भीर था उसका चेहरा लेकिन निराशा या उदासी वहाँ कहीं न थी। उसे देख कर लगता था कि वहीं उसी चेहरे में कहीं उसकी मुस्कराहट भी छिपी हुई है। मैं इस नौजवान छापेमार को देखता था और बड़ी बड़ी देर तक देखता रहता था। वह छापेमार जो कि बच्चे की तरह भोला, इतने मीठे स्वभाव का, इतना नेक, इतना मुहब्बती और इतनी गहरी मानवीयता से भरपूर था—क्या ऐसा आदमी दूसरे की धरती पर कभी हमला कर सकता है, दूसरे के सुख को छीन सकता है दूसरे की इज्जत पर हाथ डाल सकता है? अमरीकी प्रचारक कोरियन लड़ाकों के बारे में हमें सदा ऐसी ही बातें बतलाते रहे हैं। लेकिन इस कोरियन छापेमार को देखकर मेरा मन फ़ौरन बोल पड़ा कि यह सारा प्रचार झूठ है, ऐसा कभी नहीं हो सकता। इस आदमी के चेहरे को देखो कैसा सभ्य सुसंस्कृत, सजग चेहरा है और साथ ही कितना मृदु और शान्तिप्रिय। ऐसा आदमी कभी किसी दूसरे आदमी की इज्जत पर हाथ नहीं डाल सकता। लेकिन हाँ, यह चेहरा भोला तो है मगर बुद्धू नहीं। उसे सब पता है कि लड़ाई क्यों हो रही है और उसकी कौन सी चीज़ दांव पर लगी है। इसीलिए यह मीठा और भोला चेहरा लड़ाई के समय कठोर और निर्मम हो जाता है और उसका दिल जो मुहब्बत करने के लिए बनाया गया था, उसी ताक़त से नफ़रत करने की शक्ति भी पा लेता है। यही चीज़ है जो उसकी मौत को हेच समझने वाली वीरता, उसके शान्त साहस का रहस्य बतलाती है। और यह लड़का—उसे लड़का कहना ही ठीक होगा—कोरिया की समूची शान्तिप्रेमी जनता और सच पूछिए तो दुनिया की सारी शान्तिप्रेमी जनता का प्रतीक है जो कभी किसी दूसरे देश पर हमला नहीं करती मगर जब अपने देश, अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए लड़ती है तो देखने वालों को दाँतों तले उंगली दबानी पड़ती है और हजारों साल से अपनी चिर-निद्रा में सोये हुए पौराणिक वीर अपनी

समाधि से जाग पड़ते हैं !

इस बात का ख्याल करके मैंने अपने को दो तरह से सम्मानित अनुभव किया। एक तो इस अर्थ में कि यह चेयरमैन माओ का भोज था और दूसरे इस अर्थ में कि मुझे ऐसे लोगों के संसर्ग में आने का मौका मिला जो जितने ही महान थे उतने ही विनयशील, जितने ही बड़े थे उतने ही सीधे सादे।

ठीक आठ बजा होगा जब बैंड बजने लगा और चेयरमैन माओ हॉल के अन्दर दाखिल हुए। हॉल के सभी लोग अँगूठों पर खड़े हो होकर और गर्दनें उठा-उठाकर चीनी जनता के उस महान नेता को देखने लगे। हॉल एक दम निस्तब्ध था। आने के दो ही चार मिनट बाद चेयरमैन माओ ने माइक पर हमारा स्वागत करना शुरू कर दिया। उनकी वक्तृता रूसी, अंग्रेजी, जापानी और कोरियन इन चार भाषाओं में एक साथ प्रसारित की जा रही थी। ये मुहब्बत और दोस्ती के शब्द थे जो हवा में भर उठे थे और उस वक्त वहाँ रहना बहुत ही भला, बहुत ही ख़ुशगवार मालूम हो रहा था। ऐसा लग रहा था कि जैसे हम अपने घर में जाड़े के दिनों में आग के पास बैठे हों। मैं समझता हूँ कि यह भाव हमारे दिल में सिर्फ इसलिए नहीं पैदा हो रहा था कि वह हॉल बहुत अच्छी तरह गरमाया हुआ था। यक़ीनी इस सोज के पीछे वह अपनपौ था जो कि हवा में रचा हुआ था। वह एक फ़राख़दिल दोस्ती थी जो कि वहाँ इतनी सशरीर हो उठी थी कि लगता था कि उसमें पिन चुभाओगे तो उसमें से ख़ून निकल आयेगा। लगता था कि हम उसे अपनी बाँहों में भरकर सीने से लगा सकते हैं। यह भी सही है कि चेयरमैन माओ की उपस्थिति का सम्भ्रम भी वातावरण में थोड़ा सा था लेकिन बहुत थोड़ा। वह अलग ही एक भाव था जिसे भय भी नहीं कह सकते, रौब भी नहीं कह सकते और न उसकी वजह से उस भोज में किसी प्रकार का कोई तनाव ही आया। हमने उस भोज के एक-एक पल का भरपूर आनन्द उठाया। हम लोग खाते भी जा रहे थे और बीच-बीच में अपनी शराब या लाइमजूस के गिलास उठा-कर आपस में एक दूसरे को अपनी सद्भावना का जाम भी पेश करते जाते

थे। और ख़ैर यह कहने की जरूरत नहीं कि बीच-बीच में चेयरमैन माओ को अच्छी तरह भरपूर आँख जमाकर देखने की कोशिश भी करते जाते थे। दूसरे रोज़ परेड के वक्त हमें चेयरमैन माओ को अच्छी तरह देखने का मौक़ा मिला। लेकिन उस शाम को वह हमारा पहला मौक़ा था उस महान आदमी को देखने का जिसके बारे में हम बरसों से पढ़ते चले आ रहे थे।

चेयरमैन माओ मझोले क़द के, कसे हुए दोहरे बदन के आदमी हैं। चीनियों के एतबार से उन्हें लम्बा ही कहना चाहिए। उनके गाल की हड्डियाँ बहुत चौड़ी हैं और उनका माथा असाधारण रूप से चौड़ा। उनके बाल पीछे को फेरे हुए थे जिससे कि उनका माथा और भी चौड़ा लग रहा था। स्वास्थ्य की ललाई लिये हुए उनका साफ़ गोरा चेहरा उल्लास से चमक रहा था। वह एक ईमानदार मेहनतकश का चेहरा था जिस पर एक अजब सादगी थी जिसे बयान नहीं किया जा सकता। अपनी उस दूरी पर से मुझे वह एक दानिशमन्द किसान का चेहरा मालूम हुआ।

भोज के वे डेढ़ दो घण्टे मेरी ज़िन्दगी के कुछ नायाब क्षण थे। चेयरमैन माओ तो थोड़ी देर रहकर चले गये लेकिन चीन की महान जनसेना के प्रधान सेनापति जू दे और चीन के प्रधान-मन्त्री चाऊ-एन-लाई रहे आये। और जब ये दोनों लोग सभी मेज़ों पर गये और उन्होंने सभी अतिथियों की सेहत का जाम पिया तो हमने अपने आप को बहुत गौरवान्वित अनुभव किया। निश्चय ही इस भोज में सम्मिलित होना गौरव की बात थी।

उतने ही गौरव की बात थी, मेयर पेंगचेन के दिये हुए भोज में सम्मिलित होना—इतने अन्तर के साथ कि इस भोज में तो वे कुछ बाँध भी टूट गये थे जो कि चेयरमैन माओ के भोज में थे। यहाँ तो सही मानी में मस्ती का बाज़ार गरम था और सब लोग पागलों की तरह खुशियाँ मना रहे थे। मगर उसकी बात तो ज़रा बाद को, अभी तो हम उस हॉल तक ही नहीं पहुँचे जहाँ पर भोज होने वाला है। और कोई मजाक थोड़े ही है उस हॉल तक पहुँचना! 'शान्ति दूतों' के स्वागत के लिए विशाल जमघट वहाँ पर मौजूद है। हॉल तक पहुँचने के रास्ते में दोनों तरफ़ हजारों लोग खड़े हैं। लोग बहुत अनुशासन के साथ खड़े

हैं, भीड़ की ठेलमठाल नहीं है, रास्ता एकदम साफ है लेकिन कोई उस पर तेजी से आगे बढ़े कैसे जब दोनों तरफ़ से सैकड़ों हजारों हाथ किसी की तरफ बढ़े हों। और उनमें भी सबसे हठीले हाथ तो यंग पायनियरों के हैं, लाल-लाल स्कार्फ बाँधे उन छोटे-छोटे लड़कों लड़कियों के। उनकी संख्या और उनके जोश को देखकर दंग रह जाना पड़ता है। कैसा अपूर्व दृश्य था वह, उन हजारों लोगों का क़तार में खड़े होकर गाने गाना और नारे लगाना और हमें हाथ पकड़-पकड़ कर अपनी तरफ़ खींचना। कोई उनकी मुहब्बत की गहराई को न समझे तो यही सोचेगा कि सबके सिर फिर गए हैं। लेकिन बात ऐसी नहीं है। उनकी मुस्कराती हुई आँखें और चेहरे और उनके सेब जैसे गुलाबी-गुलाबी गाल उन लोगों के प्रति उनके उद्दाम प्रेम की कहानी कह रहे हैं जो शान्ति और राष्ट्रों के बीच आपसी भाईचारे के सन्देशवाहक हैं। जो कुछ हम लोग देख रहे थे उससे हमको सचमुच ऐसा लगने लगता था कि जैसे हम लोग वास्तव में शान्ति के देवदूत हों, कि जैसे यह कोरी अत्युक्तिपूर्ण आलंकारिक उक्ति न हो, कि जैसे सचमुच उनके दिलों में हमारी वही जगह हो।

हॉल में पहुँचने पर और अपनी जगहों पर बैठ जाने पर थोड़ी देर तक तो यह भोज कुछ औपचारिक ढग से चला। लेकिन थोड़ी ही देर में सारे शिष्टाचार और सारे उपचार हवा हो गये। लोग शायद यह सोचते थे कि दोस्तों और भाइयों के बीच इस चीज की क्या जरूरत? सब देशों को शान्ति और प्रेम के एक ही धागे में पिरोने के लिए हमने बारह दिन तक उद्योग किया और अब अपने शानदार शान्ति-सम्मेलन के बाद हम लोग खुशियाँ मनाने के लिए इकट्ठा हुए हैं तो खुशियाँ मनायें कि अदब क़ायदे की फ़िक्र करें? इसे तो कुछ वैसी ही चीज होनी चाहिए जैसी कि जनता के सैनिक, छापेमार वगैरह, जंगल में किया करते हैं—कैम्पफ़ायर के क़िस्म की चीज। और वैसा ही था यह भोज—शान्ति के सैनिकों, स्त्रियों और पुरुषों का एक महान कैम्प-फ़ायर। यहाँ उस शिष्टाचार के लिए कोई जगह नहीं थी जो पतलून की क्रीज़ देखता है, कालर का कलफ़ देखता है, टाई की गाँठ देखता है, बात करने का तर्ज़

देखता है। यह तो सीधा सच्चा स्नेह का लेन-देन था। लिहाजा पहले तो सबने सबके सेहत के जाम पिये और इस जोश की लहरें यकेबाददीगरे आयीं। फिर अलग-अलग देशों के प्रतिनिधियों ने अपनी-अपनी मेजों पर से अपनी-अपनी जबानों में नारे लगाने शुरू किये। मगर उससे भी लोगों का इतमीनान न हुआ। उनके अन्दर जो खुशी का समुन्दर लहरें मार रहा था वह अपने लिए राह ढूढ रहा था। लिहाजा लोगों ने अपनी मेजों पर से रकाबियाँ वगैरह एक तरफ़ सरकायीं और कूदकर अपनी मेजों पर खड़े हो गये और गाने गाने लगे। गानों पर गाने। इण्डोनेशियन गाने, बर्मी गाने, अंग्रेजी गाने, स्पेनी गाने, रूसी गाने, जापानी गाने, वियतनामी गाने, सिंहली गाने, हिन्दी गाने, बंगाली गाने। बुलन्द गलों से निकले हुए इन गानों की आवाज से हॉल भर उठा। कुछ लोग गा रहे थे, बाक़ी लोग रह रह कर समवेत में अपना भी स्वर मिला देते थे। बहुत से लोग अपनी शराबों के गिलास भरे गलियारों में घूम रहे थे और जो मिल जाय उसी की गिलास से अपने गिलास को छुलाकर एक दूसरे की सेहत का जाम पी रहे थे। इसकी कोई जरूरत नहीं थी कि कोई किसी से परिचय कराये। समष्टि रूप में हम सब एक दूसरे से परिचित थे। एक पवित्र संग्राम में, बल्कि कहिए मानवता के पवित्रतम संग्राम में हम सब सहयोद्धा थे, मित्र थे, साथी थे। इससे ज्यादा परिचय की क्या जरूरत! उस समय हमारे दिल में जो भाव उठ रहे थे उनको बतलाना मुश्किल है। एकदम खुले हुए दिल से यह जो मुहब्बत और दोस्ती का आदान प्रदान हो रहा था, मैं उसको देख रहा था और उसकी मार्मिकता को अपने हृदय के स्पन्दन मे अनुभव कर रहा था। मैं सोच रहा था कि क्या दुनिया के और किसी अन्तर्राष्ट्रीय भोज में यह आत्मीयता, यह अपनपौ, यह उल्लास यह मुक्त आह्लाद सम्भव है? शायद नहीं। इस तरह के दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय अनुष्ठानों के बारे में हम जो कुछ पढते या सुनते हैं, उससे तो यही मालूम होता है कि वे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन जीते जागते मनुष्यों के सम्मेलन नहीं बल्कि मिट्टी के बने चेहरों के सम्मेलन होते हैं, जिनमें सभी लोग दोस्ती और खुशी और विनय का चेहरा लगाये होते हैं मगर सभी कुछ बनावटी

होता है। लोग ये चेहरे एक दूसरे को धोखा देने के लिए लगा लेते हैं। इन चेहरों में आप कोई ऐब नहीं पा सकते क्योंकि उनमें कोई ऐब नहीं होता सिवाय इसके कि उनमें जान नहीं है और वे मिट्टी के चेहरे हैं। कूटनीतिक शिष्टाचार उसके आगे नहीं जा सकता मगर उसमें वही चीज नहीं होती जो कि असल चीज है—हार्दिकता, वास्तविकता, सचाई। यहाँ पर बात बिल्कुल दूसरी थी और सच बात तो यह है कि एक ही साँस में इन दो चीजों की बात भी नहीं की जा सकती। वहाँ चाहे भले अंगरेज और अमरीकी और फ्रांसीसी सिपाही अपनी साम्राज्यवादी सरकारों के बहकावे में आकर मलाया और कोरिया और वियतनाम के जंगलों और पहाड़ों और मैदानों में लड़ रहे हों लेकिन यहाँ तो अंगरेज़ मलायावाले से गले मिल रहा है, अमरीकी कोरियन से गले मिल रहा है, फ्रांसीसी वियतनामी से गले मिल रहा है। क्या यह चीज़ कहीं और मुमकिन है? कभी नहीं, एक बार नहीं, हजार बार नहीं। यह जो उल्लास और उमंग है उसके पीछे कोई कारण है, यों ही आसमान से वह नहीं बरस पड़ी। यह आकस्मिक बात नहीं है कि इस हॉल में मैं एक अमेरिकन को एक कोरियन को अपने सीने से चिपकाये देख रहा हूँ या एक फ्रांसीसी को वियतनामी लेबर हीरो की सिगरेट सुलगाते देख रहा हूँ या एक अंग्रेज स्त्री को मलाया की एक छापेमार लड़की से घुल-घुलकर बातें करते देख रहा हूँ। ऐसी चीज़ यहाँ पर इसीलिए मुमकिन हुई कि ये सभी लोग मित्रता की एक अटूट डोर में बंधे हुए हैं, उस मित्रता की जो न्याय और शान्ति और आज़ादी की एक ही लड़ाई में कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ने के दौरान में पैदा हुई है। ये सब सीधे-सादे शान्ति-प्रिय लोग अपने-अपने देशों की सीधी-सादी शान्ति-प्रिय जनता के प्रतिनिधि हैं। ये अपने-अपने देशों के सबसे अच्छे, सबसे नेक बेटे और बेटियाँ हैं।

शान्ति सम्मेलन में राष्ट्रों की एकता और प्रेम और शान्ति और भाई चारे के हमने जो संकल्प सच्चे दिल से किये थे, उन्हीं का यह एक छोटा सा व्यावहारिक रूप था। सम्मेलन ने गोरे और काले, पीले और भूरे कंठों से बार बार सब मनुष्यों की एकता, सब देशों की समानता और उनकी आज़ादी के

अधिकार की बात सुनी थी। इन शब्दों में जनता के महान क्रान्तिकारी संघर्षों की अजर अमर आत्मा बोल रही थी। इनमें अमरीका के स्वाधीनता-युद्ध, फ्रांस की महान गणक्रान्ति, पेरिस कम्यून और स्पेन के नृशंस राज-तन्त्र के ख़िलाफ़ लेटिन अमेरिकन जनता के संघर्षों की आत्मा बोल रही थी। ये आग और लोहे के शब्द थे, आशा और विश्वास के शब्द थे—गहरे मानवतावाद के शब्द जो सभी मनुष्यों के लिए न्याय की माँग करते थे, उनके शरीर का रंग चाहे जो हो, उनके देश की भौगोलिक स्थिति चाहे जो हो, और चाहे आधुनिक विज्ञान और शिल्प कौशल में वे कितने ही पिछड़े हुए क्यों न हों। सम्मेलन ने घोषणा की थी कि मनुष्य मात्र को आज़ादी का अधिकार है और इसलिए औपनिवेशिक सत्ता और साम्राज्यवादी लूट की बर्बर व्यवस्था को दफ़न करना ही होगा। ये शब्द एक पवित्र उद्देश्य के लिए रण का आह्वान थे, जिससे पवित्र कोई उद्देश्य नहीं अर्थात् मनुष्यों की एकता और मैत्री। और यह याद रखना जरूरी है कि ये वो खोखले शब्द नहीं थे जो कि आज मंच पर से बोले जाते हैं और कल भुला दिये जाते हैं। ये शब्द एक सौगन्ध थे, एक शपथ कि जब तक तन में प्राण हैं तब तक हम इस न्यायोचित लक्ष्य के लिए संघर्ष करते रहेंगे। यहाँ किसी धोखे धड़ी की गुंजाइश नहीं थी क्योंकि उसकी कोई ज़रूरत ही न थी। जो लोग यहाँ पर आये थे उन्हें किसी ने यहाँ पर आने के लिए मजबूर नहीं किया था। वे सब अपनी ख़ुशी से यहाँ पर आये थे और खतरे उठाकर भी आये थे और आकर यह शपथ उन्होंने ली थी। वे चाहते तो नहीं भी आ सकते थे लेकिन वे आये क्योंकि दूसरी कोई बाध्यता न होते हुए भी एक नैतिक बाध्यता उन्होंने अपने भीतर ज़रूर महसूस की। ये लोग जो यहाँ आये थे इन्होंने दुनिया को शासकों और शासितों, शोषकों और शोषितों, मालिकों और गुलामों की श्रेणियों में विभक्त देखकर एक प्रतिहिंसा सी अपने हृदय में अनुभव की थी और वही चीज़ उन्हें सम्मेलन में खींचकर लायी थी क्योंकि वे जानते थे कि जब तक दुनिया से यह बर्बर व्यवस्था समाप्त नहीं कर दी जाती तब तक स्थायी शान्ति नहीं क़ायम हो सकेगी। उन्होंने अपने दिल में एक कराहत महसूस की थी और यह भी उनकी

समझ में आ गया था कि इस स्थिति से सिवाय कुछ थोड़े से साम्राज्य-लोभी गिद्धों के और किसी को कोई लाभ नही पहुँचता। इसके विपरीत यही चीज़ दुनिया को शान्ति यानी दुनिया के हर आदमी की ज़िन्दगी और ख़ुशी के लिए सबसे बड़ा खतरा है। इसीलिए उन्होंने इस दूषित समाज-व्यवस्था का अन्त और एक ऐसे संसार को जनम देने का सकल्प किया था जिसमे सब लोग भाई-भाई की तरह रह सकें। इसीलिए वे एक शान्ति का संसार बनाने के पवित्र उद्योग में अपनी शक्ति का अणु-अणु खर्च कर रहे थे। और यही चीज़ है जो उनके शब्दों में इतनी ताक़त भर देती है। अमरीकी जनता की ओर से वहाँ के प्रतिनिधि मण्डल ने अपने कोरियन भाइयों के संग कन्धे से कन्धा मिला कर आज़ादी और शान्ति के लिए संघर्ष करने की शपथ ली। उसी तरह ब्रिटेन के आइवर माटेग्यू और मोनिका फेल्टन ने मलय के अपने भाइयों के प्रत और फ्रांसीसी जनरल पेती ने वियतनाम के अपने भाइयों के प्रति शपथ ली। लड़ाई की आग लगाने वाले अपने काम की शुरुआत भाई-भाई के बीच दरार डाल कर और उन्हें एक दूसरे के खिलाफ़ नफ़रत और गुस्से से भर कर किया करते हैं। सदा से उनका यही क़ायदा है। इसी-लिए इस बात की जरूरत थी कि सब भाई एक दूसरे के प्रति प्रतिश्रुत हों कि वह किसी को अपने बीच दरार नहीं डालने देंगे। सचमुच वह एक ऐसा दृश्य था जिसे देखकर आँखें ठंडी होती थीं। वहाँ कोरिया के जङ्गलों और पहाड़ों में अमरीका के सिपाही कोरियनों से लड रहे थे और यहाँ हमारे सम्मेलन में अमरीकी प्रतिनिधि मण्डल, जिसमें उसके नीग्रो नेता को छोड़कर बाकी सभी गोरी चमड़ी के लोग थे, कोरियन प्रतिनिधि मण्डल को अपनी सदाबहार मुहब्बत की निशानी के रूप में एक पौदा भेंट कर रहा था, पौदा जो समय बीतने के साथ-साथ बढ़ेगा, फूलेगा, फलेगा। जिस वक्त अमरीकी स्त्रियों ने कोरिया की स्त्रियों को और अमरीकी प्रतिनिधि मण्डल के नीग्रो नेता लुई वीटन ने कोरियन प्रतिनिधि मण्डल के नेता हान सुलाया को गले से लगाया, उस वक्त हॉल में तमाम लोगों की आँखें सजल हो गयीं। शायद ही कोई रहा हो जिसकी आँखें सजल न हुई हों। मैंने न जाने कितने

लोगो को अपनी रुमालें आँख पर लगाते देखा। सचमुच यह पौदा बहुत ही अच्छा प्रतीक था। कोरिया का प्रतिनिधि मण्डल अपने देश वापस जाकर जब उस पौदे को रोपेगा तो वह पौदा बढ़ेगा, उसमें से अंकुर फूटेंगे और वह बढता ही जायगा उसी तरह जैम जेफ़रसन और लिंकन की आज़ादी की परम्परा पर पले हुए अमरीकनों और कोरियनो की दोस्ती बराबर बढती ही जायगी। जेफ़रसन और लिंकन की आखिर वह कौन सी परम्परा थी जिसका आज के अमरीका मे नाम लेना भी गुनाह है ? वह परम्परा इसके सिवाय और कुछ नहीं है कि अपनी ही आजादी की तरह दूसरे की भी आज़ादी की इज़्ज़त करो। ऐसे लोगों की मुहब्बत उस कोरिया के प्रति कैसे न हो जो आज अपनी जान की बाजी लगा कर अपनी आज़ादी के लिए लड़ रहा है ? और यह कैसे सम्भव था कि ऐसे अनोखे मिलन को देख कर हमारे हृदय और हमारी आखें आर्द्र न हो जातीं ? जिस वक्त हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि मण्डल ने कोरिया के प्रतिनिधि मण्डल को अग्निशिखा भेंट की उस वक्त भी लोगों के हृदय में यही भाव था। यह अग्निशिखा उस एकता का प्रतीक थी जो कि आजादी की लड़ाई की आग में से पैदा होती है। उसी तरह जब मोनिका फेल्टन और आइवर मांटेग्यू ने मलय के प्रतिनिधि मण्डल को गुलदस्ता भेंट किया और मोनिका फेल्टन ने मलय की छापेमार लड़की चान सुआत होंग को अपने अंकवार में भरा तो हॉल तालियो की गड़गड़ाहट से एक बार कॉप गया। सबने महसूस किया कि जैसे वहीं उस हाल मे एक नई दुनिया का जन्म हो रहा है। अब जब मैं पीछे मुड़ कर देखता हूँ तो मुझे इस बात का और भी गहरा एहसास होता है कि शान्ति सम्मेलन के सबसे बड़े लाडले तीन थे, कोरिया, मलय और विएतनाम वाले। और क्यो न हो क्योंकि वे छोटे-छोटे से लेकिन महान् देशों के प्रतिनिधि थे, उन देशों के जो मोर्चे की पहली कतार में खड़े हुए अति मानवी साहस से दुनिया की आजादी, जनवाद और शान्ति की रक्षा बर्बर साम्राज्यवादी आक्रमणकारियो से कर रहे थे, जो एक बार फिर दुनिया को खून से नहला देना चाहते हैं क्योंकि अब वह और उनके बूटों तले पड़े रहने के लिए तैयार नहीं है। बार बार, बार बार सभी देशों के प्रतिनिधि मण्डल

कोरिया, मलय और वियतनाम के प्रतिनिधि मण्डलों को और आपस में एक दूसरे को गुलदस्ते और झण्डे भेंट कर रहे थे और इस तरह मानवता के शत्रुओं के खिलाफ़ अपने पुनीत सकल्प की एक अभेद्य दीवार खड़ी कर रहे थे। इन गुलदस्तों और इन झण्डों से एक बड़ी खुशगवार गर्मी निकल रही थी, भाई-भाई के प्रेम की एक ऐसी गर्मी जो जंगबाजों की चलाई हुई घृणा और सन्देहों की सर्द हवाओं का मुह फेर देगी।

यही लोग जो जाति और रंग और राष्ट्र की बनावटी दीवारों और मालिक और गुलाम की झूठी श्रेणियों के ऊपर उठने की क्षमता रखते थे, जब इस भोज में एक दूसरे से मिले तो स्वाभाविक ही था कि आपसी प्रेम और भाई-चारे की एक गंगा सी बह निकले। ऐसे लोगों के बीच सच्चे उल्लास के संगीत में बेसुरा स्वर भला कहाँ से बज सकता था। मगर यह सच है कि ऐसा उल्लास उन्हीं के लिए सम्भव है जिनकी अन्तरात्मा पर कहीं कोई दाग़ नहीं है, जिनका ज़मीर दिन के उजाले की तरह साफ़ है।

ऐसा था मेयर पेंगचेन का भोज। बड़ी देर तक गाना चलता रहा। फिर भोज खतम हुआ और हम लोग बाहर गए, जहाँ एक बड़ा सा हसीन चाँद ज़मीन पर अपनी दूधिया चाँदनी बिखेर रहा था। बहुत प्यारा, बहुत मोहक था वह चाँद और हमें पता ही न चला कि कब हमने नाचना शुरु कर दिया। मगर क्या खूब नाच था वह भी! हम लोग बस इधर-उधर हवा में अपने हाथ पैर फेंक रहे थे। मगर फिर भी नाच रहे थे क्योंकि दिल में खुशी थी जो समा नहीं पा रही थी। चाँद अपनी सन्दली उंगलियों से हमें सहला रहा था और तारे हमें कनखियाँ मार रहे थे और हम एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए एक दूसरे से सटे हुए एक गोल घेरे में खड़े थे और कभी आगे जाते थे और कभी पीछे जाते थे और गोल-गोल चक्कर लगा रहे थे और हँस रहे थे और गा रहे थे और एक को, दूसरे के जिस्म की गर्मी मिल रही थी और यह सब इसलिए कि हम अपने दिल की खुशी को चाहे जैसे भी, अनगढ़ तरीके से ही सही, बाहर लाने की कोशिश कर रहे थे और पता नहीं अभी और कितनी देर तक यह पागलों का सा नाच चलता रहता लेकिन मैं समझता हूँ कि आधी रात बीत

चुकी थी और हमें एक दूसरी जगह जाना था इसलिए नाच खत्म करना पड़ा वर्ना शायद हम अनन्त काल तक इसी तरह नाचते रहते और हमारे पाँव कभी न थकते। यह सही मानी में एक महान भोज का वैसा ही महान उपसंहार था। उस चीज को देख कर आदमी को इन्सान के उस नये मुस्तकबिल का कुछ अन्दाजा मिलता है जो कि एक न एक दिन इन्सान का होकर रहेगा लेकिन जो इन्सान की अपनी काविशों से ही पैदा होगा।

जहाँ-जहाँ हम गये हमको एक ही नारा सुनने को मिलता था, हो पिंग वान स्वे : अम्न ज़िन्दाबाद, शान्ति की जय। कहीं पर अगर यह नारा सुनायी नहीं भी देता था तो भी एक अलक्ष्य रूप में मौजूद रहता था। और यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि शान्तिपूर्ण निर्माण ही नयी चीनी ज़िन्दगी की ख़ास चीज़ है। जहाँ-जहाँ भी हम गये हमने नयी-नयी इमारतों को बनते पाया। नन्हें बच्चों के भवन, उनसे बड़े बच्चों के किंडर गार्टन, मज़दूरों और किसानों के सांस्कृतिक भवन, मज़दूरों के घर, प्राइमरी और मिडिल स्कूल, यूनीवर्सिटियाँ, ऐसे कालेज जहाँ शिल्प सिखाये जाते हैं, पुस्तकालय, अजायबघर, शहरों में बड़े अस्पताल और गाँवों में छोटे छोटे क्लिनिक, सैनेटोरियम। सब जगह इनकी नयी नयी इमारतें खड़ी हो रही हैं, बेतहाशा काम चल रहा है। चीन की नयी ज़िन्दगी का यह इतना अहम पहलू है कि इसे न देखना मुमकिन नहीं। निर्माण का काम हो रहा है यह तो हमने अपनी आँखों से देखा। इसमें तो इस चीज़ की कहीं गुंजाइश न थी कि चीनी लोग हमारे दिमाग़ में अपनी मनचाही कोई बात

बिठाल दें। यह बात और है कि स्वयं अपने देश की पृष्ठभूमि में हमें सहसा इस बात पर यक़ीन न आये पर यकीन आना मुश्किल न होना चाहिए अगर हम सिर्फ़ इस बात को याद रक्खें कि चीन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। चीन की जनवादी सरकार को उत्तराधिकार में जो देश मिला वह एक बहुत पिछड़ा हुआ, साम्राजी-सामन्ती देश था जिसमें जनता के लिए कोई सहूलियतें न थीं और उसकी ज़िन्दगी कुत्तों की ज़िन्दगी थी। अब यह जनता की सरकार है जिसे जल्द से जल्द जनता की ज़िन्दगी को सँवारना है, समृद्ध करना है, सुखी बनाना है। अगर इस बात को अच्छी तरह समझ लिया जाय यानी अपने दिमाग़ के जालों को साफ़ करके यह बात क़बूल कर ली जाय कि यह जनता की सरकार है तो यह समझने में ज़रा भी मुश्किल न होगी कि कैसे जादू के-से स्पर्श से दिनों और हफ्तों में तरह-तरह की इमारतें खड़ी होती चली जा रही हैं। तत्व की बात यह है कि वहाँ पर वही विराट मानव जिसे आज़ाद आदमी कहते हैं संकल्प कर चुका है कि वह सुखी और समृद्ध जीवन बितायेगा और उसने अपने रास्ते के तमाम रोड़ों को अलग कर के सही मानी में देवों की तरह काम करना शुरू कर दिया है। उसका उत्साह और आवेग ऐसा है कि बिना अपनी आँख से देखे उसका यक़ीन नहीं किया जा सकता। पचास करोड़ मानवों की सम्मिलित शक्ति का पुंज यह जो अतिमानव है उसी के जादुई स्पर्श से पलक मारते नये भवन खड़े हो जाते हैं। नयी ज़िन्दगी का निर्माण आलंकारिक उक्ति नहीं है। वह एक यथार्थ है जो आदमी के चारों तरफ़ की तमाम चीजों में ज़ाहिर होता है। इस नये निर्माण की एक छोटी सी मिसाल आपको देता हूँ। *शांघाई के पास साओ यांग नाम का एक* नया गाँव मज़दूरों के लिए बनकर तैयार हो रहा है। यह गाँव अपने आप में पूर्ण होगा। उसे अपनी ज़रूरतों के लिए शहर का मुँह नहीं ताकना होगा। वहाँ पर इक्कीस हज़ार आदमियों के रहने के लिए मकान तैयार किये जा रहे हैं। हम जब वहाँ गये थे तब वहाँ काम शुरू ही हुआ था और सिर्फ़ तीन महीने में एक सौ सरसठ दुमंज़िले मकान बनकर तैयार हो गये। इन एक सौ सरसठ मकानों के अलावा इन तीन महीनों में वहाँ पर एक बाज़ार, एक

कोआपरेटिव, एक किंडरगार्टन, एक प्राइमरी स्कूल, एक सार्वजनिक स्नानागार, एक अस्पताल, एक जनता का बैंक, एक रङ्गमंच और तीन गरम पानी के केन्द्र तैयार हो गये थे। हम इन तमाम जगहों में गये और हमने छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों को अपनी कक्षाओं में पढते देखा और अधूरी इमारतों पर तेज़ी से काम होते हुए देखा। मैं यह चीज़ इसलिए नहीं बतला रहा हूँ कि यह कोई बड़ी हैरतअंगेज़ चीज़ है लेकिन मैं यह ज़रूर समझता हूँ कि अपने आप में यह एक अच्छा खासा काम है और इस बात की एक अच्छी मिसाल है कि अगर काम करने की इच्छा और संकल्प हो तो कितने थोड़े वक्त में क्या कुछ किया जा सकता है। जब हम इस चीज़ का मिलान अपने देश की गृह निर्माण योजनाओं से करते हैं तब हमें यह पता चलता है कि यह चीज़ इतनी छोटी नहीं है क्योंकि हमारे देश का तजुर्बा तो यह है कि लम्बी चौड़ी निर्माण योजनाएं बनती हैं, उन पर जनता का लाखों-करोड़ों रुपया खर्च किया जाता है मगर कभी कोई चीज़ बनकर तैयार होती नहीं दिखायी देती और हमें बस अपने सन्तोष के लिए समय समय पर अपने नेताओं का यही रोना सुनने को मिलता है कि अभी तो हमारी आज़ादी दो साल का बच्चा है या तीन साल का बच्चा है या पाँच साल का बच्चा है और शायद सौ बरस बाद भी यही सुनने को मिलेगा कि अभी तो वह सौ साल का बच्चा है।

शांघाई के इस मज़दूर गाँव की ही तरह हमने कैण्टन में एक बहुत बड़ा सा स्टेडियम और तालाब बनते देखा। पीकिंग में जनता के विश्वविद्यालय की नयी इमारत बन रही थी। पीकिंग पुस्तकालय की इमारत को भी बढाया जा रहा है। पीकिंग से दस मील दूर काओ बेई पे गाँव में किसानों के लिए एक सांस्कृतिक भवन बन रहा है। कहने का मतलब यह कि हर जगह तेज़ी से निर्माण कार्य हो रहा है। ऐसी हालत में यह स्वाभाविक ही है कि उन्हें जिस चीज़ की सबसे ज्यादा जरूरत है वह है शान्ति क्योंकि शान्ति के बिना निर्माण नहीं हो सकता। शान्ति की तो उनको वैसी ही ज़रूरत है जैसी कि आदमी को साँस लेने के लिए ताज़ी हवा की और धूप की ज़रूरत होती है। युद्ध ने वर्षों तक उनके देश को तबाह और बरबाद किया और उन्हें पता है कि युद्ध का

मतलब सर्वनाश होता है। इसलिए अगर कोई यह समझता है कि शान्ति की बात करके चीन कोई राजनीतिक चाल या तिकड़म कर रहा है तो यह समझने वाले की भूल है क्योंकि शान्ति उनकी ज़िन्दगी है। इसीलिए छोटे से तुतलाते हुए बच्चे से लेकर बुड्ढे-बुड्ढे लोगों तक सब अपनी तोतली बोली और मुस्कराहट और संकेतों से यही बात कहते थे कि उन्हें शान्ति से ज्यादा जरूरत और किसी चीज़ की नहीं है, वह किसी भी देश से लड़ाई नहीं करना चाहते और बस यह चाहते हैं कि उन्हें अपनी नयी ज़िन्दगी का निर्माण शान्ति से करने दिया जाय।

इसलिए यह वाजिब बात थी कि एशियाई शान्ति सम्मेलन नये चीन के पीकिंग में हो क्योंकि उसके पास शान्ति की इच्छा और संकल्प दोनों है। हाँ, केवल शान्ति की इच्छा काफ़ी नहीं है, उसका संकल्प भी होना जरूरी है और चीनियों के पास वह भी है। दुनिया में बहुत कम देश होंगे या शायद ही कोई देश हो जिसे अपनी आजादी के लिए इतनी लम्बी और इतनी कठिन लड़ाई लड़नी पड़ी हो। अपने तीस साल के क्रान्तिकारी संग्राम में चीनी जनता नरक से होकर निकली है। वह एक बड़ी कठिन अग्निदीक्षा रही है जिसने उन्हें यह भी सिखलाया कि आजादी कितनी मुश्किल से हासिल होती है और यह भी कि इतनी अनमोल चीज की हिफ़ाजत कैसे करनी चाहिए। कहने की जरूरत नहीं कि जो लोग अपनी आजादी और शान्ति के लिए वर्षों तक अविराम संघर्ष कर सकते हैं वे उन चीज़ों की हिफ़ाज़त के लिए भी अपने में साहस का टोटा नहीं महसूस करेंगे। अमरीका को रोको और कोरिया की मदद करो—इस आन्दोलन को जो जबर्दस्त कामयाबी मिली उससे इस चीज का कुछ अन्दाजा मिलता है। यह कोई छोटी बात नहीं थी कि सारा देश, देश का बच्चा बच्चा बिना एक पल को सुस्ताये और अपनी राइफल को कन्धे से उतार कर छन भर को जमीन पर रक्खे, कोरिया की सीमा पर जाकर अपने देश की आजादी की हिफाजत के लिए लड़ने को तैयार मिला। किसी ने मुँह नहीं चुराया, किसी ने यह नहीं कहा कि अभी तो हम वर्षों से लड़ते ही चले आ रहे हैं, थोड़ा सा तो सुस्ता लेने दो, किसी ने

कोई शिकायत नहीं की और एक लम्बी कठिन लड़ाई के बाद सीधे एक दूसरी लम्बी और कठिन लड़ाई के लिए वर्दी पहन कर तैयार हो गया। कहीं इस बात का हल्का सा भी आभास नहीं मिला कि लोग लड़ाई से उकता गये हैं गो कि यही चीज़ स्वाभाविक होती अगर हम थोड़ी देर को इस बात को भूल जायँ इस लड़ाई की प्रकृति क्या है। अगर यह साम्राज्य-विस्तार की लड़ाई होती तो निश्चय ही सेना में लड़ाई की उकताहट दिखायी देती। लेकिन चूँकि चीनी जनता के लिए पहले वह आजादी हासिल करने की लड़ाई थी और अब उसकी हिफ़ाजत करने की लड़ाई थी इसीलिए किसी क़िस्म की उकताहट के लिए वहाँ जगह न थी। जब चीन की क्रान्तिकारी लड़ाई का इतिहास लिखा जायगा तो दुनिया को मालूम होगा कि कैसे आग और ख़ून के बीच से चीन की जनता निकली है और फ़ौलाद बनकर निकली है। लिहाजा चीन एशिया में शान्ति का सबसे बड़ा गढ है और यह उचित ही था कि एशियाई शान्ति सम्मेलन वहाँ पर हो।

इस सम्मेलन की विस्तृत रिपोर्ट की इस जगह पर मैं कोई उपयोगिता नहीं देखता लेकिन मैं उन दो एक बातों का ज़िक्र ज़रूर करना चाहता हूँ जिनका संस्कार मेरे मन पर है। पहली चीज़ तो आपसी भाईचारे और प्रेम की भावना है जिसका उल्लेख मैं दूसरे प्रसंग में कर भी चुका हूँ। लेकिन सच बात है कि मेरे मन पर सबसे बड़ा संस्कार उसी चीज का है। वहाँ पर किसी तरह का कोई जातीय अहंकार देखने को नहीं मिला। मेरे मन पर दूसरा संस्कार उस लगन और गम्भीरता का है जिससे हर सवाल पर विचार किया जाता था। यह सिर्फ़ कुछ थोड़े से भले भले प्रस्ताव पास कर देने की बात नहीं थी। ख़ास बात यह थी कि कैसे उन प्रस्तावों को कार्यान्वित किया जाय। इसका मतलब दूसरे शब्दों में यह था कि जनता की आवाज में वह ताक़त कैसे भरी जाय जो जंगबाजों को नाकाम कर दे। तीसरी चीज़ सम्मेलन का वह वातावरण है जिसमें सारी बहसें होती थीं। कोई कहीं से खींच तान नहीं कर रहा था। हम सब को तमाम सवालों पर अपनी राय रखने की आज़ादी थी और इतना ही नहीं हमको इस बात के लिए प्रोत्साहित किया

जाता था कि हम बिना रोक टोक दिल खोल कर बात करें। शान्ति आन्दोलन के पीछे उसमें हिस्सा लेने वालों के स्वेच्छापूर्ण सहयोग के अलावा और कोई बल नहीं है। इसलिए ऐसे निश्चय करने से कोई फ़ायदा न होता जिनको सबका समर्थन न प्राप्त हो। इसीलिए अपने आरम्भ से ही शान्ति आन्दोलन ने बराबर इस परम्परा की नींव डालने की कोशिश की है कि सारे फ़ैसले सर्व सम्मति से स्वीकृत हों, बहुमत की स्वीकृति काफ़ी नहीं है। और सब की सम्मति मिले इसके लिए कितनी कोशिश की जाती है इसे मैंने सम्मेलन और उसके विभिन्न कमीशनों की बैठकों में देखा। पूरे दस रोज तक अलग अलग कमीशनों में सारी समस्याओं पर खुल कर बहस हुई और सब लोग एक राय पर पहुँचे। उसके बाद कहीं जाकर तमाम प्रस्ताव और घोषणाएँ मतदान के लिए सम्मेलन के सामने आख़िरी रोज पेश की गयीं। और मैंने देखा कि एक आदमी भी असन्तुष्ट और असहमत न हो इस बात के लिए बड़े से बड़ा कन्सेशन किया जा सकता है जब तक कि उस चीज़ का शान्ति आन्दोलन के आधार यानी शान्ति से ही विरोध न हो। किसी व्यक्ति की राय अगर सम्मेलन के तमाम दूसरे लोगों की राय से न मिलती हो तो भी उस व्यक्ति की बात को सब लोग पूरे आदर के साथ सुनते और समझने की कोशिश करते। वह एक ऐसा वातावरण था कि उसमें आदमी को बोलने का साहस होता था। एक दूसरा भी वातावरण होता है जिसमें अल्पमत को बोलने का साहस ही नहीं होता। और कुछ नहीं तो इसी डर से कि बहुमत के लोग खिल्ली उड़ाएँगे उस व्यक्ति की घिग्घी बँध जाती है। पर यहाँ बिल्कुल दूसरी ही बात थी। यहाँ एक व्यक्ति की राय को भी पूरा सम्मान देने के लिए सब लोग हर समय तैयार रहते थे और यह एक बहुत बड़ी बात है। हम भले उस व्यक्ति की राय से सहमत न हों मगर उस व्यक्ति को अपनी राय रखने का अधिकार है और हमें आदर और सद्भाव के साथ उसकी बात सुननी चाहिए—यह भावना सम्मेलन के वातावरण में अच्छी तरह रची हुई थी। और इस चीज़ का सबसे अच्छा उदाहरण सम्मेलन के आख़िरी अधिवेशन के सभापति पेंगचेन ने पेश किया। उन्होंने जिस उदाराशयता से बार-बार आग्रह करके विरोधी

मत को, अगर वह कहीं हो, आगे आने के लिए प्रोत्साहित किया, उसे देख कर तो सचमुच मेरा मन आर्द्र हो गया था क्योंकि मानव चरित्र की यह कोई साधारण ऊँचाई नहीं थी और न मैं समझता हूँ कि दुनिया की किसी दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय सभा या सम्मेलन में ऐसी चीज होती ही होगी। इसलिए मै समझता हूँ कि हमारे सम्मेलन की इस विशेषता का उल्लेख जरूरी है। मेरे मन पर सम्मेलन की आखिरी बैठक का विशेष रूप से संस्कार है। एक-एक प्रस्ताव, सम्मेलन का एक-एक दस्तावेज पेश किया जा रहा था और सारा हॉल खड़े हो होकर, तालियाँ बजा बजाकर उसको स्वीकार कर रहा था। यह अधिवेशन रात के ग्यारह बजे शुरू हुआ और सवेरे चार बजे तक चला। कितनी लगन और कितने अनुशासन से सारा काम हो रहा था। पाब्लो नेरूदा ने अपने सन्देश में हमारे सम्मेलन को शान्ति की पार्लियामेण्ट का नाम दिया था और बिल्कुल ठीक नाम दिया था क्योंकि यह सही मानी म शान्ति की पार्लियामेंट थी जिसमें सारे प्रतिनिधि खतरे को समझते हुए और अपनी जिम्मेदारियों को समझते हुए और अपनी ताकत को समझते हुए गम्भीरता और लगन से अपना काम कर रहे थे। स्तालिन ने कहा था कि दुनिया में शान्ति की रक्षा की जा सकती है अगर जनता शान्ति के मसले को खुद अपने हाथ मे ले ले। उसी चीज की एक मिसाल यह सम्मेलन भी था। अपने-अपने देश की साधारण जनता के चुने हुए ये प्रतिनिधि आपस में सिर जोड़कर इस बात पर विचार कर रहे थे कि कैसे लड़ाई की आग लगाने वालो को रोका जाय और शान्ति की रक्षा की जाय। देखिए तुर्की के मशहूर क्रान्तिकारी कवि नाजिम हिकमत ने इस बात को अपनी इन दो चार पंक्तियो में कितने मार्मिक ढंग से कहा है :

हाल में अड़तीस झण्डे हैं
एक दरख्त की अड़तीस शाखें
इन अड़तीस शाखों मे सफ़ेद कबूतर
खुशी से अपने पंख फड़फड़ा रहा है

अपनी दूसरी चार पंक्तियों में वह कहता है :

मा के दूध से भी सफेद मेरे कबूतर,
तुझे अपना घोंसला बनाने के लिए
पीकिंग ने अपनी ऊँची ऊँची सुर्ख मीनारों पर
सबसे ऊँची जगह दी है।

सम्मेलन में एक एक चीज की बहुत सुन्दर, सुचारु और कलापूर्ण व्यवस्था थी। इस बात का भी ध्यान रक्खा गया था कि बहसें लगातार इतनी देर तक न चला करें कि लोग घबरा जायं। इसलिए क़रीब दो घन्टे के बाद पन्द्रह-बीस मिनट का विश्राम मिलता था जिसमें आप लाउंज में जाकर फल, चाय, पेस्ट्री वगैरह का जलपान कर सकते थे, सिगरेट पी सकते थे, गप-शप कर सकते थे या अगर यह सब कुछ आप को नहीं चाहिए तो सम्मेलन भवन के बागीचे में जाकर टहल सकते थे, अपने दोस्तों की तसवीरें खींच सकते थे और दोस्त आप की तसवीरें खींच सकते थे। एक और दिलचस्प चीज़ होती थी गुलदस्तों और झण्डों वगैरह का भेंट किया जाना। आर्केस्ट्रा बजने लगता था और हाल के लोग खड़े हो जाते थे और इतने जोर से और इतनी देर तक तालियां बजती रहती थीं कि लगता था हाल की दीवारें गिर पड़ेंगी। मैं इस चीज का थोड़ा सा जिक्र ऊपर कर चुका हूं। ऐसा ही एक मार्मिक दृश्य वह था जब डाक्टर किचलू ने काश्मीर की समस्या के शान्तिपूर्ण सुलझाव के सवाल पर हिन्दुस्तान पाकिस्तान की संयुक्त घोषणा के वक्त पाकिस्तान के नेता पीर मानकीशरीफ को गले से लगाया। उस वक्त २७ मिनट तक ताली बजती रही और सब की आंखें भीग गयीं। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के प्रतिनिधि दौड़ दौड़कर एक दूसरे के गले से जा मिले और एक दूसरे को गोद में उठा लिया। उस वक्त कम से कम मुझे तो ऐसा लगा और बार बार लगा कि जैसे एक ही परिवार के दो बिछुड़े हुए लोग सुदूर पीकिंग में एक दूसरे के गले मिल रहे हों! इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि अंग्रेज साम्राज्यवादियों द्वारा हमारे देश के विभाजन के फलस्वरूप हिन्दुस्तान और पाकिस्तान भौगोलिक रूप से और ऐतिहासिक और सामाजिक रूप से एक

दूसरे के इतने पास होते हुए भी उनके बीच दो ध्रुवों की दूरी पैदा हो गयी है। पुराने दोस्तों से पीकिंग में मिलते समय हमें बार बार इस बात का ख्याल आता था कि देखो हमारे देश के लिए दुनिया कितनी बदल गयी है कि हम अपने ही देश में अपने लोगो से नहीं मिल पाते और पाच हजार मील दूर पीकिंग में मिलते हैं। हमें सचमुच इस बात के लिए पीकिंग को धन्यवाद देना चाहिए कि उसने हमें अपने पाकिस्तानी दोस्तों से मिलने का मौका दिया जिनसे शायद यों मिलना गैर-मुमकिन होता। यह बात बड़ी भयानक है, बड़ीग्लानिकर मगर सच है। पाकिस्तानियों को पीकिंग ज्यादा पास मालूम पड़ा और हिन्दुस्तानियो को पीकिंग ज्यादा पास मालूम पड़ा और पीकिंग में दोनों एक दूसरे को ज्यादा पास मालूम पडे। इस लिए स्वाभाविक ही था कि लोग खुशी से पागल हो जाते। और यह सिर्फ हिन्दु-स्तानियों और पाकिस्तानियों की ही बात नहीं थी बल्कि सभी देशों के लोगों को ऐसा लग रहा था कि जैसे पूंजीशाहों की उठाई हुई तंग दीवारों को तोड़कर दुनिया भर के लोग, दुनिया के इतिहास में पहली बार, एक दूसरे के गले मिल रहे हों और सारी दूरिया मिट गयी हों। यह करिश्मा शान्ति आन्दोलन के ही कारण सम्भव हुआ है।

और अब मैं एक ऐसी चीज़ का ज़िक्र करना चाहता हूँ जिसने सबको थोड़ी देर के लिए स्तब्ध और गद्गद् कर दिया। सम्मेलन का आखिरी दिन था। रात का तीन बजा होगा। सम्मेलन की कार्रवाई अभी खतम ही हुई थी कि न जाने कहाँ से सैकड़ों बच्चे फूलों की डालियाँ लिये हाल में घुस आये और प्रतिनिधियों पर पुष्प वर्षा करने लगे। फूलों की पंखुरियाँ फर्श पर और हमारी मेजों और कुर्सियो और कपड़ो पर बिखर गयीं। थोड़ी देर को तो हम यह समझ नहीं पाये कि माजरा क्या है। वह किसी के जागने का वक्त नहीं था और नन्हें नन्हें बच्चों के जागने का तो और भी नहीं। जाहिर है कि उन बच्चो को नींद की एक झपकी भी न मिली होगी क्योंकि किसे पता था कि सम्मेलन की कार्रवाई ठीक कै बजे खतम होगी। लिहाजा उनको पूरे वक्त तैयार रहना पड़ा होगा। लेकिन आप यकीन मानिए कि जब वह

लोग अन्दर आये तो किसी के चेहरे पर नींद का कोई असर नहीं था। न कोई निंदासा था न नींद से शल। सबके चेहरे ताजे और ख़ुश और मुस्कराते हुए थे। ऊषा की पहली किरण की तरह ये बच्चे हमारे बीच अवतरित हुए। उस वक्त जब बच्चों ने आकर हम पर और हवा में फूल बरसाने शुरू किये तो मेरे दिमाग़ में यूनानी और भारतीय पुराणों में चित्रित प्रेम के देवता की उभय मूर्तियाँ एक साथ आयीं और एक में मिल गयीं। यूनानी पुराण के अनुसार उनका प्रेम देवता क्यूपिड है जो कि बच्चा है और जिसके हाथ में तीर कमान होती है। हमारे यहाँ कामदेव को पुष्पधन्वा कहा गया है। और इन दोनों का संयुक्त प्रतीक थे ये पुष्पधन्वा बच्चे। ये यंग पायनियर सचमुच मुहब्बत के फ़रिश्ते थे। हममें से ज्यादातर लोग बाल-बच्चों वाले थे। हम अपने बच्चों को घर छोड़कर गये थे और जब हमने इन प्यारे-प्यारे बच्चों को देखा तो हमारे दिल भर आये और हमने उन्हें गोद में उठा कर चूम लिया। यह मुहब्बत के फ़रिश्ते तो थे ही लेकिन एक और भी प्रतीक के रूप में हमने उन्हें ग्रहण किया। ये बच्चे हमारी शान्ति-शपथ की साकार मूर्ति थे, इस शपथ की कि हम उनको और ख़ुद अपने बच्चों को युद्ध की विभीषिकाओं से बचाने के लिए संघर्ष करेंगे। शान्ति का संघर्ष जिन्दगी की बहुत सी अमूल्य निधियों की रक्षा के लिए है और बच्चों से ज्यादा अमूल्य निधि दुनिया में दूसरी नहीं है। वास्तव में बच्चा ही भविष्य है और शान्ति का आन्दोलन तत्वतः बच्चों की और भविष्य की रक्षा का आन्दोलन है। अगर आप अपने आप से पूछिए कि वह कौन सी चीज़ है जिसकी हिफ़ाज़त मौत के सौदागरों से आप पूरे दिलोजान से करना चाहते हैं तो मुझे यक़ीन है कि आपका दिल फ़ौरन यही कहेगा कि वह चीज़ बच्चा है, ख़ुद आपका बच्चा और आपके पड़ोसी का बच्चा और किसी भी माँ और किसी भी बाप का बच्चा चाहे वह दुनिया के किसी भी कोने में हो। सचमुच वह किसी बड़े मर्मी कवि का मन था जिसने बच्चों के हाथों से इस पुष्पवर्षा की बात सोची क्योंकि यह बात सच है कि बच्चे मनुष्य की पवित्रतम, उदात्ततम, वीरतम भावनाओं को जगाते हैं और हमारा शान्ति आन्दोलन ऐसी

ही भावनाओं पर अवलम्बित है। उन बच्चों को देखकर हमने कुछ कहा नहीं क्योंकि कहने के लिए हमारे पास ज़बान नहीं थी। हमने सिर्फ़ उठाकर उन्हें सीने से लगा लिया और अपने मन ही मन दुबारा शपथ ली कि इन नन्हें फरिश्तों की हिफ़ाज़त के लिए आखिरी साँस तक लड़ेंगे क्योंकि वे ही मानवता की नयी सुबह हैं, वह खूबसूरत नयी सुबह जिसमें एक से एक प्यारे रङ्ग होंगे। हाँ, उस उषः वेला में मुस्कराता हुआ आशा से भरपूर भविष्य हमारे पास फूल बिखेरता आया था। हमने उसे फ़ौरन पहचान लिया और उसे उठा कर चूम लिया, इसीलिए कि वह हमारा था और हम उसके थे।

मगर हमारे लिए एक और भी ताज्जुब की चीज़ अभी बाकी थी। एक दरवाज़ा खुला और इन्द्रधनुषी रंगों की एक लहर अन्दर आयी। अब यकायक दूसरा दरवाजा खुला और हमने सौ तरुणों तरुणियों के पूरे आर्केस्ट्रा को खड़े देखा। हो सकता है और भी ज्यादा लोग रहे हों। दरवाज़े के खुलते ही आर्केस्ट्रा बजने लगा और उनके सशक्त तेजस्वी जन गान शुरू हो गये। उनमें एक अजीब आग थी, एक विचित्र आवेश, एक अपूर्व तेजस्विता जैसे वे गाने ख़ुद एक चुनौती हों। एक के बाद एक कई गाने हुए और मेरा खयाल है कि क़रीब एक घण्टे तक यह चीज़ चली होगी जबकि हमको भी उसकी 'छूत' लगी। दुर्भाग्य से हमारी तरफ़ गाना जानने वाले ज्यादा लोग नहीं थे क्योंकि हमारे जनवादी आन्दोलन में जन-गायन की वैसी कोई परम्परा नहीं रही। लेकिन हमारे बीच एक अच्छे बंगाली गायक क्षितीश बोस ज़रूर थे। उन्होंने बंगाली लोक गीत गाने शुरू किये जिन्हें लोगों ने बहुत पसन्द किया। यह सांस्कृतिक आदान-प्रदान, गानों का यह लेन-देन काफ़ी देर तक चलता रहा और और भी देर तक चल सकता था लेकिन फिर हमने सोचा कि यह उन चीनी दोस्तों के ऊपर बहुत बड़ा ज़ुल्म होगा लिहाज़ा उनको छुट्टी देने के खयाल से हम लोग अनिच्छापूर्वक वहाँ से चल दिये। मैं हाल से बाहर जा रहा था और पीछे मुड़कर बार बार उसकी हर एक चीज को देख रहा था जैसे उस हाल से विदा ले रहा होऊँ। मेरे लिए वह हाल मुर्दा ईंट-गारा नहीं था, उसकी भी एक आत्मा थी। इसी हाल में मैंने पहली

बार चेयरमैन माओ को भोज में देखा था और फिर इसी हाल में शान्ति-सम्मेलन के अधिवेशनों में बैठा था और नाज़िम हिकमत, कुओ मो जो, सुंग चिंग लिंग और एमी शिआओ जैसी इस युग की कुछ महानतम सांस्कृतिक प्रतिभाओं को देखा था, बोलते सुना था और बातें की थीं ..अब उस हाल से विदा लेने की बारी थी। कौन जाने फिर कभी मुझे यह जगह देखनी न नसीब हो। हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती। कुछ कहा नहीं जा सकता। इसलिए मन में एक तरह की मसोस थी जिसे लिये हुए मैं हाल से बाहर आया। यह एक सच्चाई है कि गो हम चीन में बहुत थोड़े ही दिन रहे तो भी न जाने क्यों वहाँ की हर चीज़ से हमको एक ऐसा लगाव पैदा हो गया कि उससे जुदा होते वक्त तकलीफ हुई।

फूल, बच्चे, गाने, हमारे लिए चलते-चलाते सम्मेलन का यही आख़िरी सन्देश था और इसमें सन्देह नहीं कि इन अन्तिम और कभी न भूलनेवाले दृश्यों के कारण हमें इस बात को और भी साकार रूप में समझने में मदद मिली कि शान्ति के नाम पर आख़िर वह चीज़ क्या है जिसकी हम हिफ़ाज़त करना चाहते हैं।
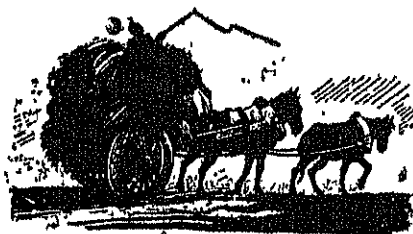
हम लोग २४ सितम्बर को पीकिंग पहुँचे थे। पहली अक्टूबर को चीनी राष्ट्रीय दिवस होता है। हमने उसके बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। हमें पता था कि उस दिन सारी दुनिया से लोगों को आमन्त्रित किया जाता है इसलिए स्वभावतः हमारे दिल में भी उसको देखने की ललक थी। हमारा भी एक राष्ट्रीय दिवस होता है, पन्द्रह अगस्त, जिस दिन देश को आजादी की खुशी मनाने के लिए कहा जाता है। लेकिन कौन नहीं जानता कि पहली पन्द्रह अगस्त यानी पन्द्रह अगस्त सन् सैंतालीस को छोड़कर जब कि लोगों में वाक़ई बहुत जोश था और उमंग थी, धीरे धीरे अब उस जोश और उमंग की धज्जी-धज्जी उड़ चुकी है और पन्द्रह अगस्त एक मातम का दिन बन गया है और सभी के चेहरे और दिनों ही की तरह उस रोज भी मुर्दा और बुझे हुए नजर आते हैं। उस चीज को देखकर बलात् आदमी को यह अनुभव होता है कि जरूर हमारी कौम की ज़िन्दगी में कहीं कोई बड़ा घोटाला है वर्ना यह कैसे हुआ कि सारी कौम के दिल में अन्दर ही अन्दर कोई च मर गयी, टूट गयी, बुझ

गयी । ये बातें अकारण नहीं हुआ करतीं । गुलामी से अपनी नजात के रोज़ भी, अपनी मुक्ति के दिन भी अगर लोगों के दिल और उनके चेहरे बदस्तूर बुझे रहें तो समझना चाहिए कि वह कोई बड़ा मर्ज़ है जो भीतर ही भीतर कौम को खाये जा रहा है । मैं नहीं जानता, हो सकता है इसकी वजह यह हो कि लोगों की उम्मीदों का शीराज़ा बिखर गया है ।

यही चीज़ अन्दर-अन्दर मुझे मथ रही थी जब मैं चीनी राष्ट्रीय दिवस के दो तीन दिन पहले पाकिंग की सड़कों पर घूम रहा था । मैंने देखा कि आने वाले उत्सव के लिए चारों तरफ़ जोर शोर से तैयारियाँ हो रही थीं । शहर भर में बड़े-बड़े द्वार बन रहे थे और उनकी शहतीरों को शोख लाल रंग के कपड़ों से ढका जा रहा था और उनके ऊपर बहुत से रंगों में खासकर सुनहले रंग में खूबसूरत सजावटें की जा रही थीं । खूनी लाल रंग और सोने का रंग इन दोनों का मेल बहुत ही खूबसूरत होता है और चीनियों को रंगों का यह मेल विशेष रूप से भाता है । 'स्वर्गिक शान्ति के स्वर्गद्वार' तिएन आन मन के सामने के मैदान में चार ऊँची-ऊँची मीनारें बनायी गयी थीं जिन पर उनकी राष्ट्रीय ध्वजा फहरा रही थी । दस्तकारी के काम में चीनी कौम यकता है और इस वक्त वह अपनी सारी प्रतिभा सजावट के काम में लगा रही थी । हर आदमी इस उत्सव को और भी दीप्तिपूर्ण, और भी रंगीन, और भी आवेगपूर्ण और सुन्दर बनाने के लिए जी जान से काम कर रहा था । जैसे सब के दिल में बस एक बात हो कि हमारी कौम में जो कुछ बेहतरीन है वह उस दिन बाहर आ जाये ताकि किसी को यह शुबहा न रहे कि चीन के लोग अपनी आज़ादी के बारे में क्या ख़याल करते हैं और दुनिया देख ले कि चीनियों को अपनी आज़ादी से कितना प्यार है । लिहाजा सब लोग अपने घरों को सजा रहे थे, फूलों से, दीप मालाओं से, और सभी घरों में बच्चे, बूढ़े, जवान, औरत, मर्द, काग़ज के और कपड़ों के फूल काढ रहे थे, बन्दनवार बना रहे थे । और यह कुछ अनहोनी चीज़ थोड़े ही थी । यह वही चीज़ थी जो हमने भी पहली पन्द्रह अगस्त को की थी जब हमारी उम्मीदें ज़िन्दा थीं और किया करते हैं जब हमारे दिल में खुशी होती है । दिल खोल कर खुशी मनाने के लिए अपील निकालने की ज़रूरत नहीं

होती और जब अपील निकालने की जरूरत पड़े तो समझ लीजिए कि कहीं पर कोई गड़बड़ है वर्ना जब वाक़ई कोई खुशी की बात होती है तो सबसे पहले आदमी का खुद अपना दिल इस चीज़ की गवाही दे देता है। हमारे देश में यह चीज़ क्यों नहीं हुई ? क्यों हर साल का पन्द्रह अगस्त मरघट की तरह मनहूस मालूम होता है ? क्या हमारे देश के लोगों में खुशी मनाने का माद्दा नहीं है ? जाकर देखिए लोग कैसे खुशियाँ मनाते हैं जब वाकई उनके दिल में खुशी होती है। आखिर किस बात की खुशी मनाये हम लोग उस रोज़ ? क्या इस बात की कि भूख और गरीबी, बेकारी और बीमारी पहले से भी ज्यादा बढ़ गयी है और जीना मुहाल हो गया है और लोग हँसना भूल गये हैं ? मसल मशहूर है कि मिठाई की दलील उसके खाने में होती है। कोई लाख इसे आज़ादी कहे लेकिन अगर इसने हमको चैन नहीं दिया, आराम नहीं दिया, हमारी ज़िन्दगी को बेहतर नहीं बनाया तो हम कैसे समझें कि यह झूठी आज़ादी नहीं है ? तो फिर हम उस रोज़ किसके घर से जाकर जोश और उमंग का खज़ाना उठा लायें ? और जो यह कहिए कि खुशी का चेहरा लगा लें तो वह तो थोड़ा बहुत करने की कोशिश करते ही हैं लेकिन वह चीज़ ज्यादा देर नहीं चलती क्योंकि वह हमारा चेहरा नहीं मिट्टी का चेहरा है और असली चेहरा कहीं न कहीं से झलक ही जाता है !

चीन की जनता ने अपनी आज़ादी की मिठाई को वाकई चखा है। इसलिए अपनी आजादी के रोज़ वह अपनी सारी उमंग उड़ेल देना चाहती है क्योंकि उसी दिन उसकी नयी ज़िन्दगी शुरू हुई और वह मिठाई उसको चखने को मिली। इसीलिए हर आदमी कुछ न कुछ करना चाहता है और हमने घूम कर देखा कि कर रहा था। कोई झंडा बना रहा था, कोई प्लैकार्ड बना रहा था, कोई शान्ति का कबूतर बना रहा था या कागज़ पर कोई दूसरा डिज़ाइन काट रहा था या कोई नारा लिख रहा था, ग़रज़ हर कोई कुछ न कुछ कर रहा था ताकि उत्सव को उसकी कोई खास निजी देन भी हो। यहाँ तक कि छोटे-छोटे बच्चे भी रामजी की गिलहरी की तरह जो सेतुबन्ध के लिए मुँह में तिनका दबाये पहुँची थी, कुछ न कुछ कर रहे थे और उसी क्रान्तिकारी जोश

से कर रहे थे जिससे कि उनके बड़े लोग जिन्होंने अपनी आज़ादी की लड़ाई लड़ी और जीती थी। जैसा कि मैंने तीन दिन बाद देखा यह एक ऐसी इन्कलाबी क़ौम का इन्क़लाबी उत्सव था जिसे नयी ज़िन्दगी मिली है।

मेरा खयाल है कि हम लोग अपनी जगह पर कोई घण्टा भर खड़े रहे होंगे जब कि दस बजा। दस बजते ही तोपें सलामी देने लगीं। तोपों की सलामी के साथ चेयरमैन माओ तिएन आन मन के बार्जे पर आकर खड़े हुए। वहीं से वे हमेशा सलामी लेते हैं। हम जानते थे कि वे आयेंगे और वे आये गोकि हागकांग के साम्राजी अखबारों ने हमें कुछ दूसरी ही बात बतलायी थी। उन्होंने हमें बतलाया था कि चेयरमैन माओ हरगिज इस बार वहाँ आने की हिम्मत नहीं करेंगे क्योंकि पिछले साल इसी रोज अमरीकी साम्राज्यवादियों के हाथ बिके हुए कुछ हत्यारों ने उनको और नये चीन के दूसरे बड़े नेताओं को मार डालने की साजिश की थी। उनका इरादा उस जगह को ही बम के धड़ाके से उड़ा देने का था लेकिन ऐसा करने के पहले ही उन्हें पकड़ लिया गया। तो भी हागकाग के अखबारों का खयाल था कि इस बार चेयरमैन माओ वहाँ आते डरेंगे। कैसी फ़िज़ूल बात है। बुजदिल आदमी सबको बुज़दिल समझता है!

ठीक दस बजे तोपों की गरज सुनायी दी और ठीक दस बजे चेयरमैन माओ अपनी जगह पर खड़े दिखायी दिये।

पहले फौजी मार्च पास्ट हुआ जिससे नये चीन की फौजी ताक़त की थोड़ी सी झाँकी मिली। सबसे पहले पैदल फ़ौज गुज़री। उनकी वर्दियाँ अच्छी थीं मगर बहुत अच्छी नहीं। यह चीज साफ थी कि सारा जोर वर्दी पर यानी चमकदार जूतों और चमचमाते बटनों और बकलों पर ही नहीं था। मेरे पास खड़े हुए किसी आदमी ने कहा कि सैनिकों की वर्दी कुछ बहुत अच्छी नहीं है जिसका जवाब दूसरे किसी आदमी ने दिया कि पहले राष्ट्रीय दिवस पर तो उनकी वर्दी इससे भी ख़राब थी। उसने बतलाया कि मैं उस रोज मौजूद था और कह सकता हूँ कि वे लोग उस दिन सचमुच चीथड़े पहने हुए थे और उनके जूतों का तो हाल न पूछिए। अब सब के पैरों में कम से कम किरमिच के जूते

तो हैं और जिस्म पर चाहे कितने ही मामूली कपड़ों की ही सही मगर एक पूरी वर्दी तो है जो कम से कम फटी-चिथी तो नहीं है। मैंने उनको बात करते सुना और मन ही मन खुद अपने निष्कर्ष निकाले। चीनी जनता की यह महान मुक्ति सेना जिसके साहस और शौर्य की गाथाएँ मौजूद हैं, आज़ादी की इन्क़लाबी लड़ाई के दौर में ही पैदा हुई। वह सचमुच में क्रान्ति की सन्तान है और जनता की सेना है। इसलिए स्वभावतः वह ऊपरी टीमटाम पर बहुत जोर नहीं देती क्योंकि वह अपने तजुर्बे से जानती है कि ऊपरी टीम-टाम से नहीं बल्कि सच्ची बहादुरी से कोई सेना अच्छी सेना बनती है। अच्छी सेना वह है जिसके सैनिकों में लड़ने का जोश होता है, जो अपने सैनिकों को राजनीतिक शिक्षा देती है, उनको सदाचार के ऊँचे मानदण्ड देती है, उनके अंदर तकलीफ़ें सहने और कुरबानी करने का माद्दा पैदा करती है, उनके भीतर के महान मानवीय सद्गुणों को उजागर करती है। टीम-टाम तो ऊपरी चीज है, उससे क्या आता जाता है। चमकदार जूते और कस कर कलप की हुई वर्दी पहन लेने से ही कोई सेना अच्छी नहीं हो जाती। इसलिए कपड़ों-वपड़ों के मामले में यह मुक्ति सेना बस उतने से सन्तुष्ट है जितना कि एकदम जरूरी है और जहाँ तक वे दूसरे मामले हैं उनमें उसका मानदण्ड इतना ऊँचा है कि वह कभी पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं होती और हमेशा ऊपर उठने की, आगे बढ़ने की कोशिश में लगी रहती है। मुक्ति सेना के ये किसान युवक वही हैं जिन्होंने लाजवाब बहादुरी के कारनामे दिखलाये हैं—मगर थे उनके बदन पर चीथड़े ही! आख़िर को अपनी ग़रीबी और बदहाली से लड़ने के लिए ही तो उन्होंने इस फ़ौज को जन्म दिया। तो फिर भला कैसे वे ऊपरी टीम-टाम पर जोर दें? मगर जो कुछ मैंने लिखा है उससे कोई यह नतीजा न निकाले कि सैनिक बहुत बुरे कपड़े पहने हुए थे। जरा भी नहीं। लेकिन जो बात मैं कहना चाहता हूँ वह यह है कि चीनी जनता की मुक्ति सेना ऊपरी टीम-टाम पर नहीं बल्कि अपने सैनिक के मानसिक संस्कार पर जोर देती है।

पैदल फ़ौज के पीछे घुड़सवार फ़ौज आयी। घोड़ों को देखकर किसी ने कहा कि देखो कैसे छोटे-छोटे से, मरियल से, पस्ताक़द घोड़े हैं! घोड़े तो अरबी

होते हैं। मेरा ख्याल है इसका जवाब मेरे दोस्त डाक्टर आलीम ने दिया। उन्होंने कहा : शायद आप ठीक कहते हैं। देखने में तो ये घोड़े वाक़ई बहुत अच्छे नहीं हैं। उनको देखकर आँखों को मसर्रत नहीं होती। मगर आपको यह न भूलना चाहिए कि ये वही चंगेज़ और तैमूर के घोड़े हैं जिन्होंने एशिया से उठकर योरोप को फ़तह करते हुए स्पेन तक की मंज़िल सर की थी! ये देखने में ही मरियल हैं।

हम लोग अपनी जगह पर खड़े-खड़े घंटों तक यह परेड देखते रहे। घुड़-सवार फ़ौज के बाद समुद्री बेड़े के लोग फिर उनके पीछे हवाई बेड़े के लोग, फिर पैराशूट वाले, फिर फ़ौजी बैन्ड और उसके पीछे-पीछे बख्तरबन्द गाड़ियाँ, हलके टैंक और भारी टैंक और बड़ी-बड़ी सर्चलाइटें—एक नातमाम सिलसिला था। तभी आवाज़ की रफ्तार से तेज़ भागने वाले हवाई जहाज उधर से आये और निकल गये। उनको देखने के लिए हमने आसमान की तरफ़ निगाहें उठायीं मगर पलक मारते वे हमारी नज़र से ओझल हो गये थे। उसके बाद फ़ौजी परेड खतम हो गयी और फिर जनता का महान् प्रदर्शन शुरू हुआ—मज़दूरों का, किसानों का, विद्यार्थियों का, सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं का। वाक़ई यह बतलाना मुश्किल है कि कितने लोग उस प्रदर्शन में रहे होंगे। तिएन आन मन के सामने की सड़क करीब पचहत्तर-अस्सी गज़ चौड़ी होगी और उस पर तिल रखने को जगह नहीं थी और इस प्रदर्शन को वहाँ से गुज़रने में पूरे चार घंटे लगे। मेरा ख्याल है कि क़रीब दस लाख आदमी रहे होंगे। जुलूस चलता चला जा रहा था मगर भीड़ में कोई कमी न होती थी और कितनी ज़िन्दगी मालूम होती थी उनमें, जैसे उत्साह और अनुशासन साकार हो उठा हो। उनके उस बेइन्तहा जोशोखरोश से शायद कोई यह खयाल करे कि वह बस एक भीड़ बन गये होंगे और कोई व्यवस्था या अनुशासन वहाँ बाकी न बचा होगा और लोग क़तारें तोड़ताड़कर हड़बोंग मचा रहे होंगे, मगर ऐसा सोचना ग़लत है। यह क्रान्तिकारी अनुशासन में बँधा हुआ क्रान्तिकारी उत्साह था। अगर यह अनुशासन न होता तो उन्होंने मतवाली नदी की तरह दोनों तरफ़ के कगार तोड़ दिये होते। मगर नहीं, वे एक गहरी नदी की तरह बहते चले जा रहे थे।

आज जब मैं उस प्रदर्शन को याद करता हूँ तो लगता है कि वह रंगो और उबलती हुई ख़ुशियों का एक मेला था। उन लाखों हाथों में शायद एक हाथ भी ऐसा न रहा होगा जो कोई न कोई चीज़ न पकड़े हुए हो, चाहे झण्डा, चाहे पोस्टर, चाहे प्लैकार्ड, चाहे गुलदस्ता, चाहे गुब्बारा, चाहे दफ्ती का बना कबूतर, चाहे असली जानदार पंख फड़फड़ाता कबूतर, चाहे मिट्टी का बना हुआ किसी चीज का कोई माडल। मजदूरों के पास अपनी चीजो के माडल थे, किसानों के पास अपनी सब्जियों के माडल थे, फलों और कपास के माडल थे। एक बात मुझे बड़ी नायाब लगी कि चीनी लोग रंग-बिरंगा असर पैदा करने के लिए झण्डों का इस्तेमाल करते हैं—तमाम रंगो के झण्डे और झण्डियाँ और फ़ीते। लाल, सुनहले, नीले, हरे, गुलाबी, बैंगनी, सभी रंगों के तो झण्डे थे और इन रंगो के अलावा इनके अलग अलग शेडों के रंग के भी झण्डे थे। क्या खूब रंगो की बहार थी, जैसा कि सचमुच आज़ादी के जशन को होना चाहिए। ये रंग ही तो लोगों की ख़ुशियो और सपनो के प्रतीक हैं। लाल झण्डे भी वहाँ पर बहुत से थे मगर सभी राष्ट्रीय झण्डे नहीं थे और न सब मज़दूरो के ही झण्डे थे। बस साधारण लाल रंग के झण्डे थे। हवा में जब ये लाल झण्डे उड़ते, ये हज़ारों झण्डे, तो ऐसा मालूम होता कि जैसे लपटें उठ रही हों, कि जैसे यह किसी बहुत बड़ी आग की लपलपाती चीज़ें हों, कि जैसे किसी जंगल में आग लगी हो। मैं समझता हूँ कि रंगों के ऐसे इस्तेमाल की वजह से ही कुछ दृश्य में जादू का सा असर पैदा हो गया था, उसमे एक नशा सा घुल गया था। और मै समझता हूँ कि रंगों का ज़्यादा से ज़्यादा इस्तेमाल करने की यह जो पूर्वी देशों के लोगों की खास आदत है उसके कारण पीकिंग की यह परेड मास्को की परेड से कुछ अलग ही असर पैदा करती है। मेरे पास के एक सज्जन ने जिन्होंने मास्को की भी परेड देखी थी मुझको बतलाया कि वह इससे भी बड़े पैमाने पर होती है लेकिन उसमें रंगों की यह बहार नहीं होती।

कितना अच्छा हो कि कोई महान चित्रकार उस क्षण की भावना को

पकड़ सके, उसके वातावरण को चित्रित कर सके। बड़ा मुश्किल काम है यह क्योंकि इतनी बहुत सी भावनाएँ आपस में मिली हुई हैं कि उनके धागों को, उनके ताने-बाने को अलग करना बहुत कठिन है। उल्लास, गर्व, क्रान्तिकारी विनयशीलता, महान आत्म-विश्वास, हँसते-हँसते झेली गयी मुसीबतों के दाग, किसी का कोई प्यारा जो खो गया और एक नयी दुनिया जो मिल गयी, वह दुःस्वप्न जिसे वे अभी-अभी पीछे छोड़ कर आये हैं और वह सुन्दर नया भू-स्वर्ग जिसमें वे दाखिल होने वाले हैं, जिसे उन्होंने अपने खून-पसीने से हासिल किया है—यह सभी भाव तो थे उन चेहरों पर। उन्होंने पूरे बाईस बरस तक रौरव नरक भोगा है तब कहीं आज उन्हें अपना यह स्वर्ग मिला है। ये सारी बातें उनके चेहरों पर और उनकी आँखों में लिखी हुई हैं, आँखें जिन्होंने इतनी यातनाएँ देखी हैं कि अब उन्हें इसकी बान पड़ गयी। मैं दूरबीन लगा कर उन चेहरों को अपने पास खींच लेता हूँ और उनके चेहरों पर लिखी हुई विराट् शान्ति को पढ़ता हूँ। ऐसा है यह मानवता का जुलूस जो मेरी आँखों के सामने से गुज़र रहा है। ताक़तवर हाथों ने मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन-स्तालिन, सुन यात सेन, माओ से दुंग, चू दे की बड़ी-बड़ी तसवीरें पकड़ी हुई हैं। एक दस्ता आया जिसमें सैकड़ों आदमियों ने चेयरमैन माओ की ही तसवीर ली हुई थी। हर एक आदमी के हाथ में एक छोटी-सी तस्वीर थी। फिर देखा कि न जाने कितने छोटे-छोटे से रंग-बिरंगे गुब्बारे आसमान में उड़ रहे हैं। तब तक एक बहुत बड़ा-सा गुब्बारा ऊपर उठा जिसमें एक फरेरा लगा हुआ था, चीनी जनता की सरकार जिन्दाबाद।

मगर सबसे बड़े अचम्भे की चीज़ तो वे कबूतर थे जिन्हें लड़कियों ने एकाएक छोड़ दिया। किसी को सपने में भी गुमान नहीं था कि वह अपनी आस्तीनों में कबूतर छिपाये हुए हैं। एकाएक हमने सैकड़ों कबूतरों को उड़ते हुए देखा। उनमें से कुछ आकर हमारे पास मुंडेर पर बैठ गये। हम उन्हें प्यार से उठाकर सहलाने लगे। वे उन नन्हीं लड़कियों के पास से प्रेम और शान्ति का सन्देश लाये थे, उन लड़कियों के पास से जिन्होंने अपनी छोटी-सी जिन्दगी में बहुत तकलीफें सही हैं और बहुतों को अपने से

बिछुड़ते देखा है और जो अब सिर्फ एक चीज़ माँगती हैं, शान्ति—शान्ति अपनी रंग-बिरंगी कहानियों की किताबों के लिए और अपनी गुड़ियों के लिए, अपने गाने के लिए और अपने नाच के लिए। उन सुकुमार सन्देशवाहकों को सहलाते हुए हमने उनके कानों में धीरे से अपनी मूक शपथ कही : इन नन्हीं नन्हीं लड़कियों को शान्ति पाने का अधिकार है और उन्हें वह चीज़ मिलेगी।

जिन्दगी और शान्ति का एक और बड़ा प्रतीक फूल है। और कितने फूल न रहे होंगे वहाँ! ऐसा लगता था कि उस दिन के बाद शहर के किसी बाग़ में एक फूल न बचा होगा। आदमियों ही की तरह फूल भी सड़कों पर निकल आये थे और प्रदर्शन में भाग ले रहे थे जैसे उनमें भी जान पड़ गयी हो। जिस वक़्त लड़कियों ने अपने हाथों के गुलदस्ते अपने सरों के ऊपर उठाये और हमारे अभिवादन में उन्हें हिलाने लगीं उस वक़्त सचमुच ऐसा जान पड़ रहा था कि जैसे फूलों की क्यारियाँ हिल रही हों। हम लोग ज़रा ऊँचाई पर खड़े थे और गुलदस्ते लम्बे आकार के बने हुए थे जिसकी वजह से हमारी उस ऊँचाई पर से वाक़ई गुलदस्तों का हिलना क्यारियों का हिलना मालूम होता था क्योंकि हमें वहाँ से न तो उन गुलदस्तों के हत्थे नज़र आते थे और न उनको हिलानेवाले हाथ। हमको तो सिर्फ़ फूल नज़र आते थे जिनमें जान सी पड़ गयी मालूम होती थी।

रात को उसी तिएन आन मन के चौक में हमने आतिशबाज़ियाँ देखीं और नाचों में शरीक हुए। यह इतिहास की बात है कि दुनिया को बारूद चीनियों ने ही दी है। वह उन्हीं की ईजाद है और जैसा कि मशहूर उपन्यासकार और केन्द्रीय सरकार में संस्कृति के उप मन्त्री माओ दुन ने लेखकों-कलाकारों की एक मीटिंग में कहा था : चीनी कभी बारूद को लड़ाई के कामों के लिए, हमलावर कामों के लिए, इस्तेमाल नहीं करना चाहते थे। उसका इस्तेमाल वे आतिशबाज़ियों के लिए ही करना चाहते थे और अगर उन्हीं पर छोड़ दिया गया होता तो शायद उन्होंने उसका दूसरा कोई इस्तेमाल भी न किया होता।

हम लोग आतिशबाज़ी देखते रहे मगर फिर उससे तबियत उकताने लगी

और सामने सड़क पर जो नाच-गानों का दौर चल रहा था, खुशी का मजमा लगा हुआ था उसकी पुकार आने लगी। यह तो कुछ सर्द सी ही बात थी, अपनी जगह पर बैठे-बैठे आतिशबाजी को देखते रहना। असल मज़ा तो वहाँ लोगों के संग नाचने गाने में है, वहाँ जहाँ औरत, मर्द, लड़के, लड़कियाँ बीसियों टोलियों में बँट कर ऐसे नाच-गा रहे हैं कि जैसे उन्हें दूसरी किसी बात का होश ही न हो। और इसमें ताज्जुब ही क्या, क्योंकि यह तो उनकी नई ज़िन्दगी का त्यौहार है।

मुझे वहाँ जाने में कुछ हिचक सी मालूम हुई क्योंकि यह मैंने भी समझ लिया कि पहुँच जाने पर वे लोग मुझे छोड़ेंगे नहीं और नाचने के लिए मजबूर करेंगे और मैं खामखाह सबके लिए हँसी का एक मजमून बन जाऊँगा। यह बात कुछ ठीक नहीं थी इसलिए मैं काफ़ी देर तक अपने को रोके रहा। मगर जादू तो वह जो सर पर चढ़ कर बोले। उस चीज़ का नशा मेरे मन पर भी गहरा होता जा रहा था और आखिरकार मुझे वहाँ नीचे सड़क पर जाना ही पड़ा जहाँ नाच चल रहे थे। चीन के राष्ट्रीय नृत्य का नाम याको है। हमारे लोक-नृत्य ही की तरह चीनी यांको भी मर चला था जबकि इस जनवादी सरकार ने आकर उसे नयी ज़िन्दगी बख्शी और एक बार फिर बहुत ज़ोर शोर से फैलाया। अब चीन भर में लोग यह नाच नाचते हैं और बिना किसी शर्म-झिझक के। ज़्यादातर लोगों को नाचना आता है। इसलिए किसी को उसमें उलझन नहीं महसूस होती। जब जगह और वक़्त उन्हें नाच के लिए पुकारता है तो पलक मारते भर में उनका नाच शुरू हो जाता है। वह चाहे सड़क हो, चाहे रेल का प्लैटफ़ार्म, चाहे विश्वविद्यालय का कम्पाउन्ड, चाहे शहर हो, चाहे देहात, सभी जगह मैंने उनको कई बार नाचते देखा। छोटे-छोटे बच्चे तक याको जानते हैं। मैं समझता हूँ कि यह अपने आप में एक बहुत बड़ी बात है कि चीन जैसे विशाल देश में सभी लोग यही याको नाचते हों, उत्तर में, दक्खिन में, पूरब में, पच्छिम में। यह ख़्याल तो ख़ैर मुझे बाद को आया जब चीन में मैं काफ़ी घूम लिया था। मगर उस रात को तो जब मैं जशन मनाने वालों की भीड़ में खड़ा था और ज़रा-ज़रा से लड़के-लड़कियाँ और

वही नहीं, मुक्ति-सेना के बड़े-बड़े किसान सैनिक सब हमें बड़े ग़ौर से देख रहे थे क्योंकि हम हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि थे (उनकी ज़बान में इन्दू ताइव्याव) उस वक़्त तो मुझ पर भी उन जैसा ही उल्लास छाया हुआ था। मैंने यहाँ अपने देश में फ़िक्रों के मारे हुए खुश्क चेहरे देखे थे और वहाँ लोगों के बेफ़िक्र और मस्त चेहरे देख रहा था। मानव भावनाओं की, अनुभूतियों की अपनी एक सीधी-सच्ची भाषा होती है जिसे अपनी बात समझाने के लिए दूसरी किसी चीज़ का सहारा नहीं लेना पड़ता। जिस मस्ती से वे नाच-गा रहे थे उसको देखकर कोई भी यह कह सकता था कि उन्हें कल की चिन्ता नहीं है और वे खुश हैं और खुशियाँ मना रहे हैं और कहीं भूख और बदहाली की कराल छाया नहीं है जो उनकी खुशियों को डस सके। होली हिन्दुओं का सबसे बड़ा खुशी का त्योहार है लेकिन मैं देख रहा हूँ कैसे धीरे-धीरे उसकी सारी मस्तियाँ सूखती और ख़त्म होती चली जा रही है। ख़ैर हमारे राष्ट्रीय दिवस की तो बात ही निकालना बेकार है क्योंकि उस दिन तो किसी को उसमें खुशी नहीं मिलती। ज़रा सोचिए, यह सचमुच बहुत भयानक बात है कि करोड़ों इन्सानों को ज़िन्दगी में कोई खुशी न मिले। इससे बुरी बात किसी देश के लिए दूसरी नहीं हो सकती। आप देश के एक कोने से दूसरे कोने तक चले जाइए, आप को एक चेहरा नहीं मिलेगा जिस पर सच्ची खुशी हो। जैसे ज़िन्दगी में किसी को कोई मज़ा ही न मिल रहा हो। अब शायद ही कभी कोई आदमी दिल खोलकर बुलन्द आवाज़ में गाता सुनायी देता है, नाचने की तो बात ही अलग है। हमारी मेहनतकश जनता के पास नाच की एक बड़ी शानदार परम्परा है। लेकिन हमारे नाच बहुत तेज़ी से मरते जा रहे हैं वैसे ही जैसे कुओ मिन् ताग चीन में यांको मर गया था। सिर्फ़ आज़ाद लोग इस तरह नाच सकते हैं जैसे कि ये चीनी नाच रहे थे। मेरे लिए जनता की खुशी की इससे बढ़कर दूसरी कोई शहादत नहीं हो सकती थी। आँकड़े भी झूठे बनाये जा सकते हैं मगर यह नहीं। इस साखी के बाद फिर किसी चीज की जरूरत नहीं रह जाती। दुखी, ग़रीबी के मारे, ग़ुलाम बनाकर रक्खे गये लोग इस तरह नाच ही नहीं सकते। मन की यह खुशी संक्रामक थी और गो मैं

खुद नाच नहीं रहा था, खुशी मैं भी अपने दिल में वही महसूस कर रहा था जो कि वे लोग कर रहे थे। मगर भला यह कैसे मुमकिन था कि वे लोग मुझको इस तरह चुपचाप खड़े रहने देते। पहले उन्होंने मुझको इशारा किया कि आओ शरीक हो जाओ। उन्हें उम्मीद थी कि मैं उनका संकेत समझ जाऊँगा। लेकिन मैंने उनके संकेत को नहीं समझना चाहा। मगर चीनी बड़े हठीले लोग होते हैं। मेरी दुभाषिया मित्र वाग शाओ मेई ने कहा : हम चीनी लोग इस तरह के नाच में शरीक न होने को अभद्रता समझते हैं। इसमें आप को शरीक होना ही चाहिए। मैंने कहा, मैं नाच-वाच कुछ जानता नहीं और खामखाह सबका मजा किरकिरा कर दूँगा! भला इसमें क्या तुक है? मगर वह लड़की इतनी आसानी से मानने वाली न थी। उसने कहा, इसकी आप फ़िक्र न कीजिए, हम सब ठीक कर लेंगे। हम अभी देखते-देखते आप को यह नाच सिखा देंगे। यह नाच कुछ मुश्किल थोड़े ही है। बहुत आसान नाच है। इसमें कुछ ज्यादा सीखने को नहीं है। आपको पता भी न चलेगा और आप नाचने लग जायेंगे। मैं समझ गया कि अब छुटकारा नहीं मिलेगा और वक़्त की माँग यह है कि मैं नाच में शरीक हो जाऊँ, नाच पाता हूँ या नहीं नाच पाता, यह बहस बाद की है।

मुझे ठीक याद नहीं है कि मैं कब नाच में खींच लिया गया मगर यह अच्छी तरह याद है कि जिस खुले दिल से उन्होंने मेरा स्वागत किया और झूठे शिष्टाचार को बालायताक़ रख कर मुझे नाच के क़दम सिखाने शुरू कर दिये उसी का यह फ़ैज था कि मैं जल्दी ही घरापा महसूस करने लगा और मानिए चाहे न मानिए, सुदूर पीकिंग में तिएन आन मन के स्क्वायर में नाचने लगा! ज़रूर उस जगह में घर का कोई गुण होगा जो आदमी इतनी जल्दी घरापा महसूस करने लगता है। कहने का मतलब यह कि हवा में उड़ती हुई वह छूत मुझे भी अच्छी तरह लग गयी और मैं भी उस नाचती हुई भीड़ का एक जुज़ हो गया। उस नन्हें से क्षण में मैंने भी उनकी आज़ादी की मिठाई को थोड़ा सा चखा और उसका स्वाद इस वक़्त भी मेरे मुँह में बना हुआ है और मैं कह सकता हूँ कि उसमें कोई कड़वाहट नहीं थी।

नाच बड़ी रात तक चलता रहा, तकरीबन् सारी रात। हम लोग एक बार अपने होटल गये, खाना खाया और फिर जैसे किसी विराट् चुम्बक के आकर्षण से खिंच कर वापिस उसी चौक में पहुँच गये और फिर से जिन्दगी के नाच में शरीक हो गये।

चीन से लौट कर मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि ज़िन्दगी को समझने की हमारी और उनकी इकाइयाँ अलग-अलग हैं। हमको ज़िन्दगी में कोई खुशी नहीं मिलती और काम पहाड़ मालूम होता है। नये चीन के लोगों को ज़िन्दगी में और काम में हर चीज़ में खुशी मालूम होती है। आख़िर यह बात क्या है? बात शायद यह है कि हम दूसरों के लिए काम करते हैं, हमारे काम का फल हमको नहीं मिलता बल्कि दूसरा कोई हड़प जाता है जो काम नहीं करता। इसलिए हमको काम पहाड़ मालूम होता है जो कि स्वाभाविक ही है। बोयें हम और काटे और कोई, कपड़ा बनायें हम और उसे बेच कर मुनाफ़ा खड़ा करे और कोई, भले खुद हमारे शरीर नंगे रहें—ऐसी स्थिति में काम में उमंग आये भी तो कहाँ से! लिहाज़ा हम किसी तरह काम को भुगतते हैं क्योंकि दूसरी कोई राह नहीं है। अगर ऐसा होता कि हमारे काम का फल लौट कर हमीं को मिलता, जीवन की अनेकानेक सुविधाओं के रूप में, शिक्षा और संस्कृति की ऐसी व्यवस्था के रूप में जिसका फ़ायदा सबको मिले, इस रूप में

कि राष्ट्र अपने सभी नागरिकों के स्वास्थ्य की देख-भाल करे, अच्छे-अच्छे अस्पताल खुलें, दवाइयाँ मुफ़्त मिलें, खूब-खूब किताबें छपें और थियेटर खुलें। ये सब चीजें हों तो काम करने वाले को भी मालूम हो कि उसके काम का खुद उसके लिए भी कोई मूल्य है। लेकिन यह बात तो है नहीं। यह तो सट्टेबाज़ों और ब्लैकमार्केटियरों और ठगों की दुनिया है जिसमें हम रह रहे हैं, हमारे यहाँ आज उन्हीं की तो तूती बोल रही है ? तो फिर आप ही सोचिए इस परिस्थिति में कोई ईमानदार काम करने वाला कैसे खुश रह सकता है ? इसमें या तो सट्टेबाज खुश रह सकता है या उसका दलाल। तीसरे आदमी की तो गुज़र ही नहीं है वहाँ। लिहाजा यह तीसरा आदमी जिन्दगी से बेज़ार खच्चर की तरह जैसे-तैसे अपनी गाड़ी को खींचता है। और यह एक ऐसी भावना है जिसे कोई भी अपीलें दूर नहीं कर सकती चाहे कितनी ही ललित शब्दावली का प्रयोग वे क्यों न करें। यह चीज तो समाज व्यवस्था में आमूल परिवर्तन के साथ ही दूर होगी।

आज़ादी के पहले चीनी मज़दूर को भी अपना काम ऐसा ही पहाड़ मालूम होता होगा जैसा कि हमको मालूम होता है क्योंकि अब यह बात सबकी समझ में आ गयी है कि कुओ मिन् तांग सरकार महाठगों की सरकार थी। मगर अब चीनी मेहनतकश की दुनिया बदल गयी है। अब वह आप अपना मालिक है और उसको लूटने वाला कोई नहीं है। अब वह स्वयं अपने हित में काम करता है—वह जानता है कि जो अतिरिक्त परिश्रम वह करेगा वह किसी पूँजीशाह का मुनाफ़ा नहीं बनेगा बल्कि किसी न किसी रूप में खुद उसी के पास लौट आयेगा। 'व्यक्तिगत स्वार्थ से ही काम में उत्साह पैदा होता है' ऐसी बात कहने वाले लोगों को चाहिए कि नये चीन जायें और अपनी आँखों से देखें कि कैसे समाज हित के लिए काम करने की प्रेरणा व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रेरणा से कहीं बढ़ चढ़ कर होती है। इन दार्शनिकों का खयाल है कि जहाँ यह व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होगा वहाँ दुनिया ठप्प हो जायगी लेकिन असलियत यह है कि जहाँ पर यह चीज है वहीं पर दुनिया ठप्प है। तमाम फोरमैनों और जाबरों की सेना और जुर्मानों और ज़रा सी ढील काम से अलग कर देने की,

बन्दिशों के बावजूद व्यक्तिगत मुनाफे पर खड़ी हुई दुनिया मज़दूर से पूरा काम नहीं ले पाती। दोनों के दर्मियान सदा चूहे-बिल्ली का खेल चलता रहता है। मालिक लोग जुर्माने करते रहते हैं, फोरमैन और जाबर लोग डाँट-फटकार लगाये रहते हैं मगर तब भी अगर काम में मज़दूर का जी नहीं लग रहा है तो वह कामचोरी की कोई न कोई जुगत निकाल ही लेता है।

बहुत जमाने तक समाजवाद के खिलाफ, जनसत्ता के खिलाफ लोगों ने यही दलील दी है कि जब पूँजीपति ही नहीं रहेंगे तो दुनिया कैसे चलेगी, काम कैसे चलेगा, काम तो अपने मुनाफे को देख कर होता है। समाजवाद में तो सभी कुछ समाज और राष्ट्र की हवाई सत्ता के लिए करना होगा तो भला कौन काम करेगा! कुछ ही दिन में यह समाज प्रणाली अपने आप भहरा कर गिर पड़ेगी क्योंकि वह मानव स्वभाव की विरोधी है! लेकिन मानव स्वभाव के ये पण्डित एक बात भूल गये कि मुनाफा उसी चीज़ को नहीं कहते जो कि लाखों लोगों को चूस कर अपने बैंक में भरा जाता है बल्कि मुनाफा वह भी होता है जो कि पूरे समाज को मिलता है और जिसमें समाज के सब लोग मिलकर हिस्सा बटाते हैं। जन-सत्ता की समाज प्रणाली में पहुँच कर व्यक्ति और समाज के हित एक हो जाते हैं, दोनों में टक्कर नहीं रह जाती। मानव स्वभाव के ये पण्डित इस बात को भूल गये और इसलिए भूल गये कि पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के आगे सोच सकने की ताब उनके अन्दर नहीं है।

इसके विपरीत जन-सत्ता में क्या बात होती है, इसे मैंने चीन में जाकर देखा। हम लोग शाघाई और तिएन्जिन की सरकारी कपड़ा मिलें देखने गये थे और दोनों जगह पर हमने काम को बहुत सुचारु रूप से होते हुए देखा। कारखाना सेहतमन्द आदमी के साँस लेने की तरह मजे में काम कर रहा था। न कहीं कोई शोर-गुल न कोई डाँट-फटकार, न कोई मार-पीट न फोरमैन की कठोर आँखें, यह सब कहीं कुछ नहीं था। मज़दूर, चाहे पुरुष चाहे स्त्री, पूरी तन्दिही से और जी लगा कर काम कर रहा था। हमने किसी को गप-शप करते और फिजूल वक्त गँवाते नहीं देखा। काम बड़ी पवित्र चीज़ है। देश के प्रति और जनता के प्रति वह तुम्हारा कर्तव्य है और

जो आदमी काम से जी चुराता है वह वास्तव में देशद्रोह करता है। कुछ यही भावना उनके अन्दर काम कर रही थी। यह बात कुछ नयी नहीं है मगर ग़ौर करने की चीज यह है कि पूँजीशाही गुलामी की हालत में यह सिद्धांत बस एक पवित्र सिद्धान्त होकर रह जाता है जो किताबों से बाहर जिन्दगी में कहीं नहीं दिखलायी देता और कोई उस पर अमल नहीं करता। मगर नये चीन में मैंने देखा कि यह चीज काम करने वालों की चेतना का अंश बन चुकी है और यही बड़ी बात है। यह ख़ुद नई समाज व्यवस्था की सच्चाई का एक प्रमाण है। कपड़े के कारख़ाने में सत्तर फ़ी सदी मजदूर स्त्रियाँ हैं। मैंने उन्हें ध्यानपूर्वक, सावधानी से, प्रसन्न मुद्रा में काम करते देखा। वे इस बात का ख़ास ध्यान रख रही थीं कि कम से कम बरबादी हो। कहीं बहुत उछलकूद नहीं थी और न दिखौआ भागमभाग क्योंकि उसकी जरूरत नहीं थी। बहुत सम गति से काम चल रहा था। चीनियों में मैंने एक ख़ास बात यह देखी कि कड़ी से कड़ी मेहनत करते हुए भी उनकी मुद्रा ऐसी बनी रहती है कि जैस कुछ ख़ास काम न कर रहे हों। एक सहूलियत का अंदाज़ बराबर उनके चेहरे पर बना रहता है। मैं जब उन कारखानों में से बाहर निकला तो मेरे मन पर तीन चीज़ों की छाप थी, एक तो उनका ख़ुद ही अपने ऊपर लागू किया हुआ अनुशासन, दूसरी उनकी कार्यपटुता और तीसरी सफ़ाई।

जो माएँ कारखानों में काम करती हैं उनके छोटे-छोटे बच्चों के लिए शिशु विहार हैं। माएं जब काम पर आती हैं तो अपने बच्चे को इन्हीं शिशु-विहारों में, नर्सरियों में छोड़ कर काम पर चली जाती हैं। इन बच्चों की देख-भाल के लिए योग्य नर्सें हैं जो बच्चों को बड़े प्यार से रखती हैं। दिन में दो-तीन बार माँ जाकर बच्चे को दूध पिला आती है और शाम को काम ख़तम हो जाने पर, नर्सरी में से अपने बच्चे को लेकर घर चली जाती है। इस तरह नौजवान माँओं के काम करने की राह में यह जो एक बहुत बड़ी रुकावट होती है वह दूर हो जाती है। हम इनमें से कुछ नर्सरियों में भी गये जो कारख़ानों से लगी रहती हैं और हमने बहुत अच्छी तरह उनको काम करते पाया।

इस तरह हम देखते हैं कि सरकार और जनता के बीच में सच्चा सहयोग है। लोग जी जान से काम करते हैं क्योंकि आखिर को उसका फल खुद उनको ही भोगने को मिलेगा और सरकार उनकी योग्यता को बढ़ाने के लिए उनकी पूरी मदद करती है क्योंकि वह उन्हीं की सरकार है और दोनों के बीच कोई विरोध नहीं है। वास्तव में यह बतला सकना बहुत मुश्किल है कि लोगों के मनोभाव में यह परिवर्तन कैसे आ जाता है लेकिन आ तो जाता है इससे इनकार नहीं किया जा सकता। यह एक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन है जो कि परिस्थिति बदलने के साथ-साथ स्वतः हो जाता है। यह सही है कि पूँजीशाही दुनिया वाली काम की प्रेरणा वहाँ पर नहीं है –इस मानी में कि किसी को अपने काम का तत्काल मुनाफ़ा इस शक्ल में नहीं मिलता कि बैंक में जमा की हुई रक़म तेज़ी से बढ़ती चली जा रही है। उस संकुचित और नितान्त स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण से तो वास्तव में वहाँ पर काम करने की प्रेरणा नहीं मिलती। लेकिन हमको यह देखना चाहिए कि उस चीज़ की जगह समाज हित की प्रेरणा ले लेती है जो कि और भी बड़ी चीज है, कहीं बड़ी चीज़ और जो कि सिर्फ़ एक आदर्शवादी स्वप्न नहीं है बल्कि व्यावहारिक चीज़ है। क्या हम मनुष्य की सद्प्रेरणाओं के प्रति इतनी अविश्वासी हो गये हैं कि हमारी समझ में यह बात नहीं आती कि देश-प्रेम की प्रेरणा, अपने देश और समाज के लिए काम करने को प्रेरणा कोई मामूली चीज़ नहीं है? सारी बात लोगों को जगाने की है। अगर उनको अच्छी तरह जगाया जा सके तो दुनिया का कोई चीज़ नहीं है जो वह नहीं कर सकते और खुशी-खुशी न करेंगे। यह बात चीन के लिए सही है और यही बात हमारे देश के लिए सही है और सभी देशों के लिए सही है। जनता सब जगह एक है मगर तत्व की बात यह है कि किसी भी सरकार को जनता का प्यार और आदर अर्जित करना पड़ता है। तभी उसके शब्दों में वह ताक़त आती है कि लोग तत्काल उन पर अमल करते हैं। जनता के विश्वास को जीतने के लिए ज़रूरी है कि सरकार जनता के हित में काम करे और लोग उसे अपने हित में काम करते देखें। दूसराकोई तरीक़ा नहीं है। जनता यह नहीं चाहती कि आप उसे

एक दिन मे ज़मीन पर स्वर्ग उतार कर दिखला दें। वह जानती है कि हथेली पर सरसों नही उगता मगर इसके साथ-ही-साथ यह भी नहीं भूलना चाहिए कि मीठे-मीठे शब्दों से ही उसे नहीं फुसलाया जा सकता। अपनी सहज चेतना से वह इस बात को जान जाती है कि सरकार उसके हित में काम करती है या नहीं। असल बात यह है। अगर वह अपने जीवन के अनुभव से इस बात को समझे कि सरकार के दिल में उसके लिए दर्द है और वह उनके फ़ायदे के लिए काम कर रही है तो वह बड़े धीरज से थोड़े-थोड़े फलों से ही अपना सन्तोष कर ले सकती है। और उस हालत में वह जान लगा कर काम भी करती है। लेकिन अगर मामला इसका उल्टा हो तो फिर सरकार के प्रति उसका विश्वास ग़ायब हो जाता है और उसकी जगह विद्वेष आकर अपनी जड़ जमा लेता है। हमारे देश में यही बात हो रही है और उसका कारण यही है कि हिन्दुस्तान की सरकार बार-बार क़समें तो यही खाती है कि हम जनता के फायदे के लिए काम कर रहे हैं, यह योजना बना रहे हैं वह योजना बना रहे हैं, मज़दूर की जिन्दगी को हम ऐसे सँवारेंगे, किसान को ज़मीन हम ऐसे देंगे वग़ैरह व ग़ैरह। मगर होता जाता कुछ नहीं। बस मीठे मीठे शब्द। उनसे कब तक किसी की भूख मिटे। अब तो योजनाओं की बात सुनकर चिढ मालूम होती है।

चीन की जनवादी सरकार ने इसका उल्टा रास्ता और सही रास्ता अख्तियार किया। पहले रोज़ से उन्होंने मजबूती के साथ जनता का पक्ष ग्रहण किया और जनता के दुश्मनों के खिलाफ़ कार्रवाइयाँ शुरू कर दीं। हमारे यहाँ की तरह शेर बकरी को एक घाट पानी पिलाने के नाम पर उन्होंने बकरी को शेर के मुँह में नहीं फेंक दिया। और जब जनता को लगातार यह दिखने लगा कि उसके फ़ायदे की बातें की जा रही हैं तो अपनी सरकार के प्रति उसका अपनत्व उसका अनुराग स्वभावतः जागा। बस इतनी ही सी तो बात है। इसी चीज़ का लोगों को विश्वास हो जाय तो फिर क्या पूछना, आधी मंज़िल तो यों ही सर हो गयी। मगर यह विश्वास पैदा करना ही टेढ़ी

खीर है, उसके लिए कथनी की नहीं करनी की ज़रूरत पड़ती है। यही बात हो जाय तो देश प्रेम के नाम पर अपील चमत्कार की तरह काम करती है वर्ना आप लाख भोंपू बजाया कीजिए, किसी के कान पर जूँ नहीं रेंगती।

और चीन में यह चमत्कार हमने जीवन के हर क्षेत्र में देखा। जो जिस जगह पर है मुस्तैदी से अपना काम कर रहा है। प्राइमरी स्कूल की मास्टरनी है तो वह अपने काम में डूबी हुई है। डाक्टर है तो वह लोगों की सेहत का निगहबान है और पूरी चौकसी से काम कर रहा है। मज़दूर है तो वह अपने कारखाने में तन्दिही से काम कर रहा है। किसान है वह अपने खेत की पैदावार बढाने में लगा हुआ है। मुक्ति-सेना का सैनिक है, उसने देश की सुरक्षा को सँभाल लिया है और जब वह सैनिक नहीं है तब किसान का बेटा है और खेत में काम करता है। शासन प्रबन्ध करने वाले लोग हैं, वे काम में किसी तरह की ढिलाई नहीं आने देते। सांस्कृतिक कार्यकर्ता हैं वे अपनी जनता का मानसिक स्तर ऊँचा करने के काम में और उनका स्वस्थ मनोरंजन करने के काम में अपनी प्रतिभा को लगा रहे हैं। कहने का मतलब यह कि सब को इस बात की फ़िक्र है कि काम में ढिलाई न आने पाये। मिसाल के लिए मैं तिएनजिन के एक अस्पताल को लेता हूँ जिसे देखने हम लोग गये थे। मैं आप को बतला नहीं सकता कि वहाँ पर कैसी सफ़ाई थी और काम की व्यवस्था कितनी अच्छी थी। यह कोई जादू की छड़ी घुमाने से थोड़े ही हो गया। ऊँचे से ऊँचे कर्मचारी से लेकर छोटे से छोटे कर्मचारी तक सब दौड़-दौड़ कर अनथक काम कर रहे थे और सब के चेहरों पर मुस्कराहट थी। नर्सें सही मानी में बहनों की तरह रोगियों की देखभाल कर रही थीं। उनका मिलान जब हम अपने यहाँ के अस्पतालों और उनके डाक्टरों और नर्सों से करते हैं तो फ़र्क मालूम होता है। हमारे यहाँ कोई सीधे मुँह बात भी नहीं करता और सब की हर वक्त त्योरियाँ चढ़ी रहती हैं। हमारे यहाँ तो सब कुछ इतना व्यावसायिक हो गया है कि साधारण सद्व्यवहार पाने के लिए भी आपको रुपया खर्च करना पड़ता है और जो जितना रुपया खर्च करता है या कर सकता है उसको उतना ही सद्व्यवहार मिलता है वर्ना सहज

मनवीय आचार को भी तिलांजलि दे दी जाती है। हमारे यहाँ घृणित व्यावसायिकता इस हद को पहुँच गयी है कि आपरेशन टेबुल तक पर रोगी से मोल-तोल किया जाता है और ऐसे भी मामले अक्सर सुनने को मिलते हैं कि डाक्टर ने पेट के आपरेशन में रोगी का पेट चीर दिया और उसके बाद फ़ीस का झगड़ा खड़ा किया और अगर उस झगड़े का समाधान डाक्टर की इच्छानुसार नहीं हुआ तो उसने आपरेशन को और आगे रोक दिया और चिरे हुए पेट में टाँका लगा कर रोगी को घर लौटा दिया। ऐसे भी केस सुनने को मिलते हैं कि इस मोल-तोल में रोगी का प्राणान्त हो जाता है मगर डाक्टर को इसका कोई ग़म नहीं होता और न उसका अन्तःकरण ही उसे धिक्कारता है। लेकिन यह जो नैतिक गिरावट है इसका भी कारण हमें व्यक्ति में नहीं बल्कि व्यवस्था में खोजना चाहिए। जब तक कि डाक्टर राष्ट्र का सेवक न होकर निजी प्रैक्टिस करने वाला आदमी है तब तक अनिवार्य रूप से यह स्थिति रहेगी कि लोगों की बीमारी उसकी आमदनी का ज़रिया रहेगी और वह बीमारियों की बाढ़ के दिनों में खुशी से बग़लें बजायेगा और कहेगा कि यह तो हमारे सीज़न के दिन हैं और जाड़े के दिनों में जब लोगों का स्वास्थ्य अपेक्षाकृत अच्छा रहता है, कहेगा कि आज कल तो ठाला चल रहा है! बड़ी भयानक बात है मगर सच है और उससे इन्कार नहीं किया जा सकता। इस व्यवस्था का यह लाज़िमी नतीजा है कि डाक्टर लोगों के रोग-दोख का फ़ायदा उठाये, वकील उन झगड़ों का फ़ायदा उठाये जो व्यक्तिगत सम्पत्ति की व्यवस्था में निहित हैं और मुल्ले और पण्डे लोगों की जहालत और अन्ध-विश्वासों का फ़ायदा उठायें। समाज के बुनियादी ढाँचे में तबदीली हुए बग़ैर ये चीज़ें कभी पूरी तरह नहीं जा सकतीं। उनका मार्जन और संस्कार भले थोड़ा-बहुत किया जा सके। चीन में यह बुनियादी तबदीली आयी है, इसीलिए राष्ट्र का पुनर्जन्म हुआ है और लोगों के मनोभाव बदले हैं। डाक्टरों को सरकार से वेतन मिलता है और उनका काम जनता के स्वास्थ्य की देख-भाल करना है। नागरिक का स्वास्थ्य सरकार का दायित्व है। इसीलिए सारे चीन में डाक्टरी इम्दाद सबके लिए मुफ्त है। अपने यहाँ हमको डाक्टर के पास

जाते डर लगता है क्योंकि हम अपने तजुर्बे से जानते हैं कि वह हमको किस तरह दुह लेता है। और हमारे अस्पताल ? उन्हें तो यातना-गृह कहना चाहिए जहाँ किसी भी तरह की मानवीय भावना के लिए कोई स्थान नहीं है, जहाँ आप किसी तरह की सहानुभूति की आशा नही कर सकते, जहाँ लोग कुत्तों की मौत मरने के लिए छोड़ दिये जाते हैं, अगर उनके पास माँगे जाने पर पैसे न निकले। और यह मैं उन लोगों की बात कह रहा हूँ जो एकदम ग़रीब नहीं हैं। जो गरीब हैं उनकी तो किसी अच्छे अस्पताल में पहुँच ही नहीं है। और उन्हें तो जैसे दवा के नाम पर रङ्गीन पानी पिलाया ही जाता है!

और इसी बात में चीन के अस्पताल हमारे अस्पतालों से भिन्न हैं वर्ना बने तो वे भी ईंट गारे और सीमेण्ट के ही हैं। इन अस्पतालों में डाक्टरी की नयी से नयी मशीनें, नये से नये औजार थे। ये चीजें ६० फ़ीसदी सोवियत यूनियन, जर्मन जनतन्त्र और चेकोस्लोवाकिया वगैरह की ही बनी हुई थीं। किसी चीज़ की कोई कमी नहीं थी। दुनिया के बेहतरीन अस्पतालों जैसा साज-सामान वहाँ पर था लेकिन मैं जान बूझ कर इस चीज पर जोर नहीं दे रहा हूँ क्योंकि ज़ोर देने की चीज़ यह नहीं है। हमारे भी बड़े-बड़े अस्पतालों में ऐसा अच्छा साज-सामान मिलता है। लेकिन फ़र्क यह है कि हमारे यहाँ अस्पतालों में प्राण नहीं है, आत्मा नहीं है, मानवीयता नहीं है। और वहाँ पर है। फ़र्क इस बात का है। आप पूछ सकते हैं कि मेरे पास इस चीज का क्या प्रमाण है। मै कहूँगा इस चीज का सबसे बड़ा प्रमाण हैं रोगियों के चेहरे जो कि ख़ुद मैने अपनी आँखों से देखे। डाइरेक्टर हमको साथ लेकर पूरे अस्पताल में घूमा और उसने सारी बातें हमें बहुत विस्तार से समझायीं। सफ़ाई और सुव्यवस्था की बात मैं पहले कह चुका हूँ। मगर जिस चीज़ ने मेरे मन पर सबसे अमिट छाप छोड़ी और जिसे देख कर मेरा मन आर्द्र हो गया वह चीज़ थी रोगियों के चेहरों पर खेलती हुई ख़ुशी, मुस्कराहट, इतमीनान, शान्ति। अपनी तकलीफ़ में भी मुस्कराते हुए उन चेहरों को देख कर मुझे अपने यहाँ के रोगियों के घबराये हुए, डरे और परीशान चेहरे याद आये। नये चीन का स्वास्थ्य

विभाग कैसा है, इसके प्रमाण के लिए मुझे उन बुड्ढों और बच्चो और नौजवान स्त्रियो के विश्वास से भरे हुए मुस्कराते हुए चेहरो के अलावा और किसी चीज की जरूरत नही है। यह सही बात है कि बीमारी तकलीफ़देह चीज़ होती है। उसको झेलना पडता है। मगर उसको कहीं ज्यादा अच्छी तरह झेला जा सकता है अगर सहानुभूतिपूर्ण परिचर्या मिले। और यही चीज़ हमने वहाँ पर पायी। वे चेहरे जैसे बोल रहे थे कि हमें कोई डर नहीं है, हम अपने ही सगे सम्बन्धियों के हाथों में हैं जो हमें प्यार करते हैं, हमारी अच्छी से अच्छी देख भाल हो रही है और हमारे इलाज में किसी तरह की कोई कमी नहीं होगी और हमें ठीक करने के लिए जो-जो करने की ज़रूरत होगी, सब कुछ किया जायगा। यह भावना अपने आप में रोगी के लिए बहुत पुष्टिकर चीज़ होती है और रोगी के इलाज में उस चीज़ का बहुत बड़ा हाथ होता है। मेरी आँखो के आगे अब भी वह छोटा सा दृश्य है जो यों तो बहुत छोटा है लेकिन जिसे मैं काफ़ी महत्वपूर्ण समझता हूँ। एक नर्स चार साल के एक बच्चे को जो बहुत दिनो से बीमार था, बैठी खाना खिला रही थी। दृश्य बस इतना सा है। लेकिन दुर्भाग्य है कि उसे देखा मैंने है और आप ने नहीं देखा। उसी तरह शाघाई के एक शिशु विहार में मैंने बहुत सी स्त्रियों को दो से चार साल तक के बच्चो को खाना खिलाते देखा। कितना मातृत्व था उनमें! कोई माँ इससे ज्यादा लाड़ और दुलार से अपने बेटे को न खिलाती। और बच्चे भी अपनी सहज चेतना से इस बात को जानते हैं। इसीलिए तो वे अपनी इन माँओं से इतने ज्यादा हिले हुए हैं। मैं अपनी तमाम यात्रा में इन्हीं चीजों को विशेष रूप से लक्ष्य कर रहा था क्योंकि मैं नये चीन के लोगो के मन में जो तब्दीली हुई है उसको समझना चाहता था। मैंने किसानों को देखा, मजदूरों को देखा, प्राइमरी स्कूल और विश्वविद्यालय के अध्यापकों को देखा, डाक्टरों और नर्सों और शिशु विहारों की परिचारिकाओं को देखा। दो महीने तक हम विद्यार्थियों के साथ रहे जो हमारे दुभाषियों का काम कर रहे थे। उन सबके लिए श्रम ही उल्लास था। यही उनकी खुशी थी कि ज्यादा से ज्यादा काम करें।

और यही उनकी स्पर्द्धा है। देश भर में, सभी क्षेत्रों में इसी चीज की प्रतियोगिता चलती रहती है। और इस स्वस्थ प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देने के लिए तरह-तरह के पुरस्कारों की व्यवस्था है। आज चीन में आदर्श मज़दूर के पद से बड़ा कोई दूसरा पद नहीं है। हर मज़दूर की यही कामना है कि वह अपने देहात या शहर या प्रान्त या समूचे देश का आदर्श मज़दूर, माडल वर्कर बने। इस चीज़ से समाज में प्रतिष्ठा मिलती है क्योंकि यह नया समाज है जो सृजनात्मक श्रम को सच्चा आदर देता है। यह एक ऐसी चीज़ है जिसकी कल्पना भी रुपये आने पाई के चक्कर में फँसी हुई पूँजीवादी दुनिया नहीं कर सकती। मुझे एक आदर्श कपड़े मज़दूर से तिएंजिन में और दो आदर्श मज़दूरों से, जिनमें एक पुरुष था और एक स्त्री, मिलने का सौभाग्य काओलियांग चांग बाँध से हू शिंग पार्क तक की अपनी नौका यात्रा में मिला। मैंने देखा कि माडल वर्करों को कितना सम्मान दिया जाता है। यह सम्मान स्वयं और भी अच्छा काम करने के लिए प्रेरणा का स्रोत बनता है। इसी बात को ख़याल में रखकर हर कारखाने का एक वाल न्यूज़ पेपर होता है। कारखाने की दीवार पर टँगा हुआ अख़बार काम को आगे बढ़ाने में बहुत सहायक होता है। उस अख़बार में सबसे अच्छा काम करने वाले व्यक्तियों और टीमों का नाम फ़ौरन आ जाता है। और जो अच्छा काम नहीं करते उनका भी नाम आ जाता है। तिएन्जिन के उस कपड़ा मिल में वहाँ के अख़बार ने अच्छे और बुरे काम के लिए बड़े अनूठे प्रतीकों का इस्तेमाल किया था। उनके प्रतीक थे बैलगाड़ी, गदहा गाड़ी, रिक्शा, साइकिल, बस, ट्रक, मोटर-साइकिल, रेलगाड़ी और हवाई जहाज़। आलसी और धीमे काम करने वाले लोग एक छोर पर थे और उनका प्रतीक बैलगाड़ी थी और सबसे अच्छे काम करने वाले मज़दूर दूसरे छोर पर थे और उनके प्रतीक रेलगाड़ी और हवाई जहाज़ थे। एक ऐसी समाज-व्यवस्था में जो काम न करते हुए भी मुनाफ़ा खसोटने पर ही अवलम्बित है, मोटमर्दी कोई गुनाह नहीं है और न उसे बुरा समझा जाता है। अगर आप मोटमर्दी कर सकते हैं तो ज़रूर कीजिए। लेकिन एक बदली हुई समाज-व्यवस्था में जिसमें समाज एक बार फिर सिर के बल

खड़ा न होकर पैर के बल खड़ा है, जैसा कि चाहिए, मोटमर्दी से, कामचोरी से बढ़कर अपराध दूसरा नहीं है। इसीलिए अगर किसी व्यक्ति या टीम को बैलगाड़ी का लक़ब मिलता है तो उसके लिए इससे बड़ी ज़िल्लत की बात दूसरी नहीं होती। हर मज़दूर यह कोशिश करता है कि उसे हवाई जहाज़ समझा जाय क्योंकि उससे नाम होता है, सब उसे अच्छा देशभक्त और अच्छा मज़दूर समझते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि वहाँ पर बड़े मज़े में काम होता है। जो लोग सुस्त होते हैं, और ऐसे कुछ लोग तो सभी जगह मिल जाते हैं, उन्हें भी काम में दिलचस्पी लेना सिखाया जाता है और इसके लिए सार्वजनिक आलोचना का हथियार इस्तेमाल किया जाता है। कहने का मतलब कि काम का यह एक बहुत अच्छा तरीका है जिससे अच्छे मज़दूर और भी अच्छे बनते हैं और बराबर उन्नति करते चले जाते हैं और जो सुस्त होते हैं उन्हें भी धीरे-धीरे सुधार लिया जाता है।

आज़ादी के पहले उनको तीन चीज़ों का सबसे ज़्यादा डर लगा रहता था। एक तो मंहगी का डर, दूसरे बच्चा होने का डर और तीसरे बुढ़ापे का डर। अब उन्हे इनमें से एक का भी डर नहीं है। चीज़ों के दाम ठीक कर दिये गये हैं, ब्लैकमार्केट को खतम कर दिया गया है और इसलिए मंहगी का कोई डर नहीं है। इसके बरअक्स लोगो की क्रय शक्ति बराबर बढ़ती जा रही है। चीन में कम से कम मज़दूरी जो किसी को मिलती है, अस्सी रुपया है जो कि मिट्टी खोदने और ढोनेवाले की मज़दूरी है। यह अस्सी रुपया साधारण रूप में मज़े मे रहने के लिए काफ़ी है क्योंकि कोआपरेटिव से सस्ता सामान मिल जाता है। और ख़ैर जो दक्ष मज़दूर हैं वे तो इतना काफ़ी कमा लेते हैं कि अपने घर में रेडियो और बहुत खूबसूरत फर्नीचर रख सकते हैं जैसा कि यहाँ पर अच्छे से अच्छे मध्यवर्गीय घरों में भी मुश्किल से ही देखने को मिलता है। उनका जो दूसरा डर था उसकी भी जड़ में यही बात थी कि एक नया खाने वाला बढ़ जायगा। इतना ही नहीं प्रायः सौ फ़ीसदी यही होता था कि गर्भवती स्त्री को काम से अलग कर दिया जाता था। इसलिए

स्वभावतः बच्चा होने से सभी बहुत डरते थे। लेकिन अब उन्हें इसका डर नहीं। स्त्री का गर्भवती होना अब नये चीन में डर की नहीं गर्व की चीज़ है क्योंकि वह मातृत्व है। गर्भवती स्त्रियों को बच्चा होने के दो महीने पहिले से लेकर दो महीने बाद तक की छुट्टी पूरी तनख्वाह के साथ दी जाती है। इतना ही नहीं घर में एक नये प्राणी के बढ़ जाने से उस परिवार का वेतन आप से आप बढ़ा दिया जाता है। इस तरह उनका दूसरा डर खतम होता है। जहाँ तक उनके तीसरे डर यानी बुढ़ापे की बात है, सरकार ने उसको दूर करने की भी समुचित व्यवस्था कर दी है। बुड्ढे लोगों को मजदूरों के बीमा फण्ड से बुढ़ौती की पेन्शन लेने का हक़ होता है। इस फ़ण्ड की रकम सीधे सरकारी ग्राण्ट से भी आती है और उसके साथ ही साथ यह भी क़ायदा है कि हर कारखाने को तमाम मजदूरों को दी जाने वाली कुल मजदूरी का पन्द्रह प्रतिशत मजदूर बीमा फ़ण्ड को दान करना पड़ता है। इसका मतलब बहुत बड़ी रकम होता है। कुल मिलाकर यह चीज़ इतनी काफ़ी हो जाती है कि बुढ़ौती और बीमारी और गर्भवती स्त्री की सहूलतें, इन सब का बन्दोबस्त हो जाता है। इतना ही नहीं, हमें यह सुनकर ताज्जुब हुआ कि बहुत से सांस्कृतिक भवन और सैनेटोरियम और बुड्ढों और बच्चों के आवास-गृह भी इसी मज़दूर बीमा फण्ड की रक़म से तैयार हुए थे।

इस तरह जनता के चीन ने जनता के तीन डरों को खतम कर दिया और उनकी जगह तीन ख़ुशियों को जन्म दिया। पहली ख़ुशी अमरीका का मुक़ाबला और कोरिया की मदद करने की। दूसरी ख़ुशी काम में जी लगाकर उत्पादन बढ़ाने की और तीसरी ख़ुशी बुढ़ापे और असमर्थता की हालत में बीमे से मदद पाने की।

यही वह भौतिक आधार है जिस पर नये चीन की प्रगति के, परियों की कहानी जैसे करिश्मे अवलम्बित हैं। एक बार यह चीज़ अच्छी तरह से समझ लेने पर सारी तसवीर साफ़ हो जाती है और सन्देहशील आदमी नये चीन की जादू जैसी सफलताओं को मानने के लिए मजबूर हो जाता है। यह सच है कि चीन में श्रम ही उल्लास है लेकिन इसके पीछे एक पूरा

इतिहास है, पिछला इतिहास और आज का इतिहास और उसे ठीक से समझना जरूरी है क्योंकि तभी हम दोनों चीजों का कार्य-कारण सम्बन्ध बिठाल सकेंगे।
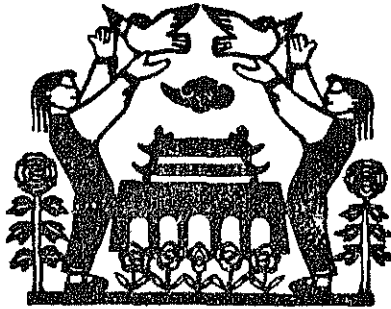
इसमें सन्देह नहीं कि चीन जैसे विराट् देश के लिए छः हफ्ते का प्रवास बहुत थोड़ा है और मैं अगर यह कहूँ कि इतने दिनों में मैंने चीन की नयी जिन्दगी को भीतर-बाहर से अच्छी तरह देख लिया है तो यह एक झूठा दावा होगा। लेकिन मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि विराट् पीड़ा की तरह विराट् आनन्द भी एक ऐसी चीज़ है जो फ़ौरन नज़र में गड़ जाती है और अनुभव करने वाला उसे अनुभव कर लेता है। छः हफ़्तों में हम जितना ज्यादा से ज्यादा घूम सकते थे, घूमे। हमने क़रीब पाँच हजार मील का सफ़र किया। हम सभी तरह के लोगों से मिले और आज़ादी से मिले, उनसे बातें कीं और उस सब के आधार पर अपने नतीजों पर पहुँचे। सन्देह करने वाला आदमी कह सकता है कि मुमकिन है हमारे नतीजे ग़लत हों क्योंकि हमें खामियों को देखने का मौक़ा ही न मिला होगा। हो सकता है एक खास मतलब में यह बात ठीक भी हो मगर इन्साफ़ की बात यह है कि हमारे चीनी मेजबानों ने हमें इस बात का पूरा मौक़ा दिया कि हम चीजों को अच्छी तरह देखें, परखें। अगर

हम वहाँ पर और ज्यादा दिन ठहरना चाहते तो वह भी मुमकिन था। मिसाल के लिए गुजरात के गान्धीवादी नेता श्री रविशंकर महाराज, गुजराती कवि उमाशंकर जोशी और महाराज के दूसरे गुजराती मित्र और ज्यादा दिन ठहरे ही। वे चीन के गाँवों को और ज्यादा अच्छी तरह देखना चाहते थे। लिहाजा वे हांगचो में रुके और दूर देहातों में गये। इस तरह हम देखते हैं कि चीनियों की तरफ से इस बात में कोई रुकावट नहीं थी कि हम अपने पूरे सन्तोष के लिए जी भर कर निरीक्षण करें। जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक की बात है उसका खयाल है कि छोटी-छोटी तफ़सीलों से ज्यादा सही अन्दाज़ा देने वाली चीज़ वह समग्र प्रभाव है जो कि मन पर पड़ता है। यह समग्र प्रभाव कम ही झूठा निकलता है। मिसाल के लिए अगर बाहर का कोई यात्री हमारे देश में घूमे तो वह छः हफ्ते से भी कम में इस बात का पता अच्छी तरह पा जायगा कि यहाँ के लोग कष्ट में हैं, दुखी हैं, परेशान हैं। और यह तस्वीर भी झूठी न होगी। महान् खुशी और उत्साह और विराट् पीड़ा ऐसी शक्तियाँ हैं जो दर्शक को अपने संग बहा ले जाती हैं। किसी को उनका पता देने की ज़रूरत नहीं होती : वे आप अपना पता दे देती हैं। उनके होने का आभास व्यक्ति की सहज चेतना को हो जाता है।

चीन में लोगों को जीवन में आनन्द मिलता है, यह बात मैं बार-बार ऊपर कह आया हूँ। इसी संदर्भ में मैं चीन के बच्चों की बात करना चाहता हूँ। हमने उन्हें सड़कों पर देखा जहाँ वे हमारे स्वागत के लिए एकत्र होते थे, किंडरगार्टनों में देखा, शहरों में देखा, गाँवों में देखा, छोटे बच्चों को माँ की गोद में देखा, यंग पायनियर बच्चों को लाल स्कार्फ़ गले में बाँधे हाथ में गुलदस्ता उठाये और गाते देखा। ये सारे बच्चे गोल-मटोल थे। एक भी दुबला या मरियल बच्चा नहीं था। पता नहीं यह क्या बात है। दुबले बच्चे क्या वहाँ होते ही नहीं? हजारों बच्चों देखे होंगे मगर एक भी दुबला-पतला कमज़ोर बच्चा नहीं नज़र आया। कुछ तो यह बात है कि शायद चीनी जाति ही हम लोगों से कुछ ज्यादा तगड़ी है और चीन की औरतें तो और भी वनों इतने ग्लाक्सो बेबी कहाँ

से आते हैं! और तीन साल के जनवादी शासन का भी इसमें बहुत बड़ा हाथ है, यह तो स्पष्ट ही है। सरकार अपने बच्चों की देख-भाल पर, उनके स्वस्थ शारीरिक और मानसिक और नैतिक विकास पर करोड़ों रुपया खर्च करती है। पीकिंग और शांघाई में हमने दो नर्सरियाँ देखीं जिनमें तीन से लेकर छः साल तक के बच्चे थे। पीकिंगवाली नर्सरी का नाम पे हाई नर्सरी था। पे हाई नर्सरी पे हाई पार्क और झील से लगी हुई है। बच्चों की नर्सरी के लिए इससे अच्छी जगह और क्या हो सकती थी! मगर यह नर्सरी खुद भी बहुत अच्छी थी। कैसे अच्छे लगते थे वे ज़रा-ज़रा से बच्चे अपने लम्बे कोट पहने हुए, इधर उधर डगमग पैरों से दौड़ते हुए! कितने इतमीनान से सब कम्पाउन्ड में घूम रहे थे! ज़ाहिर था कि उन्हें वहाँ पर बहुत मज़ा आता है। उनको देखकर मुझे ईर्ष्या हुई क्योंकि मुझे ऐसी कोई चीज़ अपने बचपन में नहीं मिली और न शायद मैं अपने बच्चों को ही वैसी ज़िन्दगी दे सकता हूँ। नर्सरी की इमारत बिल्कुल नयी और रंग-रोग़न से चमकती हुई थी। कोई भी पुरानी जर्जर चीज़ वहाँ न थी। पहले हम लोग उस हॉल में गये जहाँ बच्चे सोते हैं। लोहे की छोटी-छोटी पलंगें कनार की क़तार लगी हुई थीं और उन पर के बिस्तर बाक़ायदा सिमटे हुए थे। हम उस कमरे में भी गये जहाँ वे नाच सीखते हैं और फिर उस कमरे में गये जहाँ वे गाना सीखते हैं। उनके तमाम झाँझ-मजीरे, ढोल और दूसरे बाजे रक्खे हुए थे जिनको बजाना उन्हें सिखाया जाता था। हमने उनको यांको नृत्य भी करते देखा। उनकी टीचर पियानो बजा रही थी और बच्चे नाच रहे थे। हम उस कमरे में भी गये जहाँ उन्हें चित्रकला सिखायी जाती है। दीवार पर बच्चों ही के बनाये हुए तमाम चित्र टँगे थे। इनमें कई चित्रों में बस लकीरों का खेल था और क्यों न हो, क्यों कि सब लड़कों को अपनी कल्पना से कुछ आंकने को कहा जाता है और उनकी बाल कल्पना में जो कुछ आता है उसी को अपनी टेढ़ी मेढ़ी रेखाओं में वे उतार देते हैं। हम उस कमरे में गये जिनमें उनके खेल के सामान थे। न जाने कितने तरह के खेल रहे होंगे, मैं तो उन सब के नाम भी नहीं जानता। लेकिन मेरे एक मित्र, चित्रकार हुसेन ने,

जिन्हें बम्बई की नर्सरियों का अच्छा अनुभव है क्योंकि उनकी सजावट का काम भी उन्होंने जब तब किया है, मुझको बतलाया कि इस मामले में वह नर्सरी बहुत बढ़ चढ़ कर थी। इमारत तो अच्छी थी ही, उसे खूब रँग-चुँग कर बिलकुल चॉकलेट के मकान जैसा बना दिया गया था। बच्चों की चीज़ ऐसी ही होनी चाहिए। बड़ा सा कम्पाउण्ड है जिसमें लड़के खूब घूम भी सकते हैं। और वहीं घास के मैदान में झूले और इसी तरह के दूसरे बच्चों के खेलने के सामान पड़े हुए थे। पीकिंग और शांघाई दोनों जगह की नर्सरियों में एक ऐसा शीशे की बड़ी बड़ी खिड़कियों वाला कमरा था जिसमें बच्चे धूप सेंकते थे। इस कमरे में धूप खास तौर पर ज्यादा आती थी और बच्चों का काफी वक्त उसी कमरे में गुज़रता था। उनका अपना एक बहुत खूबसूरत थियेटर हाल भी था जिसमें वही अभिनेता होते हैं और वही दर्शक। कहने का मतलब यह कि उनकी जिन्दगी बहुत मज़े की है। हर बच्चे को कितनी अच्छी देख-भाल मिलती है, इसका कुछ अन्दाजा इस बात से किया जा सकता है कि पे हाई नर्सरी में एक सौ पैंतालीस बच्चों के पीछे पचहत्तर स्त्रियाँ हैं यानी हर दो बच्चे के पीछे एक और वह एक ऐसी जो प्यार से बच्चों को रखती है। उस दो घण्टे की मुलाक़ात में भी यह चीज ज़ाहिर हो गयी कि बच्चे उन स्त्रियों से कितना ज्यादा हिले हुए हैं। बच्चे यों चाहे निरे भोंदू ही हों लेकिन पता नहीं वह कौन सी छठीं ज्ञानेन्द्रिय है जिससे वे इस बात का पता ज़रूर पा जाते हैं कि कौन व्यक्ति उनको प्यार करता है और कौन नहीं करता। जो उनको प्यार न करे उनसे बच्चे कभी नहीं हिल सकते। लिहाजा बच्चों को उन स्त्रियों से हिले देखकर हमारा यह अनुमान करना ग़लत न होगा कि सचमुच वे बच्चों को चाहती हैं। केवल इस मतलब में नहीं कि वह उनका दायित्व है। दायित्व भावना के अलावा मातृत्व का अंश भी उस चीज़ में ज़रूर है और मैं समझता हूँ कि वही प्रधान है—यह भावना कि यह देश हम मेहनत करने वालों का है, जनता का है और हम सब मेहनत करने वाले एक ही बड़े परिवार के अंग हैं और एक अर्थ में हमारा रक्त का सम्बन्ध भी है क्योंकि हम सबने मिलकर इसी नयी व्यवस्था के लिए रक्त बहाया है, यह भावना

सबके दृष्टिकोण में एक आमूल परिवर्तन ला देती है। मुमकिन है सब को इस बात का एकाएक यक़ीन न आये कि कैसे इतनी बड़ी तब्दीली हो जाती है मगर यह बात सच है कि जन क्रान्ति सिर्फ बाहरी उपकरणों में क्रान्ति नहीं लाती बल्कि मन के भीतर भी वैसी ही क्रान्ति पैदा कर देती है और मन के संस्कारों को एकदम बदल देती है।

इस तरह हमने देखा कि चीन के बच्चे शरीर और मन दोनों ही की दृष्टि से बहुत स्वस्थ हैं। उनकी देख-भाल का ही अंग यह भी है कि छुटपन से ही अधिकारी इस बात का पता लगाने की कोशिश करते हैं कि बच्चे की स्वाभाविक प्रवृत्ति किस ओर है—गाने की ओर कि चित्रकला की ओर कि कहानी कहने की ओर कि भवन-निर्माण कला की ओर। गौर से देखा जाय तो सभी बच्चों में इस चीज़ की झलक मिल ही सकती है। इसी चीज़ को समझ कर उनकी शिक्षा-दीक्षा में रदबदल की जाने लगती है। कहने की ज़रूरत नहीं कि नर्सरी की स्टेज में किताबी पढ़ाई नहीं के बराबर होती है। उसमें तो ख़ास ज़ोर बच्चों के अन्दर अच्छे नैतिक संस्कार, अच्छी आदतें डालने पर दिया जाता है। आदत डालना बच्चे की शिक्षा का एक बहुत ज़रूरी अंग है। और यह काम अच्छी तरह किया जाता है। यह बच्चों के आचरण से स्पष्ट था। न कोई रोता था और न आपस में मार-पीट करता था। सब एक दूसरे की मदद करते थे। यह सामाजिक संस्कार का बीज था जो उनके अन्दर डाल दिया गया था। सामाजिकता क्या चीज़ होती है, इसे समझने की उम्र उनकी न थी लेकिन उनके व्यवहार में यह चीज़ आ गयी थी क्योंकि सब बच्चे साथ साथ रहते, खाते, खेलते, पलते, बढ़ते थे और उन्हें सिखाया जाता है कि दूसरे बच्चे को अपना दोस्त और साथी समझो। इस तरह वहाँ छोटी-मोटी ईर्ष्याओं के लिए कोई आधार ही नहीं रह गया था। बचपन के यही ईर्ष्या के संस्कार आगे चल कर बड़ा ग़ज़ब ढाते हैं। इसलिए बचपन से ही इसकी रोक-थाम की जाती है और बच्चे के मन के ढाँचे को सामाजिकता के साँचे में ढाला जाता है। बच्चा तो कुम्हार की मिट्टी है। उसे आप जैसा चाहिए बना दीजिए। अगर आप उसमें लोभ और ईर्ष्या और स्वार्थीपन और झूठ बोलने

और घमण्ड करने के संस्कार डाल दीजिए तो आगे चल कर वह वैसा ही निकल आयेगा। इसके बरअक्स अगर आप बच्चे में यह संस्कार डालिए कि वह भी समष्टि का एक अंग है, एक बड़े से परिवार का सदस्य है जिसमें सब भाई-भाई हैं, और यह कि वह जनता का सेवक है और जनता के सेवक में लालच, घमण्ड, झूठ बोलना ये बातें न होनी चाहिए बल्कि देश और जनता के लिए कुरबानी का माद्दा होना चाहिए तो काफी सम्भावना इस बात की है कि यह बच्चा बड़ा होकर नेक इन्सान बनेगा। तत्व की बात है बच्चे के अन्दर सामाजिकता के संस्कारो को डालना। और इसी बात को ध्यान में रख कर वहाँ बच्चे को पाँच चीजों से प्रेम करना सिखलाया जाता है - मातृ-भूमि से, जनता से, श्रम से, राष्ट्र की सम्पत्ति से और ज्ञान से। बच्चों की शिक्षा के यही मूल नियम हैं और शिक्षक इन्हीं की शिक्षा बच्चे को देने के लिए बराबर नये-नये तरीके निकाला करते हैं। उन बच्चों से मिलकर सचमुच दिल खुश हुआ और जब मैंने उनके आचरण को गौर से देखा तो सचमुच यह पाया कि हमारे देश के उसी उम्र के औसत बच्चों से कहीं ज्यादा सामाजिक चेतना उनके अन्दर है। उनको देखकर मुझे विश्वास हुआ कि हमारे ज्यादातर बच्चे जो आपस में मारपीट करते हैं, गाली बकते हैं, एक दूसरे का मुँह नोचते हैं, यह बच्चो के सहज स्वभाव में दाखिल नहीं है। यह सारी बात शिक्षा और कुशिक्षा की है। उन्हें अच्छी शिक्षा दीजिए तो वे कभी जिद न करेंगे, गाली न बकेंगे, स्वार्थीपन न दिखलाएँगे। हमें एक भी बच्चा किसी चीज के लिए रोता नहीं मिला। उतनी देर में भी ऐसे दो एक काण्ड तो हो ही सकते थे लेकिन नहीं। यह बात कुछ अनहोनी जरूर लगी और यह भी नहीं कि यह डाँटने-घुड़कने का प्रताप हो क्योंकि अगर यह चीज की गयी होती तो और कुछ नहीं तो कुछ बच्चे कम से कम मुँह लटकाये तो बैठे होते। पर कहाँ, वे तो सब बड़े मजे में खेल रहे थे। पे हाई नर्सरी में हमने उस छोटी बच्ची और बच्चे को भी देखा जिनकी तसवीर हमने कई जगह शान्ति के पोस्टरों पर देखी थी। लड़का एक

कबूतर को गोद में लिये खड़ा है और लड़की बुद्धू की तरह उसका मुँह ताक रही है। इन बच्चों को देख कर भी मुझे बड़ी खुशी हुई और उनके माध्यम से भी मैंने समझा कि चीनी विश्व शान्ति के लिए जो इतने लालायित हैं वह इन बच्चों के लिए ही। वे जानते हैं कि लड़ाई हुई तो अपने बच्चों के लिए वे जिस नयी जिन्दगी का निर्माण कर रहे हैं वह खतम हो जायगी। शांघाई में जब हमने तीन चार साल के बच्चों का आर्केस्ट्रा देखा तो हमारा मन बहुत पुलकित हुआ। किसी भी बाप का दिल उसे देख कर बाग़-बाग़ हो जाता। जरा-जरा से बच्चे संगीतकार की भूमिका में अपने झाँझ मजीरे लिये हुए आये और एक बड़ा सा ढोल भी लाये जो साइज़ में उनका दुगना था। आकर वे खड़े हो गये, इस नन्हें आर्केस्ट्रा का नन्हाँ निर्देशक कूद कर मेज़ पर खड़ा हो गया और बाकायदा झुक कर उसने श्रोताओं को नमस्कार किया और फिर मुड़ गया और अपनी छड़ी उसने ऊपर उठायी और आर्केस्ट्रा बजने लगा। उन्होंने पूरे आत्म-विश्वास के साथ दो धुनें बजायीं। उन्हें देखकर एक तो हँसी आती थी कि ज़रा इन अँगूठे के बराबर-बराबर लड़कों को देखो कैसे मज़े में सब अपना अपना बाजा बजा रहे हैं। कहीं कोई गड़बड़ी नहीं हो रही है। ताल देने वाला बच्चा भी बिलकुल ठीक ठीक ताल दे रहा है। और दूसरे यह विश्वास भी जागता था कि बच्चों के अन्दर छिपी हुई प्रतिभा को अगर उजागर किया जाय तो क्या नहीं किया जा सकता। मुझे सबसे ज्यादा मजा तो उनके चेहरे के भाव को देख कर आ रहा था। पता नहीं कहाँ से वे बड़े-बड़े लोगों जैसी गम्भीरता अपने चेहरे पर ले आये थे, बड़ी संजीदगी से उन्होंने नग़मे बजाये और बजा चुकने पर उस विशाल ढोल समेत जिसे दो बच्चे आगे पीछे से पकड़े हुए थे, लिये दिये कमरे से बाहर चले गये।

मैंने प्राइमरी स्कूल के बच्चों को उनकी कक्षाओं में भी देखा। खेलते देखा, खाते देखा, नाचते देखा, धीरे धीरे टहलते और दौड़ते देखा। उनका गाना सुना। सभी चीज़ों में उनकी खुशी झलक रही थी, उनकी खुशी और

उनकी परिचारिकाओं की मातृत्वपूर्ण देख-भाल। हाँ, अभी ये नर्सरियाँ काफी नहीं हैं मगर पता चला कि बड़ी तेजी से नयी नर्सरियाँ बनती जा रही हैं और अभी अपनी आरम्भिक स्थिति में भी, विकसित से विकसित पूँजीवादी देश की अपेक्षा दस गुनी ज्यादा तो होंगी ही। अभी चूँकि देश की जरूरत के लिए काफ़ी नर्सरियाँ नहीं हैं, इसलिए उनमें प्रवेश सबको एक संग नहीं मिलता, किसी को आगे मिलता है किसी को पीछे, और इस चीज का निर्णय जनता की अपनी कमेटियाँ करती हैं। जाहिर सी बात है कि आदर्श मजदूरों के बच्चों को पहले स्थान दिया जाता है। मगर प्रवेश एक अकेले इसी आधार पर नहीं होता। मजदूर ही खुद यह तय करते हैं कि जरूरत किसकी ज्यादा है। ऐसी हालत में एक ऐसे बच्चे को पहले मौका दिया जायगा जिसके सिर्फ माँ बाप हैं जो दोनों काम पर जाते हैं और घर पर कोई बड़ी-बूढ़ी स्त्री नहीं है और जिसके घर पर कोई दादी नानी है उसको बाद को मौका मिलेगा। कहने का मतलब यह कि इसी तरह की बहुत सी व्यावहारिक बातों को ध्यान में रखकर जनता की यह अपनी कमेटियाँ इस को तय कर लेती हैं और चूँकि यह निर्णय जनवादी ढङ्ग से होता है और लोगों में सामाजिकता की गहरी चेतना है, इसलिए शायद ही कभी कोई टकराव पैदा होता हो या मनोमालिन्य का मौका आता हो। कहना न होगा कि इन सब सुविधाओं के वितरण में कम्युनिस्टों का नम्बर सबसे बाद को आता है। बाहर के लोग, जिन्हें असली हालत का पता नहीं है, यह सोच सकते हैं कि चूँकि कम्युनिस्टों ने क्रान्ति का नेतृत्व किया था और कम्युनिस्ट पार्टी ही सबसे बड़ी राजनीतिक शक्ति है, इसलिए सारे आराम, मजे, सहूलतें उन्होंने हथिया ली होंगी और बाकी लोगों के लिए जूठन-काठन खरोड़-मरोड़ छोड़ दिया होगा। हमारा ऐसा सोचना स्वाभाविक है क्योंकि हम अपने देश में देखते हैं कि कांग्रेसी भाई लोगों ने सबसे पहले अपना घर भरा (मसल भी मशहूर है, अपने घर में चिराग जला कर मस्जिद में चिराग़ जलाया जाता है।) लेकिन चीन में बात एकदम उलटी है। कम्युनिस्ट चूँकि राजनीतिक रूप

से सबसे सचेत और जागरूक लोग हैं और आजादी के लिए सबसे ज्यादा कुरबानी उन्हींने की है इसलिए आज भी उन्हीं से कुरबानी की उम्मीद सबसे ज्यादा की जाती है। इसलिए हर चीज में उनका नम्बर सबसे बाद को आता है। कहने का मतलब यह कि इस प्रवेश के सवाल को लेकर कोई खींच-तान नहीं होती। मिसाल के लिए मैं अपनी दुभाषिया सुन् याओ मेइ को लेता हूँ। उसकी एक साल भर की लडकी है। मैंने उससे पूछा कि तुम उसे किसी शिशु विहार में क्यों नहीं रख देती? उसने कहा, रखना तो मैं चाहती हूँ, इसलिए और भी कि मेरे घर पर कोई नहीं है जो मेरी बच्ची की देख-भाल कर सके लेकिन अभी नर्सरियों कम हैं इसलिए मुझे इन्तजार करना पड़ेगा। पीकिंग में बहुत सी नयी नर्सरियाँ बन रही हैं। उनके तैयार होने पर मैं अपनी बच्ची को वहाँ रख दूंगी ताकि उसकी चिन्ता से मुक्त हो जाऊं। उसने इतने सहज ढग से यह बात कही कि मेरे मन को छू गयी। उसमें कहीं कोई शिकायत का भाव न था। उसका हलका से हलका आभास भी नहीं। मैं इस चीज का उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ कि इससे सामाजिक आचरण के नये मान दंड का संकेत मिलता है। यही चीज है जिसके कारण वहाँ भुनभुनानेवाले लोग नहीं हैं। हम अपने यहा देखते हैं कि हर आदमी को किसी न किसी चीज की शिकायत रहती है। तो इसका कारण क्या है? क्या यह कि चीनी बड़े सीधे और सन्तोषी होते हैं और हमारे लोग लोभी? नहीं, इसके भी मूल में समाज का बुनियादी परिवर्तन है। हमारे ऐसे समाज में जिसमें अयोग्य लोग मेल-मुलाकात और सगे-सम्बन्धियों के बल पर मजे उड़ाते हैं, जनता के अन्दर असन्तोष होना स्वाभाविक है और चीन में चूँकि यही चीज नहीं है, इसलिए कोई असन्तोष भी नहीं है।

वह शाम जो मैंने पे हाई नर्सरी में गुजारी थी, मुझे कभी नहीं भूलेगी। उसकी सीढ़ी से उतर कर बाहर आते समय, मैं मैदान में गोल-मटोल सेब जैसे गालों वाले बच्चों को हंसते खेलते देख रहा था और सोच रहा था कि

अपने बच्चों के लिए इसी स्वर्ग की सृष्टि करने की खातिर लोगों ने इतना खून-पसीना बहाया था और अब उन्हीं के खून-पसीने की कमाई उनके बच्चे भोग रहे हैं।

भूमि सुधार के अलावा यानी जागीरदारी प्रथा का नाश करके ज़मीन खेतिहर किसान को देने के अलावा जो सबसे बड़ा बुनियादी सामाजिक परि-वर्तन चीन की जन क्रान्ति ने किया है वह नारी की सामाजिक स्थिति को लेकर है।

सामन्ती, अर्द्ध-सामन्ती देशों में औरत गुलाम होती है, उसकी स्थिति घर की टहलुई से बहुत भिन्न नहीं होती। उसका काम चौका चूल्हा संभालना और बच्चे पैदा करना होता है। यही उसके जीवन की इतिश्री होती है। हमारे देश में बहुत कुछ यही हालत है और पुराने चीन में तो नारी की स्थिति हमारे यहाँ से कहीं गयी-गुज़री थी। इसीलिए हम आज़ादी के बाद उसकी स्थिति में जो परिवर्तन देखते हैं वह ऐसा ही है जैसे किसी को किसी मध्ययुगीन तहखाने के अँधेरे और घुटन में से निकाल कर रोशनी और खुली हवा में लाकर खड़ा कर दिया गया हो। उस ज़माने में उसे पढ़ने-लिखने का, सुसंस्कृत होने का अधिकार नहीं था और न पति से अलग उसकी कोई

स्वतन्त्र ज़िन्दगी ही हो सकती थी। वह जीवन पर्यन्त अपने पति के लिए खाना पकाने, कपड़े धोने, उनको सीने और रफ़ू करने और उसकी वासना की भूख मिटाने के लिए विवश थी। बस यही उसकी ज़िन्दगी थी। क्या सचमुच स्त्री इसी काम के लिए बनी है? ये भी उसके काम हैं मगर यही उसके काम नहीं हैं। उसके पास भी अपना व्यक्तित्व है, प्रतिभा है और अगर उसे मौक़ा दिया जाय तो वह भी जिन्दगी में बहुत कुछ कर सकती है। मगर यही तो सारा झगड़ा है। नारी को जब तक आप स्वतन्त्रता नहीं देते, समाज में बराबरी का अधिकार नहीं देते, तब तक वह भला क्या कर सकता है? फ़ी जमाना कैफ़ियत यह है कि आप उसे किसी तरह की कोई स्वतन्त्रता नहीं देते। वह आज़ाद नहीं है कि अपने मन से अपनी जिन्दगी के बारे में कुछ निश्चय करे। पुरुष ही उसके लिए निश्चय कर देता है और स्त्री को आँख मूँद कर अनुगमन करना पड़ता है। पढ़ाना चाहिए पढ़ाइए, न पढ़ाना चाहिए न पढ़ाइए, चाहे जिसके संग ब्याह दीजिए—स्त्री का धर्म है कि बिना कान पूँछ हिलाये आज्ञा का पालन करे! हमारे कहने का यह मतलब न लिया जाय कि अगर स्त्री को आज़ादी दी गयी तो वह अपने पत्नी-सुलभ सभी कर्त्तव्यों को उठा कर घूर पर फेंक देगी। यह सही है कि कुछ आधुनिकाएँ तितली की जिन्दगी बसर करने की सोचती हैं और समझती हैं कि पत्नी-सुलभ और मातृ-सुलभ अपने कर्त्तव्यों से मुँह मोड़कर उन्होंने बड़ा भारी विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया है! लेकिन ऐसों की संख्या कितनी है। ज़रा शान्त मन से विचार कीजिए तो बात साफ़ हो जायगी कि यह चिराचरित सामन्ती गुलामी की प्रतिक्रिया का ही एक रूप है और प्रतिक्रिया सदा दूसरे छोर पर जाकर खड़ी होती है। लेकिन अगर हिम्मत करके नारी को स्वतंत्रता दे दी जाय तो वह जल्दी ही अपना सहज सन्तुलन पा लेगी, जब कि वह योग्य पत्नी भी होगी और समाज के विशाल कर्मक्षेत्र की एक अच्छी नागरिका भी। वह घर के काम भी करेगी और बाहर की ज़िम्मेदारियों को भी पूरा करेगी। 'जिमि स्वतन्त्र होहिं बिगरहिं नारी' का डर अब छोड़ देना चाहिए और इस बात को समझना चाहिए कि घर और बाहर में परस्पर विरोध नहीं है।

वस्तुतः दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। हमारे वैदिक काल में नारी की जो स्थिति थी उसको आज एक उच्चतर धरातल पर फिर से पाने की जरूरत है और जब तक उसको पाया नहीं जाता और देश की आधी जनसंख्या घर के तहखाने में बन्द रहती है तब तक देश या समाज तरक्की नहीं कर सकता। नारी को पुनः उसका गौरव, उसकी आज़ादी, शिक्षा और संस्कृति पर उसका अधिकार लौटाने की जरूरत है।

और आज चीन में यही हो रहा है। केवल चार साल पहले उसकी हालत हमसे भी बदतर थी। चीनी स्त्री की चर्चा निकलते ही सबसे पहले हमें उसके काठ के जूतों का ख्याल आता था। पता नहीं यह काठ के जूते उन्हें क्यों पहनाये जाते थे। क्या इसलिए कि चीनी पुरुषों को स्त्रियों के छोटे पैर सुन्दर लगते थे या इसलिए कि वे भाग न सकें? जो भी बात रही हो, इससे बड़ी क्रूरता दूसरी नहीं हो सकती थी क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि उन जूतों को पहन कर ठीक से चला भी नहीं जा सकता। उनको पहन कर चलना अपने शरीर के सन्तुलन को बनाये रखने का बहुत कुछ वैसा ही कमाल है जैसा कि सरकस की लड़की तनी हुई रस्सी पर चल कर दिखलाती है। वाकई उन छोटे-छोटे पैरों के बल चलना कोई खेल नहीं है। नतीजा होता है कि चलने वाले की एक खास भंगिमा बन जाती है जिसे मैं चलना न कहकर मचकना कहूँगा। और इस चीज़ को देख कर दिल में बड़ी कराहत होती है। लेकिन यह पुराने चीन की बात है। मैंने पचास साल की उम्र से ज्यादा ही की दो-चार औरतों के पैर में वैसे जूते देखे जिससे मैंने नतीजा निकाला कि सन् १९११ की क्रान्ति के बाद से ही, जिसका नेतृत्व सुन यात सेन ने किया था, यह बर्बर प्रथा उठ गयी होगी। मैंने किसी से पूछा तो नहीं लेकिन ऐसा मेरा अनुमान है। बहरहाल वह चीज अपने आप में जितनी क्रूर थी सो तो थी ही, प्रतीकतः भी वह बहुत भयानक है। वह काठ का जूता औरत की सामन्ती गुलामी का प्रतीक है। उस जमाने में स्त्री पुरुष की पत्नी या रखैल से ज्यादा कुछ न थी। उसके अन्दर बुद्धि या चेतना की कोई जरूरत नहीं समझी जाती थी, बस शरीर सुन्दर और स्वस्थ होना चाहिए। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में

समानता तो दूर, समानता का अभिनय भी नहीं था। वह सीधे-सीधे, लट्ठमार तरीके से नवाब और बाँदी का सम्बन्ध था। उसी के कारण धीरे-धीरे यह स्थिति आ गयी कि चीन वेश्यावृत्ति का अड्डा बन गया और उसकी रखेलों की ख्याति दुनिया भर में फैल गयी और आखिर यह स्थिति भी आ गयी कि किसी कुलीन चीनी पुरुष की कुलीनता इस बात से मापी जाने लगी कि उसकी कितनी रखेलें हैं!

पुराने चीन में नारी की यही स्थिति थी। पति या मालिक स्त्री को चाहे मार सकता था चाहे जिला सकता था और सचमुच ऐसे मामले अक्सर हो जाया करते थे कि कोई उच्छृंखल जमींदार अपनी किसी रखेल से बिगड़ जाने पर उसे जान तक से मार देता था और कहीं इस चीज की सुनवाई नहीं होती थी, किसी अदालत-कचहरी में उस कातिल पर मुकदमा नहीं चलता था। मगर अब वह पुराने ज़माने की बात हो गयी। अब स्त्री हर माने में पुरुष के समान है और यह कोरी काग़ज़ी समानता नहीं है बल्कि सच्चा व्यावहारिक समानता है और ताकि स्त्री, जो कि सदा से पिछड़ी हुई हालत में रक्खी गयी है, पुरुष के संग अपनी बराबरी का उपभोग कर सके उसे पुरुष के मुकाबले में कुछ विशेषाधिकार दिये गये हैं। उन्हीं का यह सुफल है कि स्त्री इतनी आश्चर्यजनक तेज़ी से प्रगति कर रही है। इसका प्रमाण हमें कई बातों से मिला। जो हलके काम हैं यानी जिनमें बहुत शारीरिक शक्ति नहीं चाहिए उनमें स्त्रियों का अनुपात पुरुषों से बढ़ा हुआ है और बराबर बढ़ता जा रहा है। मिसाल के लिए कपड़े की मिलों में कुल मजदूरों की सत्तर फ़ीसदी औरतें हैं। विश्वविद्यालयों में लड़कियों की संख्या का अनुपात तेज़ी से बढ़ रहा है। डाक्टरों और नर्सों में भी स्त्रियां पुरुषों से आगे बढ़ रही हैं। उसी तरह मास्टरी के लाइन में भी स्त्रियों का अनुपात बढ़ रहा है और यह बात विश्वास के साथ कही जा सकती है कि कुछ ही बरसों में स्त्रियाँ ऐसे कामों में पुरुषों को बिलकुल पीछे छोड़ देंगी जिनके लिए प्रकृत्या वे अधिक योग्य हैं। लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि कामों की श्रेणियां बनी हुई हैं कि कुछ काम पुरुषों के हैं और कुछ स्त्रियों के। सारे काम पुरुषों के ही समान स्त्रियों के लिए भी खुले हुए हैं। लोहे के

कारखानों वगैरह को छोड़ दीजिए जिनमें बहुत ज्यादा शारीरिक ताक़त की जरूरत होती है। उनके अलावा और सभी जगह औरतें काम कर रही हैं। खेतों पर, कारखानों में, फौज में, हवाई बेड़े में। बहुत सी औरतें इन्जीनियर भी हैं। माडल वर्करों में भी उतनी ही स्त्रियाँ होंगी जितने कि पुरुष हैं। इस तरह नये चीन की औरतों ने यह साबित कर दिया है कि कोई भी काम ऐसा नहीं है जिसे वे न कर सकती हों। नये चीन में औरत को जो नयी आजादी और बराबरी और सम्मान मिला है, उसने उसके अन्दर एक अनोखी दायित्व चेतना जगा दी है। सदियों तक घर के तहखाने में बन्द चीन की स्त्री जहा उसकी बेहुरमती की जाती थी, उसे कोड़ों से पीटा जाता था, अपना शरीर बेचने के लिए मजबूर किया जाता था, भेड़-बकरियों की तरह उसकी खरीद-फ़रोख्त की जाती थी, उसकी आत्मा को सनातन अन्धकार में बन्द रक्खा जाता था, रोशनी और संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान से बिलकुल वंचित रक्खा जाता था, अब वह रोशनी की एक नयी दुनिया में आँख खोल रही है जिसमें जिन्दगी उसे एक परी की तरह नजर आती है जो सुनहली भोर के अपने कपड़ों में दमक रही है। जिस तरह वह अपने कामों को पूरा करके दिखा रही है उससे पता चलता है कि जैसे वह कहना चाह रही हो : तुमने सदियों तक मेरे साथ बड़ी ज्यादती की, मैं सदा से अपने कर्तव्यों को पूरा करने के योग्य थी और यह जो नयी भोर तुमने हमें दी है वह हमारा प्राप्य है और कुछ नहीं। तुम मुझे किसी काम में पीछे नहीं पाओगे।...उन स्त्रियों को देख कर और उनसे बात करके मुझे तो कम से कम ऐसा ही लगा। मैं यह नहीं कहना चाहता कि पुरुष अपने काम में ढीले थे लेकिन मैं यह जरूर कहना चाहता हूँ, और मेरी बात को गलत न समझा जाय, कि स्त्रियों के काम करने में कुछ जैसे ज्यादा उत्साह था। कुँआरी धरती में फ़सल ज्यादा अच्छी होती ही है! यही वजह है कि स्त्री जहा पर भी है वहीं वह सबसे बढ़ चढ़कर काम करके दिखा रही है। स्त्रियों के बारे में बहुत दिनों से यह जो बात कही जाती रही है कि स्त्रियाँ प्रकृत्या पुरुषों से हीन होती हैं, अपने काम के जरिये चीन की नयी स्त्री ने इस घृणित अपवाद की धज्जियां उड़ा दी हैं।

अपने नये सम्मान के अनुरूप उसके चेहरे पर एक बहुत शान्त आत्म-विश्वास भी दिखलायी देता है। वह इतना मुखर है कि उसके बारे में कहने का जरूरत पड़ती है। मैं उसके गोल, स्वस्थ, सीधे-सादे भोले चेहरे को देखता हूँ और वहाँ पर मुझे इस विश्वास के अलावा गर्व और प्रसन्नता और गम्भीरता भी दिखायी देती है। यह एक ऐसे व्यक्ति का चेहरा है जो समाज मे अपनी स्थिति जानता है और जानता है कि उसे किधर जाना है। सच पूछो तो यह एक माँ का चेहरा है जिसकी गोद में भविष्य है और यह भविष्य ही उसका बच्चा है। और उसी को उसकी रक्षा करनी है। शिक्षा और संस्कृति के सारे रुद्ध द्वार उसके लिए खोल दिये गये हैं। सामाजिक प्रगति की सारी राहें जो अब तक उसके लिए बन्द थीं (क्योंकि व्यक्ति के रूप मे उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व ही नही माना जाता था!) अब शादाब वादी की तरह उसके आगे फैली हुई हैं। यहाँ से वहाँ तक फूल ही फूल खिले हुए हैं और हवा में गीत गूँज रहे हैं। उसके बर्बर अतीत को दफ़न कर दिया गया है। उसके सबसे बड़े अपमान की चीज़ वेश्यावृत्ति का अब कहीं नाम-निशान भी नहीं है। रखेल रखने की प्रथा भी मिटा दी गयी है, क़ानूनन् उस पर रोक लगा दी गयी है। सामन्ती तरह की शादियाँ जो माँ बाप कर दिया करते थे अब उनको भी खतम कर दिया गया है।

वेश्यावृत्ति को खतम करने के लिए जो संघर्ष किया गया वह अपने आप में एक महान् गाथा है। सुनने में तो बात बड़ी छोटी सी लगती है कि अब चीन मे वेश्यावृत्ति नहीं है, वैसे ही जैसे सुनने में यह बात भी बड़ी छोटी लगती है कि चीन में अब लोग सुखी हैं! लेकिन जब आप उन संघर्षों की बात सोचते हैं, उस खून और पसीने की बात सोचते हैं जिसके कारण यह चीज़ सम्भव हुई तब मालूम होता है कि यह चीज़ उतनी छोटी नहीं है। वेश्यावृत्ति को खतम करने के पीछे चीन की हजारों स्त्रियों के अनवरत परिश्रम की कहानी है जिन्होंने इस चीज़ के लिए अनथक उद्योग किया है। पूँजीवादी विचारकों ने बार-बार इस चीज को साबित करने की कोशिश की है कि चोरी और वेश्यावृत्ति वग़ैरह ऐसी चीज़ें हैं जो दूर की ही नहीं जा सकतीं क्योंकि वे मानव स्वभाव में

अन्तर्निहित हैं। उनका कहना है कि अगर कोई चोर किसी के घर में सेंध लगाता है या कोई छोकरा किसी की जेब काटता है या कोई लड़की अपना जवान शरीर बेचती है तो इसका कारण भूख और ग़रीबी नहीं बल्कि उनके स्वभाव की अपनी मजबूरी है। आदमी चोरी करना चाहता ही है। उसी तरह जैसे औरत एक से ज्यादा मर्द करना पसंद करती है। लिहाज़ा इन चीजों को दूर करने की कोशिश बेकार है। और इसके बाद अरस्तू से लेकर मनोविज्ञान के सबसे नये पंडित तक की नजीर देकर इस सिद्धांत की पुष्टि करने की कोशिश की जाती है। और ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री डिज़रैली की यह कहानी सुना दी जाती है कि जब वे किसी दुकान में जाते थे तो दूकानदार की आँख बचा कर ज़रूर कोई न कोई चीज़ उठा लाते थे। बाद में दूकानदार उनकी आदत को जान गये थे और ऐसी चीजों का बिल चुपके से श्रीमती डिज़रैली को भेज देते थे और चूँकि उन्हें भी अपने पति की यह कमजोरी मालूम थी, वह बिना ननुनच के बिल चुका देती थीं। इस कहानी से निष्कर्ष यह निकाला जाता है कि जब इतना ऐश्वर्यशाली आदमी भी चोरी करता है तो इसका यही मतलब है कि चोरी का ग़रीबी से कोई सम्बन्ध नहीं है और आप ग़रीबी दूर भी कर देंगे तब भी यह चोरी-चमारी, यह वेश्यावृत्ति चलती रहेगी! इसी तरह की बहुत सी बातें हवा में फैला दी गयी हैं। मगर ये बातें बिलकुल ग़लत हैं और चीन का अनुभव इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। लोग कुछ भी कहें, यह बात सही है कि नये चीन में चोरी डकैती, खून, शरीर-विक्रय ये सारी चीजें खत्म हो गयी हैं। और इसके पीछे दूसरा कोई कारण नहीं है सिवाय इसके कि अब किसी को यह सब करने की ज़रूरत नहीं है और जिनको लम्बे अभ्यास के कारण इन चीजों की लत पड़ गयी है उनको शिक्षित करके इस लत से छुटकारा दिलाने की कोशिश की जाती है। जो लोग ऐसा कहते हैं कि इन चीजों का कोई इलाज नहीं है वे असलियत में इन चीजों का इलाज करना नहीं चाहते क्योंकि इनके बुनियादी इलाज का मतलब होगा उस नींव को ही काट कर अलग कर देना जिस पर कि पूँजीवादी समाज खड़ा है। इसलिए अगर पूँजीवादी समाज को बचाना है तो इन चीजों से न बोलो, जैसा है वैसा पड़ा रहने दो और कहो कि यह तो

मानव स्वभाव है। मगर चीन ने तीन बरस के अन्दर-अन्दर दिखला दिया है कि ऐसा कहना मानव स्वभाव के ऊपर एक अन्यायपूर्ण लांछन है। सामाजिक स्थिति बदलने पर इन सारी बीमारियों का इलाज सम्भव है अगर पूरा समाज इस चीज के लिए कोशिश करे। इस वेश्यावृत्ति के विनाश को ही लीजिए। इसके लिए हजारों सामाजिक कार्य करने वाली महिलाओं की टीमें बनायी गयीं, जिनमें विश्वविद्यालय की लड़कियाँ भी थी। वे अपनी बहनों को उनकी जिल्लत की जिन्दगी से निकालने के लिए स्वयंसेविकाओं के रूप में गयीं और उनको वहाँ पर जो कहानियाँ सुनने को मिलीं उनसे उनका यह विश्वास मजबूत ही हुआ कि आर्थिक और सामाजिक विवशताओं के कारण ही उन बहनों को यह जिन्दगी अपनानी पड़ी थी। समाज उन्हें भले पतिता कहे मगर उनमें भी कुलवधुओं की ही तरह नेक और भली स्त्रियाँ थीं जो किसी मजबूरी के कारण उस दलदल में जा फंसी। उनकी कहानियाँ भूख और नंग की हृदय-विदारक कहानियाँ थीं—भूख और नंग जो और सही न जा सकी। उनमें ऐसी लड़कियाँ थी जिनके माँ-बाप बचपन में मर गये थे और जिनको जिन्दगी का कोई सहारा बाकी न बचा था। उनमें ऐसी लड़कियाँ थीं जिनकी शादी बेवफ़ा आदमियों से हुई थी जिन्होंने उनको घर से निकाल दिया था। उनमें ऐसी लड़कियाँ थीं जिनका सतीत्व जमीन्दारों और कुओ मिन ताग और जापानी सिपाहियों और अफसरों ने लूटा था और फिर उन्हें उठाकर गन्दगी के ढेर पर फेंक दिया था। उन सभी लड़कियों के दिल में मुहब्बत की चाह थी, उनके कुंआरे हृदय को तलाश उसी चीज की थी मगर उनको मिले ऐसे लोग जिनकी वासना को उनके कुंआरे हृदय की नहीं, सिर्फ़ उनके कुंआरे शरीर की भूख थी। कोई दो कहानियाँ एक सी न थीं। मगर एक मतलब में वे सभी कहानियाँ एक थीं, इस मतलब में कि वे सभी नेकदिल लड़कियों की कहानियाँ थीं जिन्हें मजबूरन् यह जिल्लत की राह पकड़नी पड़ी, जिन्होंने खुशी-खुशी और आसानी से इस राह को नहीं पकड़ा बल्कि अन्त तक उससे लड़ने की कोशिश की। लेकिन चूंकि उस लड़ाई में वे बिलकुल अकेली थीं और उनका कोई मददगार नहीं था, इसलिए उनकी हार हुई। और इसीलिए अब जब उनकी अपनी बहनों का हाथ मदद के लिए

उनकी तरफ़ बढा तो उन्होंने उसको पकड़ लिया। यह सही है कि बहुत ललक कर नहीं पकड़ा। यह भी सही है कि उन्हें पहचानने में थोड़ा वक्त लगा कि यह जो हाथ उनकी तरफ़ बढे हुए थे, दोस्तो के हाथ थे। लेकिन अगर उनको यह समझने मे थोडी देर भी लगी तो इसके लिए उनको दोषी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि एक तो वे अपनी पुरानी जिन्दगी की आदी हो गयी थीं और दूसरे उनका विश्वास खो गया था क्योंकि लोगों ने उन्हें बार-बार धोखा दिया था, एक से एक लुभावने वादे किये थे और बार बार उनको तोडा था। निराश होकर ही उन्होंने वह जिंदगी अपनायी थी और वक्त गुजरने के साथ-साथ उनकी उस निराशा और अविश्वास और मन की कडुआहट का रंग गहरा होता चला गया था। इसलिए अब जब सच्ची मदद भी आयी तो उन्होंने उसे भी शक की नजर से देखा। उनके शक को दूर करने के लिए, उनके अन्दर विश्वास जगाने के लिए उन स्वयसेविकाओं को बहुत दिन तक बड़े धीरज के साथ संघर्ष करना पड़ा। पहले तो वह चुप्पी थी जिसे तोड़ना था, वे अपने अतीत के बारे मे कुछ भी नहीं बतलाना चाहती थीं। तो पहली तो चीज वह थी जिसे दूर करना पडा। फिर वे अजीब अजीब से तर्क थे जो वे दिया करती थीं, जिन्हे देकर वे कहती थीं कि हमको हमारे हाल पर छोड दीजिए। उस चीज को दूर करना था। मगर ये क्रान्तिकारी स्वयंसेविकाएं इतनी आसानी से उन्हें छोड़नेवाली न थीं। उन्होंने बराबर उनसे अपना मिलना-जुलना जारी रक्खा, उनकी कहानियों को धीरज के साथ सुना, पूरी हमदर्दी से सुना, उनके शुबहों को दूर किया और महीनों तक यह चीज चली, तब इस बात का पता चला कि समस्या कितनी गंभीर है और इसको हल करने के लिए कितनी कोशिश की जरूरत है। बहरहाल इस काम में भी इन्कलाबी जोश का हिस्सा था लिहाजा धीरे-धीरे सारी अड़चनों पर फतह पा ली गयी और यह मार्का सर हो गया। बहुत सी वेश्याएँ अपने चकलों से सीधे स्कूलों मे जाकर भरती हो गयीं। बहुतों ने शादी कर ली और घर बसा लिये। बहुतों को बच्चों की देखभाल वगैरह के कामों पर लगा दिया गया और इस तरह उनको समाज में समेट लिया गया। चीन जैसे विशाल देश में, जहाँ

यह रोग इतना बढ़ा-चढ़ा था, तीन बरस के अन्दर अन्दर इस काम का पूरा हो जाना कितनी बड़ी बात है, इसका अन्दाज़ा इस बात से किया जा सकता है कि मानव शोषण पर आधारित समाज सैकड़ों-हज़ारों साल से कोशिश करते हुए भी आज तक इस काम को नहीं पूरा कर सका। और चीन भी नहीं कर सकता था अगर वहाँ पर एक ऐसे समाज की बुनियाद न पड़ गयी होती जिसने सारे शोषण को खतम करके एक नयी दुनिया बनाने का संकल्प किया है। शोषण को दूर करने की बात सोचने पर पुरुष द्वारा नारी के शोषण की बात फ़ौरन उठती है और इसीलिए तत्काल इस नये समाज ने इस शोषण को भी दूर करने का बीड़ा उठाया। मानव अधिकारों से नारी को वंचित करने वाले पुराने क़ायदों को खतम कर दिया गया और उन्हें पूरी तरह से पुरुषों का समकक्ष बना दिया गया। घर के क्षेत्र में भी और बाहर के क्षेत्र में भी। इसी सिलसिले में विवाह के सम्बन्ध में नया क़ानून बनाया गया और पुरानी सामंती शादियाँ, जिनमें औरत बिक्री का एक सामान थी, खतम कर दी गयीं। विवाह का नया क़ानून उन चार सबसे महत्वपूर्ण क़ानूनों में से एक है जिन पर नयी व्यवस्था टिकी हुई है। माता-पिता की तय की हुई शादियाँ अब पुराने ज़माने की चीज़ हो गयीं। अब समाज दो नौजवानों को इस बात का मौक़ा देता है कि वे एक दूसरे को जानें, समझें, आपस में शादी करें और बिना किसी रोक-टोक अपना घर बसायें। समाज का ऊंच-नीच कितनी ही बार दो प्रेमियों को आपस में नहीं मिलने देता। यह सामाजिक प्रतिष्ठा अक्सर पैसे पर आधारित होती है। मगर वह किसी चीज़ पर आधारित रही हो, दो नौजवानों की ज़िन्दगी को तो बरबाद करती ही थी। इस झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा को भी दफ़न कर दिया गया है। और चीनी इतिहास में पहिली बार प्रेम की विजय हो रही है। प्रेम के दुःखान्त नाटक का अब मंगल में अवसान हो रहा है। अब शीरीं और फ़रहाद आपस में मिलने का मौक़ा पा रहे हैं।

यहाँ मैं चाइनीज़ लिटरेचर के सम्पादक चुन चान ये के संग अपनी एक बड़ी दिलचस्प बातचीत का ज़िक्र करना चाहता हूँ। वे एक बहुत प्रसिद्ध उपन्यास और कहानी लेखक हैं और संयोग से मैंने उनकी दो-एक

कृतियाँ आठ दस बरस पहले अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित की थीं। बहरहाल मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि एक दिन मुझे उनसे मिलने का भी मौका मिलेगा। मगर वह मौका पीकिंग के एक भोज में मुझे मिला और मैंने अपने बेहतरीन दो घण्टे उनकी सोहबत में गुजारे। हमने दुनिया की तमाम चीजों के बारे में हलकी-फुलकी बातें की और अपने साहित्यों के बारे में भी बातें कीं। मुझे बड़ी खुशी हुई जब सुन चान ये ने मेरी इस बात से अपनी सहमति जाहिर की कि अब जब कि चीन में विवाह का नया क़ानून पास हो गया है और दो तरुणों के प्रेम की राह में कोई रुकावट नहीं रह गयी है, नये चीनी साहित्य को दूसरी चीज़ों के साथ साथ स्वस्थ-उन्मुक्त प्रेम का भी साहित्य देना चाहिए। जब रोमान्स ज़िन्दगी में तबदील हो रहा है और सदियों से चले आते कवियों के सपने सच हो रहे हैं, निर्बाध प्रेम को भी साहित्य में आना ही चाहिए। मगर निर्बाध प्रेम से कोई यह न समझे कि वह पश्चिमी देशों के पतनशील समाज का स्वच्छन्द प्रेम है। दोनों में कोई समानता नहीं। पश्चिमी देशों का स्वच्छन्द प्रेम व्यभिचार का ही दूसरा नाम है। उसमें सच्चे प्रेम की तो गुंजाइश ही नहीं है और न उसके अन्दर कोई पवित्रता है। न उसमें नारी की स्थिति में ही कोई बुनियादी परिवर्तन आया है। उसे कोई सच्ची आज़ादी नहीं मिली है और वह आज भी पहले ही की तरह पुरुष की क्रीड़ा-पुत्तली है। स्वच्छन्द प्रेम के नाम पर सतीत्व की रही-सही भावना को भी तिलांजलि देने की कोशिश की जा रही है। नये चीन का निर्बाध प्रेम इस अर्थ में निर्बाध है कि वे शक्तियाँ जो नारी को दबाये हुए थीं और व्यभिचार के नहीं बल्कि सच्चे प्रेम की राह में रुकावट बनी खड़ी थीं, उस प्रेम के जो विवाह के रूप में प्रतिफलित होता है, खत्म कर दी गयी हैं और दो प्रेमियों की ज़िन्दगी अब एक में मिल सकती है। इस अन्तर के मूल में नारी की सामाजिक स्थिति है। जिस समाज में नारी पुरुष के समान है और स्वतन्त्र है, उसके संग व्यभिचार चल ही नहीं सकता। नयी सरकार नारी की आज़ादी की हिफ़ाजत पूरी चौकसी से करती है। क़ानूनन् नर नारी अब समान हैं लेकिन नर जो इतने दिनों से नारी पर शासन करता आया है उसके मन के इस

संस्कार को दूर करने में थोड़ा समय लगना स्वाभाविक है। इस बात को भी नयी सरकार समझती है। इसीलिए अदालतों में ज्यादातर मुकदमे वैवाहिक असामंजस्य के आते हैं जिनमें नारी पुरुष के खिलाफ़ अपना इस्तग़ासा पेश करती है। ऐसे ज्यादातर मामले अक्सर बड़े लोगों के बीच में पड़ने से सुलझ जाते हैं और पति पत्नी में फिर मेल हो जाता है। लेकिन जब ऐसा नहीं हो पाता और मामला अदालत के सामने जाता है तो अक्सर डिग्री स्त्री के ही हक में होती है। नयी सरकार इस बात को समझती है कि उसे पुरुष के अन्दर यह बात बिठालनी पड़ेगी कि वह किसी भी तरह स्त्री से श्रेष्ठ नहीं है। कहने की जरूरत नहीं कि रखैल रखना या बलात्कार करना हत्या से भी ज्यादा संगीन जुर्म समझे जाते हैं। हत्या के जुर्म से तो कभी छुटकारा मिल भी सकता है मगर इन जुर्मों से नहीं।

यह है चीन की नयी औरत का चेहरा, गर्वीला, आजाद और जीवन के हर व्यापार में पुरुष की संगिनी का चेहरा। अपने हर आचरण से वह यही दिखलाती है कि वह पुरुष की संगिनी है, सहयोद्धा है। वह कभी यह दिखलाने की कोशिश नहीं करती, न तो अपने कपड़े-लत्ते से और न अपने आचरण से, कि वह पुरुष से अलग कोई प्राणी है, जैसा कि हमारे देश में भी अक्सर स्त्रियाँ करती हैं। वहाँ वे आजादी के साथ मर्दों के साथ मिल जुलकर काम करती हैं, स्त्री के रूप में नहीं, बस एक कामरेड के रूप में। इससे ज्यादा कुछ नहीं। स्त्री और पुरुष के बीच में सैकड़ों साल से खड़ी हुई इस मानसिक दीवार को गिराना एक बहुत बड़ी बात है। किसी भी मामले में वह अपने आप को पुरुष से अलग नहीं खड़ा करना चाहती। इसका यह मतलब नहीं कि उसके अन्दर शील और मर्यादा नहीं है। वह तो है और उसी के कारण पुरुषों के साथ हर समय, हर जगह हिल-मिल कर काम करते हुए भी उनकी बातचीत या व्यवहार में कोई उच्छृंखलता नहीं आने पाती। वह पुरुषों के संग नाचती है, गाती है, काम में पुरुषों के संग उसके कांधे छिलते हैं लेकिन इस सब के बाद भी व्यवहार में कोई हलकापन, कोई उच्छृंखलता नहीं आने पाती। मैं उन लड़को-लड़कियों को हर समय ही देखता था जो हमारे दुभा-

षिये थे। सब जवान थे मगर आपस में उनके व्यवहार में किसी चीज का ऐसा संकेत भी नहीं मिलता था जिस पर कोई आपत्ति कर सके। वह शुद्ध मैत्री है। मैंने अभी कहा है कि अपने कपड़े लत्ते से भी स्त्री अपना स्त्रीपन जतलाने की कोशिश नहीं करती। पुरुषों ही की तरह उसके भी शरीर पर मोटी मारकीन का नीले रंग का पायजामा और बन्द गले का कोट और सिर पर छज्जेदार टोपी होती है। उसके लिबास को देखकर अंग्रेज़ी पत्रकार फ्रैंक मोरेज जैसे दो एक 'सौन्दर्य प्रेमियों' के दिल को भले ठेस लगती हो और उन्हें इस चीज में बड़ी एकरसता मालूम होती हो और वह कहते हों कि यह भी क्या तरीका है जिसे देखो वही देश भर में एक ही सी मोटी, खुरदुरी, नीली पोशाक पहने हुए है। लेकिन मैं तो समझता हूँ कि एक ग़रीब देश में जो अपनी नयी ज़िन्दगी का निर्माण कर रहा हो, इस चीज का होना एक ऊंचे नैतिक मान दण्ड को दिखलाता है। किसे नहीं मालूम कि कपड़ों के आधार पर समाज में ऊंच नीच की श्रेणी बन जाती है, अच्छा कपड़ा पहने हुए व्यक्ति मामूली कपड़ा पहने हुए व्यक्ति को नीची नज़र से देखता है। इसी बात को समझ कर नये चीन के बड़े से बड़े नेता भी वही कपड़ा पहनते हैं जो साधारण जन पहनते हैं और इस तरह वे देश के सामने एक नया आदर्श रखते हैं। जहाँ तक स्त्री की बात है उसने तो यह कपड़ा पहन कर भी यही दिखलाया है कि वह भी किसी से अलग नहीं है। ज्यादातर स्त्रियों ने अपने बाल भी अंग्रेजी ढंग से कटा लिये हैं। वह अपने जिस्म पर ऐसी कोई निशानी नहीं रखना चाहती कि वह पुरुषों से अलग दीख पड़े। सभी मेहनतकशों के बीच में वह अपने आपको खो देना चाहती है। यह सही है कि वह स्त्री भी है। मगर काम के वक्त वह स्त्री नहीं, मजदूर है। वह स्त्री है अपने घर में जहाँ वह किसी की प्रेयसी है और किसी की माँ। मैं कह नहीं सकता, हो सकता है मेरा खयाल ग़लत हो मगर उन स्त्रियों को देख कर और उनसे बात करके मुझे तो ऐसा ही लगा।

यहाँ पर बैठ कर जब मैं चीन की नयी नारी का चेहरा ध्यान में लाने की कोशिश करता हूं तो बहुत से चेहरे मेरी नज़रों के सामने आते हैं,

उन लड़कियों के चेहरे जिन्होंने हमारे दुभाषियों का काम किया, सुन और वाग और तुङ्ग और हो और ऐसी ही दूसरी कई लड़कियों के चेहरे, तन्दुरुस्त और भरे हुए। किसान और मजदूर स्त्रियों के चेहरे और डाक्टरों और नर्सों और नाचनेवाली लड़कियों और नर्सरियों में बच्चों की देख-भाल करने वाली औरतों के चेहरे। ये सभी चेहरे मेरी आँख के सामने आते हैं जो एक दूसरे से इतने मिलते-जुलते थे मगर फिर भी इतने भिन्न थ क्योंकि उन सब पर अपना एक ख़ास भाव था।

पीलापन लिये गोरा गोल चेहरा, ऊँची-ऊँची गाल की हड्डियाँ, गालों का गुलाबी रंग, आजाद और गर्वीला और क्रान्ति की हवाओं मे जैसे झकोरे लेता हुआ यह चेहरा किसी माँ या बहन का चेहरा है। उस चेहरे में ताक़त है। उसमें गर्मी ह। वह एक ऐसा चेहरा है जिसे नयी जिन्दगी मिली है। मैं आँख बन्द करता हूँ और उस चेहरे को और भी ग़ौर से देखने और पहचानने की कोशिश करता हूँ। मुझे तो लगता है कि वह जैसे किसी और का नहीं सुन् याओ मेइ का चेहरा है जिसे अपने स्त्रीत्व का इतना अभिमान है कि वह श्रीमती अमुक के रूप में जाने जाने से नफरत करती है और चाहती है कि बस उसका नाम सीधे-सीधे लिया जाय और नाम के पहले अगर कुछ लगाना ज़रूरी ही हो तो कामरेड लगाइए बस। सुन् याओ मेइ का चेहरा गोल है। वह सुनहरे फ्रेम का चश्मा लगाती है, उसकी उम्र छब्बीस साल है, वह विवाहिता है और साल भर की लड़की की माँ है। देखने में वह बच्चे जैसी है मगर उसका हृदय एक माँ का हृदय है। वह हमारी मुख्य दुभाषिया थी और जो भी उसके सम्पर्क मे आया, उसकी नेकी और भोलेपन से प्रभावित हुए बिना न रहा। हमारे लिए वह चीन की नयी आज़ाद स्त्री का प्रतिरूप थी, राजनीतिक दृष्टि से जागरूक, भली, मज़बूत, अपने काम में अत्यन्त योग्य और ईमानदार, और बहुत स्नेही—इतनी स्नेही कि वह सिर्फ़ हमारे आराम का ख्याल नही रखती थी बल्कि इस बात का भी ख्याल रखती थी कि हमको कभी अकेलापन न महसूस हो, जहाँ तक मुमकिन हो हमें घर की याद भी न सताये। वह सवेरे-सवेरे ताज़ी हवा के झोंके की तरह या भोर

की पहली किरण की तरह रोशनी और खुशी बिखेरती हुई हमारे कमरे में आती थी।

काश्मीर के मेरे कवि दोस्त नादिम ने जब याओ मेइ की नेकी का अपना अनुभव हमको बतलाया तो उनकी आँख में आँसू थे। नादिम पीकिंग में अपने होटल के कमरे में बीमार पड़े थे। शाम का वक़्त था। शाम एक ऐसा वक़्त होता है जब पता नहीं क्यों यों भी घर की याद ज़्यादा सताती है और आदमी अगर बीमार हो तब तो और भी ज़्यादा। हो सकता है उस वक़्त नादिम को अपने घर की याद आ रही हो। उसी वक़्त याओ मेइ उनके कमरे में पहुँची। याओ मेइ ने नादिम को उदास पाया। पूछा, आप को घर की याद तो नहीं आ रही है? नादिम ने कहा, नहीं। मगर याओ मेइ को नादिम की बात का यक़ीन नहीं आया। उसने कहा, शरमाने की कोई बात नहीं है। आप को जिस भी चीज़ की ज़रूरत हो मुझे बतलाइए, यह भी तो आपका घर है... फिर ज़रा देर की खामोशी के बाद याओ मेइ ने पूछा कि अगर आप यह चाहते हों कि मैं आपकी देख-भाल के लिए रात को आप के पास रहूँ तो निस्संकोच वैसा कहिए। नादिम ने कहा, नहीं उसकी कोई ज़रूरत नहीं है, डाक्टर आता ही है और कमरे में दूसरे साथी भी हैं ही जो देख भाल करते हैं और फिर मैं कुछ ज़्यादा बीमार भी तो नहीं हूँ। मामूली सा बुखार है, वगैरः वगैरः। तब याओ मेइ ने उनसे फिर कहा, नहीं आप संकोच कर रहे हैं। मैं बड़े मज़े में यहाँ ठहर सकती हूँ, आप के बस कहने भर की देर है। आप के घर में भी बहन होगी ही...और फिर उसने दो चार ऐसे कोमल, स्नेह से गीले शब्द कहे जो बहन अपने भाई से या माँ अपने बेटे से ही कह सकती है : मैं रात को रह जाऊँगी और आपको कहानियाँ सुनाऊँगी; आप को नींद आ जायगी और आपकी तबियत ठीक हो जायेगी।

मैं सच कहता हूँ कि नादिम की आँखों में आँसू थे जब उन्होंने यह कहानी पहले हम लोगों को सुनायी और फिर उस आख़िरी मीटिंग में सुनायी जो कि रेलगाड़ी में हुई और जिसमें हमारे चीनी दोस्त भी मौजूद थे।

ऐसी है सुन् याओ मेइ। कोई असाधारण बात उसके अन्दर नहीं है

अम्मी का इम्तहान

चियाङ् येन

ग्रीष्म
ये चिएन-यू

लेकिन जैसे कि मै देखता हूँ वह चीन का नयी स्त्री के सद्गुणो का एक औसत रूप है। उन सद्गुणों का जो कि निसर्गतः उसके अन्दर हैं और उन सद्गुणो का जो कि देश की बदली हुई हालत ने उसके अन्दर पैदा किये हैं। मेरे नजदीक वह उस शान्त, प्रदर्शन से दूर, वीरता का भी प्रतीक है जो कि लोगों की जिन्दगी का अंश बन गयी है। वह इतनी विनयशील थी कि अपने बारे में कुछ भी बोलने से उसे इनकार था और जब भी हम उससे उसकी जिन्दगी के बारे में कोई बात पूछते तो वह यही कहती कि मेरी जिन्दगी में कोई खास बात नहीं है। अगर आपको लिखना ही है तो हमारे माडल बकरी के बारे में लिखिए, लिखने काबिल जिन्दगी तो उनकी है। मैंने जब उसको इस बात का आश्वासन दिया कि मै उसके बारे में कुछ नहीं लिखूँगा तभी उसने अपने बारे में कुछ कहना कबूल किया। मैं जानता हूँ कि मैं उस वादे को तोड़ रहा हूँ मगर ऐसा करना जरूरी था। याओ मेइ में कोई असाधारण गुण नहीं है, वह कोई हीरो नहीं है लेकिन शायद इसीलिए उसका महत्व और भी बड़ा है। उसका पति (जिसे वह हमेशा अपना प्रेमी कहकर सम्बोधित करती है) चित्रकार है और क्वानतुङ्ग प्रदेश में भूमि सुधार के सिलसिले में काम कर रहा है और याओ मेइ उससे दो हजार मील दूर पीकिंग में रेलवे यूनियन में काम करती है। प्रायः दो बरस से पति पत्नी ने एक दूसरे को नहीं देखा है। आजादी की लड़ाई कामयाब हुई और किसी के लिए भी यह सोचना स्वाभाविक होगा कि शान्ति के साथ सुखी पारिवारिक जीवन बिताने के दिन लौट आये होंगे और अगर न लौटे होंगे तो इसके कारण लोगों के मन में तिक्तता होगी मगर जरा भी नहीं। याओ मेइ हसरत से उस दिन का इन्तजार कर रही है जब क्वानतुङ्ग में भूमि सुधार का काम खतम होगा और उसका प्रेमी उसके पास लौट कर आयेगा और यह बतलाते-बतलाते वह अपने भावों में डूब जाती है और कहती है कि उसके लौट आने पर हम लोग यह तय करेंगे कि हमको कहाँ पर बसना है। वह हमको बतलाती है कि उसके पति को कैंटन ज्यादा पसन्द है लेकिन खुद वह पीकिंग को ज्यादा पसन्द करती है क्योंकि पीकिंग में चेयरमैन माओ हैं......मगर खैर वह ऐसा मसला है जिसे हम लोग मिलकर तय करेंगे।

अपने पति के लिए दिल में इतना गहरा प्यार संजोये वह दो बरस से उससे जुदा है क्योंकि उसे यह नहीं मंजूर हुआ कि अपने छोटे से सुख को समाज के हित के ऊपर रक्खे और पति से जाकर मिलने के लिए छुट्टी मांगे। उनकी लड़की जब पैदा हुई उस वक्त भी लड़की का पिता, उसका पति उसके पास नहीं था ! हमको बात थोड़ी अनहोनी लगती है मगर उससे चीन की नयी नैतिकता, उसके नये नैतिक मूल्यों का कुछ संकेत जरूर मिलता है।

याओ मेइ अपनी लड़की को लेकर पीकिंग में रहती है और अपनी तनख्वाह (सौ रुपये से ज्यादा) का आधा उस नर्स को देती है जो उसकी बच्ची की देख भाल करती है। याओ मेइ किसी भी माँ की तरह अपनी लड़की पर जान देती है, उसकी एक छोटी सी तस्वीर सदा अपने पास रखती है और फिर भी सौंपे गये काम की खातिर खुशी खुशी उस छोटी सी बच्ची को तीस-चालीस दिन के लिए छोड़ देती है और हमारी सारी यात्रा में संग-संग रहकर हमारे दुभाषिये का काम करती है, नये चीन को हमें समझाती है। और सचमुच उसे खुद भी पता न होगा कि उसने कितनी अच्छी तरह अपना काम किया है और उसके कारण नये चीन को समझने में हमें कितनी मदद मिली है ! यह ग़ौर करने की बात है कि जब हमने सुन् को एक नया नाम देने की सोची तो हमें दो ही नाम सूझे : एक तो उषा और दूसरा सुन्शाइन जिन दोनों का संबंध रोशनी से है !

किताबी सिद्धान्त के रूप में मैं इस बात को बहुत दिन से जानता था मगर अमल में उसकी क्या शकल होती है, यह चीन में जाकर ही मुझे मालूम हुआ।

साम्राजी-सामन्ती गुलामी की हालतों मे साधारण जनता की संस्कृति तक पहुँच ही नहीं होती। पूरी संस्कृति की बात तो जाने ही दीजिए, उन्हें मामूली शिक्षा भी नहीं मिलती, अक्षर-ज्ञान तक नहीं। और लोग मुँह से कहें चाहे न कहें, बहुत से लोगों के दिल का यह चोर होता है कि कला-संस्कृति तो उस तरह के लोगों की चीज है जिनमें प्रकृत्या कलात्मक अभिरुचि होती है, जिनके दिमाग़ की वैसी गठन होती है, जो कला मे दीक्षित होते हैं। और चूंकि शिक्षा मिलने और कला में दीक्षित होने, दोनो ही बातों के लिए पैसे और अवकाश की जरूरत होती है, चुनांचे बिना इस भद्दी बात को मुँह से निकाले यह कह दिया जाता है कि संस्कृति अभिजात वर्ग की चीज है क्योंकि उन्हीं के पास पैसा भी है और अवकाश भी। और जनता को तो अभी गड्ढे में से

निकलना है, पता नहीं उसमें कितना समय लगे ! गोया उसको गड्ढे में से निकालने में शिक्षा और संस्कृति की कोई उपादेयता न हो।

बहरहाल, इस बात पर तो ध्यान जाता ही है कि अभिजात वर्ग की संस्कृति, यानी उसके साहित्य, उसकी चित्रकला और संगीत और नृत्य-नाट्य की अपनी कुछ विशेषताएँ होती है। पहली तो यह कि वह दीक्षागम्य होती है। वह तत्काल बोधगम्य नहीं होती और उसे अपनी इस बात पर नाज़ होता है। दूसरी बात यह कि उसमें बुद्धि और विवेक की जगह चेतना की निचली स्तरें ले लेती हैं जिन्हें कभी अन्तश्चेतना कहा जाता है कभी और कुछ। तीसरे यह कि अभिव्यक्ति के सीधे सादे जनप्रिय रूपों को ग्राम्य कह कर निकाल बाहर किया जाता है। चौथे यह कि यद्यपि इस संस्कृति में कुछ बारीक गुलकारियाँ जब तब देखने को मिल जाती हैं, तथापि शक्ति उसमें नहीं होती। और यह बात अकारण नहीं है क्योंकि अभिजात वर्ग की संस्कृति कुछ गिने चुने लोगों की होती है—वही उसके रचयिता होते हैं और वही उसका आस्वादन करने वाले। साधारण जनता न तो उसका आस्वादन कर पाती है और न उसकी रचना में ही उसका कोई योग रहता है और न कभी उसके दर्द उसकी तकलीफों, उसके सपनों को ही उनके यहाँ कोई जगह मिलता है। स्वाभाविक ही है क्योंकि वह समाज साधारण जनता को बस एक ही रूप में देखना जानता है : कि यह शक्ति का एक पुंज है, अपने मुनाफ़े के लिए इसका कैसे ज्यादा से ज्यादा शोषण किया जाय।

संस्कृति के क्षेत्र में भी नये चीन ने साधारण जनता को समाज के नक़्शे पर जगह दी है। चीन की नयी जनवादी संस्कृति पूरी तरह जनता की चीज़ है। उसकी विषय वस्तु जनता की अपनी ज़िन्दगी है। उसकी रचयिता साधारण जनता है। पुराने लिखने वाले तो ख़ैर हैं ही जिन्होंने जनता की ज़िन्दगी के साथ अपने को एक कर दिया है, अब खुद किसानों और मज़दूरों में से, उन्हीं के बेटे बेटियाँ साहित्य का भण्डार भरने लगे हैं। इस संस्कृति के भोक्ता भी वही हैं। पुराने चीन की संस्कृति से यह चीज़ मूलतः भिन्न है।

यह जो परिवर्तन आया है, एक दिन में नहीं आया। यह सही है कि

अब ही इसे बड़े पैमाने पर व्यावहारिक रूप दिया जा रहा है ; मगर इस चीज़ की जड़ें चीन की आज़ादी और इन्कलाब की लड़ाई की पहली हलचलों में मिलती हैं। जनवादी, जनप्रेमी बुद्धिजीवियो, लेखको और कलाकारो की दिमाग़ी तब्दीली से इस चीज़ की शुरुआत हुई और बुद्धिजीवियों के अन्दर यह दिमाग़ी तब्दीली चार मई उन्नीस सौ उन्नीस के विद्यार्थी आन्दोलन से हुई। ४ मई १९१९ का चीन के इतिहास में बहुत बड़ा महत्व है क्योंकि तभी से क्रान्तिकारी संघर्ष का सूत्रपात होता है और चीन के लोगों का ध्यान सोवियत रूस और मार्क्सवाद-लेनिनवाद की ओर, कम्युनिज़्म की ओर जाता है। रूस की शानदार अक्टूबर क्रान्ति ने ही चीन को मार्क्सवाद-लेनिनवाद दिया और उसी ने संस्कृति की ओर यह नया दृष्टिकोण भी दिया। चेयरमैन माओ ने कहा है कि ४ मई के आन्दोलन का सबसे बड़ा ऐतिहासिक महत्व इस बात में है कि उसके अन्दर वे बातें पायी जाती हैं जो १९११ की क्रान्ति में नहीं थीं। उसका महत्व इस बात में है कि वह पूर्ण रूप से और बिना समझौते के साम्राज्यवाद और सामन्तवाद का विरोध करता है......इस ४ मई के आन्दोलन ने सामन्तवादी संस्कृति के ख़िलाफ़ एक सांस्कृतिक क्रान्ति का भी सूत्रपात किया। चीनी इतिहास के आरम्भ से लेकर आज तक इतनी बड़ी और इतनी सम्पूर्ण सांस्कृतिक क्रान्ति न हुई थी। पुरानी नैतिकता का विरोध करो और नयी नैतिकता को आगे बढाओ, पुराने साहित्य का विरोध करो और नये साहित्य को आगे बढाओ, यही उसके दो सबसे बड़े नारे थे और इन्हीं नारों की वजह से उसे बड़ी कामयाबी मिली।

साहित्य और कला के मसलों पर इसी नये क्रान्तिकारी दृष्टिकोण से विचार करने के लिए एक बड़ा ऐतिहासिक सम्मेलन कई बरस पहले येनान में हुआ था। तब येनान ही आज़ाद चीन की राजधानी थी। इस सम्मेलन में चेयरमैन माओ ने एक रिपोर्ट पेश की जो आगे चलकर एक ऐतिहासिक चीज़ बनी और जिसने चीन की नयी जनवादी संस्कृति के विकास की रूप-रेखा निश्चित की। अपनी इस रिपोर्ट में चेयरमैन माओ ने साफ़ शब्दों में कहा है : "हमारे साहित्य और हमारी कला की दृष्टि सबसे पहले मज़दूरों,

किसानों और सैनिकों पर होती है और बाद को ही निम्न मध्यम वर्ग पर...
हमारे लेखकों और कलाकारों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे जनता के
अन्दर अपनी जड़ें डालें, मजदूरों, किसानों और सैनिकों की जिन्दगी में अच्छी
तरह घुल-मिलकर धीरे-धीरे उनकी तरफ़ आगे बढ़ें, उनके संघर्षों में आगे
बढ़कर हिस्सा लें और मार्क्सवाद-लेनिनवाद का अध्ययन करें, अपने समाज
का अध्ययन करें। मजदूरों, किसानों और सैनिकों के लिए सच्चा साहित्य
और सच्ची कला रचने का वही अकेला रास्ता है......चीन के जो क्रान्ति-
कारी और सचमुच योग्य लेखक और कलाकार हैं, उन्हें जनता के भीतर
जाना चाहिए, पूरे मन से अपने आप को उनकी सेवा में समर्पित कर
देना चाहिए, बहुत जमाने तक उनके बीच में रहना चाहिए। उनकी
इन्कलाबी लड़ाइयों में शरीक होना चाहिए। रचनाकार के लिए जनता
ही, उसकी जिन्दगी ही कला की सृष्टि का एक अकेला अक्षय स्रोत है और
उसके पास जाकर ही कलाकार भिन्न-भिन्न वर्गों को, समाज के भिन्न-भिन्न
टुकड़ों को, जीवन और संघर्ष के अनेक क्रियात्मक रूपों को, अनेक प्रकार के
व्यक्तियों को देख सकता है, उनका अध्ययन, निरीक्षण और विश्लेषण कर
सकता है। कला और साहित्य की प्राकृतिक सामग्री भी तो यही है। ऐसा
करके ही वे अपनी सृजनात्मक प्रक्रिया आरम्भ कर सकते हैं.....क्रान्तिकारी
उपन्यास, नाटक और चल चित्र जीवन से अपने पात्रों को लेकर जनता को
इस बात के लिए अनुप्रेरित कर सकते हैं कि वह इतिहास की धारा को और
आगे बढ़ाये।"

और चीन की नयी संस्कृति यही काम कर रही है। वह जनता को इति-
हास की धारा को आगे बढ़ाने के लिए अनुप्रेरित कर रही है। उनकी सारी
साहित्यिक और कलात्मक कृतियाँ अपने-अपने माध्यम से, अपने-अपने क्षेत्रों में
यही काम कर रही हैं। वे आजादी की लड़ाई को समग्र रूप में, सजीव रूप
में, रक्त मांस के साथ चित्रित करती रही है और अब चीन की नयी वास्त-
विकता को यानी नये चीन के निर्माण के लिए जो संघर्ष चल रहा है उसको
चित्रित कर रही हैं। 'सन्स एन्ड डाटर्स' 'मूविंग फोर्स' 'राइम्स आफ़ ली

गुलसाइ' 'इट हैपेन्ड ऐट विनो कमेन्स' ऐसे ही उपन्यास हैं। 'स्टील फ़ाइटर्स' 'व्हाइट हेयर्ड गर्ल' 'लोकोमोटिव ड्राइवर' 'हैपी सिनकियांग' ऐसे ही चित्र हैं। 'लोकोमोटिव ड्राइवर' में चीन की पहली स्त्री इंजन ड्राइवर की स्फूर्तिप्रद कहानी है। 'हैपी सिनकियांग' सिनकियांग के लोगों की आज़ाद और खुश जिन्दगी पर बनी डाक्युमेण्टरी है। 'स्टील फाइटर्स' आजादी के सैनिकों के अद्भुत शौर्य की कहानी है। 'व्हाइट हेयर्ड गर्ल' एक ज़मींदार के नृशंस अत्याचार और उस लड़की के प्रतिशोध की कहानी है जिसे ज़मींदार ने बर्बाद किया। अपने यहाँ की बम्बइया तसवीरें देखने के बाद जो कि हालीवुड की तर्ज पर मनोरंजन के नाम पर नंगी-नंगी तसवीरें दिखलाती हैं और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के नाम पर आदमी के बुरे रूप को ही चित्रित करती हैं, इन नयी चीनी तसवीरों को देखकर मन को बड़ी स्फूर्ति मिली। हमारे यहाँ ज्यादातर जैसी तसवीरें बनती हैं, वे हमें पतन की ओर ही ले जा सकती हैं। हमें उच्चतर मनुष्य बनाना तो जैसे उनकी दृष्टि की परिधि में ही नहीं है। उन तसवीरों को देखकर किसी को कोई ऊँचा काम करने के लिए, कोई देशभक्तिपूर्ण काम करने के लिए, मानवता की भलाई की ओर बढ़ने के लिए कोई प्रेरणा नहीं मिल सकती। जनता के अन्दर संस्कृति का प्रसार करने की दृष्टि से फिल्म का माध्यम सबसे अच्छे माध्यमों में से एक है, शायद सबसे अच्छा माध्यम है। लेकिन उसका जैसा दुरुपयोग हमारे देश में होता है, उसे देखकर मन को बड़ी पीड़ा होती है। काश कि हम उसे सही दिशा दे सकते! चीनी फिल्म देखते समय मेरे मन में एक साथ दो विचार आ रहे थे। एक तो यह कि टेकनीक और साज-सामान की दृष्टि से हम लोग अभी उनसे कितने आगे हैं और दूसरे यह कि हम लोग उस चीज का कितना घृणित उपयोग कर रहे हैं। सांस्कृतिक प्रकाश फैलाने का माध्यम हमारे यहाँ सांस्कृतिक अन्धकार फैलाने के लिए काम में लाया जा रहा है। यह स्थिति तब तक नहीं ठीक की जा सकती जब तक कि हमारी सरकार इस उद्योग को अपने हाथ में नहीं लेती। मगर इस वक्त हालत तो यह है कि इस उद्योग को अपने हाथ में लेना तो दूर रहा, वह उसके उचित संस्कार के लिए भी विशेष कुछ करना नहीं

चाहती। उसे इस बात की तो बड़ी फ़िक्र रहती है कि किसी चित्र में कोई बग़ावत की बात यानी कोई राजनीतिक बात न आ जाय; लेकिन इस बात की कोई फ़िक्र उसे नहीं होती कि नंगे-नंगे कामुक चित्र हमारे देश के प्रति और विशेषकर हमारी नयी पीढ़ी के साथ कैसा अनर्थ कर रहे हैं। जब तक सरकार का यह रवैया रहेगा तब तक हालत में बहुत सुधार होना मुश्किल है। यों उसके लिए सभी देशभक्तों का, प्रगतिशील लोगों का प्रयत्न फ़िल्मी दुनिया के अन्दर और बाहर जारी रहेगा ही। यह बात बिलकुल सही है कि हमारे फ़िल्म उद्योग के संग चीन के फ़िल्म उद्योग की कोई तुलना ही नहीं की जा सकती, हमारा फ़िल्म उद्योग बहुत आगे बढ़ा हुआ है, उसका सामर्थ्य बड़ा है, उसकी सम्भावनाएँ बड़ी हैं, उसकी शक्ति बड़ी है, लेकिन अभी तो उसका सदुपयोग से ज्यादा दुरुपयोग ही किया जा रहा है।

लेकिन अगर चीन में परिस्थिति इसकी एकदम उलटी है तो हमें समझना चाहिए कि उसके पीछे वर्षों की साधना और क़ुरबानियों का इतिहास है और उस से प्रेरणा लेकर हमें भी उसी साधना की तरफ़ बढ़ना चाहिए। आज चीन जो फ़सल काट रहा है वह पूरी तरह पक कर भले आज तैयार हुई हो मगर उसका बीज बहुत पहले डाला गया था। यह एक बहुत बड़े ऐतिहासिक महत्व की बात थी कि एक समय हज़ारों सांस्कृतिक कार्यकर्ता देहातों में और औद्योगिक केन्द्रों में और आज़ादी की लड़ाई के ख़ास मुक़ामों में गये और सारी तकलीफ़ें और ख़तरे उठाकर गये। यह एक क़ुरबानी की ज़िन्दगी थी जिसे उन्होंने ख़ुशी से अपनाया। ऐसा करने में बहुत से नौजवान लेखकों और कलाकारों को कुओ मिन ताग के हाथों अपनी जान भी गँवानी पड़ी।

मगर अब यह बात कही जा सकती है कि ये जानें बेकार नहीं गयीं। उन्हीं की क़ुरबानियाँ आज यह रंग ला रही हैं। वे लोग जो सदा निरक्षर थे, आज चीनी अक्षर सीख रहे हैं। चीनी अक्षर सीखना काफ़ी टेढ़ी खीर है क्योंकि हर अक्षर एक प्रतीक होता है जिसे दिमाग़ में अच्छी तरह बिठालना पड़ता है। मगर उससे क्या। एक मज़दूर ने यह अक्षर सिखाने की को

प्रणाली निकाल ली है और गो कि मैं यह नहीं जानता कि वह प्रणाली क्या है, मैं यह जरूर कह सकता हूँ कि आज सारे चीन मे उसका इस्तेमाल किया जा रहा है और निरक्षर जनता बड़ी तेज़ी से लिखना-पढना सीख रही है। वहाँ पर मुझे कुछ दोस्तों ने बतलाया कि इस प्रणाली से मामूली तौर पर तीन हफ्ते मे करीब तीन सौ चिह्न या अक्षर सीखे जा सकते है। उन्हीं ने मुझको यह भी बतलाया कि इतना ज्ञान अख़बार पढने के लिए काफी है। कहने का मतलब यह हुआ कि निरक्षर आदमी तीन हफ्ते के अन्दर अख़बार पढने लग जाता है। जिन लोगों मे जबान साधने का ज्यादा माद्दा होता है वे इसके आधे या आधे से कम वक्त में इतने चिह्न सीख जाते हैं। शांघाई में मुझे चालीस वर्ष की एक स्त्री मिली, एक लेबर हीरोइन, जिसने नौ दिन में एक हज़ार चिह्न सीखे थे। मैं मानने के लिए तैयार हूँ कि उस स्त्री में विशेष प्रतिभा रही होगी लेकिन हम तीन हफ्ते के औसत वक्त को ही ले लें तो मैं समझता हूँ कि वह भी काफ़ी तारीफ़ के काबिल है। इससे पता चलता है कि जहाँ काम करने की इच्छा रहती है वहाँ कोई न कोई तरीका निकल ही आता है। नहीं तो एक हमारे यहाँ है कि देव नागरी जैसी सरल लिपि के होते हुए भी हमें जनता को साक्षर बनाने मे इतनी कम सफलता मिल पा रही है। हमारे यहाँ साक्षरता पर करोड़ों रुपया खर्च किया जाता है मगर फल कम ही निकलता है। ज्यादातर पैसा बर्बाद हो जाता है। क्यों ? यह सवाल बार-बार वहाँ मेरे मन में उठ रहा था और मुझे तो उसका एक ही जवाब सूझा कि हमारे यहाँ पढाने वालो में पढ़ाने की और पढ़ने वालो मे पढ़ने की वैसी रुचि नहीं दिखायी देती। यह बात सुनने में ऐसी लगती है कि जैसे सवाल का जवाब न देकर उसी सवाल को फिर से पलट कर दूसरे रूप मे रख दिया गया हो। मगर बात ऐसी नहीं है। सभी चीजो के लिए कुछ न कुछ ज़रूरी शर्तें होती हैं। तब क्या ताज्जुब कि जन साक्षरता के लिए भी कुछ ज़रूरी शर्तें हैं। जब तक कि भूख और बेकारी के बुनियादी सवालों को नहीं हल किया जाता तब तक जन साक्षरता की सारी योजनाएँ अनिवार्य रूप से कागज़ी योजनाएँ रहेंगी। जन साक्षरता

का सम्बन्ध अशिक्षित प्रौढ़ों और लड़कों-लड़कियों से होता है। प्रौढ़ शिक्षा भला कैसे आगे बढ़े जब उस आदमी को चिन्ताएँ खाये जा रही हों। वैसी हालत में उसके नज़दीक इस चीज़ का ऐसा कौन सा बड़ा मूल्य हो सकता है कि वह अपना दस्तख़त कर ले। कर ही लेगा तो बात क्या बदल जायगी? भूख ऐसे भी है वैसे भी, ग़रीबी और बेकारी ऐसे भी है और वैसे भी, अपना नाम लिख लेने से या एक दो पोथी पढ़ लेने से कोई फ़र्क़ तो पड़ता नहीं। आख़िर उसके भी आँखें हैं और वह देखता है कि अच्छे से अच्छे शिक्षित हज़ारों लाखों नौजवान इधर उधर टक्कर खाते फिरते हैं और उनका कोई सिलसिला नहीं बैठता। तो फिर साक्षर हो जाने से फ़ायदा? अतः इस चीज़ में उसे कोई उत्साह नहीं मिलता। जहाँ तक लड़के की बात है, बहुत बार उसे भी रोटी की फ़िक्र करनी पड़ती है। लिहाज़ा वह भी उस चीज़ से कट जाता है। तरत की बात यह है कि हमारी मौजूदा हालत में वे न्यूनतम आवश्यकताएं भी नहीं पूरी हो रही हैं जिनके पूरे हो जाने के बाद ही साक्षरता का सवाल उठ सकता है या उसमें लोगों को उत्साह मिल सकता है। जहाँ तक पढ़ाने वालों की बात है उनको अलग अपनी रोटी पानी की परेशानियाँ हैं। सरकार अपने मास्टरों को चपरासियों और भंगियों से भी कम तनख्वाह देती है और फिर उनसे उम्मीद करती है कि व जी लगाकर काम करें! यह अन्याय नहीं तो और क्या है? चीन के साक्षरता आन्दोलन में विद्यार्थियों का बहुत बड़ा हाथ है। वे स्वयं-सेवकों के रूप में यह काम करते हैं। हमारे यहाँ के विद्यार्थी भी इस काम को लगन के साथ कर सकते हैं बशर्ते उनके देशप्रेम को, उनकी दायित्व-चेतना को जगाया जाय। लेकिन हमारे यहाँ तो कुएँ में ही भाँग पड़ी है। कौन किसे जगाये और कैसे? जहाँ सब अपनी ही अपनी फ़िक्र में लगे हों वहाँ किसे पड़ी है कि इस तरह का सिर दर्द मुफ़्त मोल ले? बात इतनी ही नहीं है, सरकार के पास इस काम के लिए पैसा भी बहुत कम निकलता है! उसे जेल और पुलिस पर पैसा खर्च करना ज्यादा ज़रूरी मालूम होता है। जो पैसा निकलता भी है उसका भी उचित इस्तेमाल नहीं होता। उसका अधिकांश ठेकेदार और सरकारी अधिकारी खा जाते हैं। योजनाएँ जो बनायी जाती हैं, हवा में बनायी

जाती हैं, सीखने वालों के अवकाश को देखकर, परिस्थितियों को देखकर नहीं बनायी जातीं। ग़रज़ यह गाड़ी लस्टम पस्टम चलती रहती है और कोई ख़ास नतीजा दिखायी नहीं देता।

इस तस्वीर को उलट दीजिए तो वही नये चीन की तस्वीर है। उनके नज़दीक जनता को शिक्षित और सुसंस्कृत बनाना राष्ट्र की पहली और सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी है। लिहाज़ा उनके पास और किसी चीज के लिए पैसा निकले चाहे न निकले, इस काम के लिए जरूर निकलता है। और किसी के लिए पैसा निकले चाहे न निकले, यह बात मैंने समझ बूझकर कही है क्योंकि मेरा यह दृढ विश्वास है कि ऐसी विराट् योजनाएँ तभी सफल हो सकती हैं जब कि सरकार उनके लिए दूसरी किन्हीं चीज़ों को छोड़ने के लिए तैयार हो। व्यक्तियों ही की तरह सरकार को भी यह निश्चय करना पड़ता है कि कौन सी चीज पहले ज़रूरी है और कौन सी चीज़ बाद को, किस चीज़ को वह पहले लेगी और किस चीज़ को बाद को। हमारी सरकार ग़ालिबन् पुलिस फोर्स को जन संस्कृति से ज्यादा आवश्यक समझती है लिहाज़ा उसके पास पुलिस फोर्स के लिए पैसा निकल आता है। चीन और दूसरे जनवादी देश हैं जो जन संस्कृति को आगे रखते हैं। उनके पास उस चीज़ के लिए पैसा निकल आता है, चाहे पुलिस फोर्स के लिए पैसा न निकले। और जनवादी सरकार को इस बात का कोई ग़म भी नहीं होता क्योंकि वह जानती है कि लोग अगर शिक्षित हैं और अपना भला बुरा समझते हैं तो सब काम आप से आप हो जायगा, विराट् पुलिस दल रखने की कोई ज़रूरत नहीं। इसके अलावा यह तो ख़ैर है ही कि नयी समाज व्यवस्था ने भूख और बेकारी और ग़रीबी के बुनियादी सवालों को हल करके जन साक्षरता के लिए उचित वातावरण तैयार कर दिया है। कोई आदमी जो सात-आठ घण्टे काम करने के लिए तैयार है उसे काम मिलेगा और जरूर मिलेगा। इस परेशानी से मुक्त हो जाने पर व्यक्ति को स्वभावतः इस बात का ध्यान आता है कि बिना पढ़े लिखे आदमी लट्ठ गंवार रहता है, इसलिए पढ़ना लिखना भी चाहिए। मगर अपने बुनियादी सवालों के हल होने के पहले नहीं, उसके बाद ही। यह नहीं हो सकता कि

आप लोगों को भूखा रखकर महज अपील के सहारे उनके दिल में इस चीज़ की ज़रूरत या अहमियत को बिठाल दें। सब बेकार होगा। वहाँ पर योजनाएँ जो लोग बनाते हैं, वे खुद किसान, मजदूर सैनिक होते हैं जो खुद अपनी पढ़ाई-लिखाई की योजना बनाते हैं, हमारे कुर्सीतोड़ नौकरशाहों की तरह नहीं जिन्हें असली हालत का पता ही नहीं होता। किसान मज़दूर जब खुद अपनी योजना बनाते हैं तो उन्हें इस बात का ठीक ठीक पता रहता है कि किसे कब फ़ुरसत रहती है, किस पेशे के, किस इलाके के लोगों को किस वक्त फ़ुरसत रहती है, कितनी फ़ुरसत रहती है और फिर उसी के अनुसार वे अलग अलग समय पर बहुत से स्कूल चलाते हैं। और अब इस सिलसिले में जो आखिरी बात मैं कहना चाहता हूँ वह यह है कि जन शिक्षा एक विराट् पुनर्निर्माण योजना का ही एक अंग है और उसी की पृष्ठभूमि में उसे समझा जा सकता है। उस विराट् पुनर्निर्माण से अलग करके उसे देखना सम्भव नहीं। यह बात समझ लेने पर ही इस दिशा में भी हो रही उनकी आश्चर्यजनक प्रगति को समझा जा सकता है और हमारे यहाँ सफलता जो नहीं हो रही है, उसको भी समझा जा सकता है। नये चीन के आदमी का पूरा मनोजगत बदल रहा है। जनता का इन्क़लाब सिर्फ़ धरती का ही मुक्त नहीं करता आत्मा को भी मुक्त करता है और उसे पंख लगा देता है। हमारे यहाँ वह चीज नहीं हो सकी है, इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो खुद लोगों की बेहिसी और मुर्दनी है जो सभी चीजों में दिखायी देती है। यह उनका नैसर्गिक दोष नहीं, परिस्थिति का दोष है। चीन जिस रफ़्तार से प्रगति कर रहा है, उसको देखते हुए कहा जा सकता है कि अगले कुछ वर्षों में वहाँ पर एक भी व्यक्ति अशिक्षित नहीं रह जायगा। तीन बरस लग सकते हैं, चार भी लग सकते हैं और उससे कम भी लग सकते हैं। मगर यह है कि अब इस मार्के को जीता हुआ समझिए। मेरी आँखों के सामने इस वक्त पाकिंग के पास काओ वेई पे गाँव के सैनिकों की तसवीर है जो मगन होकर अपनी अपनी छोटी सी किताब लिये हुए झूम झूम कर उसे पढ़ रहे थे और पढ़ने के बीच बीच में आपस में मज़ाक भी करते जा रहे थे। मैंने और कई मौक़ों पर लोगों को अपनी पहली पोथियाँ लिये

बैठे देखा। यह सही है कि यह द्रुत प्रणाली चीनयों को सिखाने के काम की ही है जो कि शब्द जानते हैं मगर उनको लिखना नहीं जानते। गैर-चीनी लोग उसका फायदा नहीं उठा सकते। लेकिन मैं समझता हूँ, यह बहुत बड़ी कामयाबी है कि सिर्फ तीन हफ्तों में एकदम निरक्षर लोगों को इतना सिखा दिया जाय कि वे पीपुल्स डेली पढ़ने लगें।

और बात सिर्फ जन शिक्षा की नहीं है, संस्कृति अपने समूचे ऐश्वर्य के साथ साधारण जन तक पहुँचायी जा रही है। नाच और गाना लोगों की दैनिक जिन्दगी का अंग बनता जा रहा है। कहीं भी किसी भी समय लोग नाचना और गाना शुरू कर देते हैं। यहाँ तक कि मैंने बहुत बार आधी रात बाद भी लोगों को नाचते हुए देखा। सब वही याको नाचते हैं जो कि सचमुच एक सुन्दर लोक नृत्य है। वह कोई मुश्किल नाच नहीं है, हमारे लोक नृत्यों की तरह उसमें भी कुछ थोड़ा सा लय का ज्ञान होने से और आजादी से शरीर संचालन कर सकने से काम बन जाता है। मगर उसके लिए एक ऐसी चीज़ की ज़रूरत होती है जो कि आसानी से नहीं मिलती और वह है एक खुशी से गाता हुआ दिल। इस याको के अलावा हमने और भी बहुत से नाच देखे। शान्ति सम्मेलन के प्रतिनिधियों के सम्मान में एक शाम को चीनी लोक नृत्यों का अनुष्ठान किया गया था और उसमें हमने तिब्बती नाच देखा, मंगोलियन नाच देखा, याओ जाति का नाच देखा और उइगुर जाति का नाच देखा। हमारे चीनी मेज़बानों ने हमको चीनी नृत्य-नाट्य, ऑपेरा इत्यादि देखने के खूब ही मौके दिये। ऑपेरा के बारे में आगे चलकर और भी बतलाऊँगा लेकिन जहाँ तक इन विभिन्न जातियों के लोक नृत्यों की बात है, मुझे उइगुर नृत्य अपनी शक्ति के कारण सबसे आकर्षक लगा। उसमें शक्ति भी थी और सौन्दर्य भी। उनका रेशम नृत्य तो देखते ही बनता है। जिस वक्त पाँच गज लम्बा रेशम उड़ने और हवा में तरह तरह की शकलें बनाने लगता है, वह बहुत ही मोहक दीख पड़ता है। अगर नृत्य का उद्देश्य मनोरंजन है तो इसमें सन्देह नहीं कि इस रेशम नृत्य की तुलना अच्छे से अच्छे नृत्य से की जा सकती है। बाद

में मुझे पता चला कि वह कोई खास मुश्किल नृत्य नहीं है और हमारे संग की रोहिणी भाटे ने उसको सीख भी लिया। एक शाम को पीकिंग होटल में हमने एक ऐसा आयोजन किया जिसमें रोहिणी भाटे ने चीनियों से सीखे हुए नृत्य दिखलाये और मिस ताइ और चीनो नृत्य परिषद् की दूसरी लड़कियों ने रोहिणी भाटे से सीखे हुए भारतीय नृत्य दिखलाये। यह सही मानी में संस्कृति का लेन देन था। मगर, खैर, उसकी बात बाद को। जो नाच हमको दिखलाये गये थे उनमें 'चीनी जातियों की महान एकता' नाम का एक कई नृत्यों का एक कंपोजिशन भी था। वह सोद्देश्य नृत्य था। उस नृत्य के छः भाग थे। लाल तारा नृत्य से आरम्भ करके सभी जातियों के ऐक्य के नृत्य में उसका अवसान हुआ। इस नृत्य से चीनी जनतन्त्र में बसने वाली सभी जातियों की एकता और भाईचारा और उनका मिल जुल कर अपने देश के सुन्दर भविष्य की रचना करना प्रकट होता था। कहना न होगा कि इनमें से अधिकाश नृत्य मरे जा रहे थे और उनको इस नयी व्यवस्था ने ही नया जीवन दिया। हम अपने देश को देखते हैं तो जहाँ एक ओर हम यह देखते हैं कि हमारे देश में नृत्य की और भी शानदार, और भी समृद्ध परम्परा है (शास्त्रीय नृत्यों की भी और लोक नृत्यों की भी) वहाँ उनको प्रोत्साहन देने की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता। हमारे भारतीय नृत्य दुनिया के बेहतरीन नृत्यों से टक्कर ले सकते हैं और शायद दुनिया भर में कहीं उनका जोड़ नहीं मिलेगा लेकिन इस कला को अपने विकास के लिए जैसी सामाजिक स्थिति चाहिए वैसी न मिलने से नृत्य जानने वालों या उसमें दिलचस्पी लेने वालों की संख्या बराबर गिरती जा रही है और हमारे बहुत से लोक नृत्य तो प्रायः खतम ही हो गये हैं। वहाँ पर हमको पता चला कि सनीचर को शाम चीन भर में नाच की शाम होती है जब कि सब जगह लोग नाचते हैं। ऐसी स्थिति में उनके नृत्य का विकास होना स्वाभाविक ही है।

सांस्कृतिक क्षेत्र में उनकी एक और भी चीज जिसका मुझ पर बहुत गहरा असर पड़ा, उनकी दस्तकारी है। सब जानते हैं कि दस्तकारी के मामले में चीन

बेजोड़ है। मैंने पीकिंग के पैलेस म्यूजियम और नानकिंग म्यूजियम और पीकिंग की 'क्यूरियो शॉप्स' में चीनी दस्तकारी के बहुत से नमूने देखे। उनकी खूबसूरती को देखकर और उनकी हाथ की सफ़ाई का खयाल करके दांत तले उँगली दबानी पड़ती है। उनकी दस्तकारी की जो चीजें हमने देखीं, उनमें हाथीदांत, जेड, चीनी मिट्टी, चन्दन, बाँस, रेशम और काग़ज की बनी हुई चीजें थीं। वाक़ई बहुत ही बारीक काम था और रङ्गों का मेल बिठाने में तो कोई उनसे आगे जा ही नहीं सकता। हम हिन्दुस्तानियों को भी अपनी दस्तकारी पर नाज है और वाजिब नाज़ है और मैं यहाँ पर दोनों का मुकाबला करने नहीं बैठा हूँ। हमारे देश में भी रेशम और जरी और ब्रोकेड का उतना ही अच्छा काम होता है जितना कि मैंने वहाँ देखा। उसी तरह हमारे यहाँ भी हाथी दाँत और चन्दन वगैरह का बहुत अच्छा काम होता है। लेकिन चीनी दस्तकारी के तमाम नमूनों को देखकर मैं बस इतना कहना चाहता हूँ कि इस काम में चीनी वाकई यकता हैं। पीकिंग के पैलेस म्यूजियम में हमने हाथीदाँत का एक परदा देखा जो कि बेजोड़ था। उसे पता नहीं कैसे तराश तराश कर तहों के अन्दर तह पैदा की गयी थीं और उस पूरे परदे में छहो ऋतुओं के अलग-अलग दृश्य बने हुए थे। अपनी बारीक कारीगरी में वह चीज सचमुच देखने काबिल थी। चीनी मट्टी के बने हुए बहुत पुराने-पुराने कुछ बर्तन भी देखे जो इतने सीधे सादे मगर साथ ही इतने अनूठे थे और उनका डिजाइन इतना खूबसूरत था कि वे सैकड़ों साल बाद आज भी उतने ही ताजे और खूबसूरत नजर आते थे। उनमें से कुछ तो ऐसे थे कि अगर उन्हें किसी आधुनिक शो रूम में रख दिया जाय तो कोई ताड़ भी नहीं सकेगा कि वे आधुनिक नहीं हैं। कुछ की बनावट, रंगों का इस्तेमाल वगैरह वाक़ई आधुनिकता का रंग लिये हुए था। मैं नहीं कह सकता कि यह चीजें कैसे मुमकिन हुईं मगर बात यह बिलकुल सच है। और फिर उनकी जेड की बनी चीजें थीं जिनके बारे में कुछ कहना ही बेकार है क्योंकि वह तो खास उनकी चीज़ है और उसमें उन्होंने एक से एक नफ़ीस चीजें बनायी हैं। इस दस्तकारी के मामले में भी यह बात ग़ौर करने

की है कि हमारे देश की तरह वहाँ भी दस्तकारियाँ खत्म होती जा रही थी, जब कि नयी सरकार ने आकर उनको प्रश्रय दिया। हमारे यहाँ ही देखिए, लखनऊ और दिल्ली और जयपुर और मुर्शिदाबाद वगैरह के तमाम कारीगर खत्म होते जा रहे हैं और उनके साथ सैकड़ों साल से चली आती हुई वे नायाब दस्तकारियाँ भी खत्म होती जा रही हैं। चीन की नयी सरकार दस्तकारियों को प्रश्रय दे रही है, यह बात उन लोगों को सुनने में अजीब लगेगी जिनका ऐसा खयाल है कि कम्युनिस्ट बहुत मशीनी ढंग के, भोंडी रुचि के लोग होते हैं जिन्हें खूबसूरती और नफ़ासत से चिढ़ होती है। मगर असलियत कुछ और है। ऐसे लोगों की इस धारणा के विपरीत कम्युनिस्ट इस बात का प्रयत्न करते हैं कि जो सौन्दर्य और सुरुचि कुछ लोगों के दायरे में ही सीमित रहती है, उसको समूची जनता तक पहुँचायें। चीन की नयी सरकार यही कर रही है। यह ग़ौर करने की बात है कि आजादी के पहले जिस साधारण जनता की जिन्दगी महज़ खटने की जिन्दगी थी, उसे अब पढ़ने-लिखने, नाचने, चित्र बनाने का मौक़ा मिल रहा है। कुछ इसी सिलसिले में हम लोगों की बातें पीकिंग के आर्ट कालेज के प्रिन्सिपल से हुईं। मुझे याद नहीं है, हममें से किसने उनसे कलाकारों की आर्थिक हालत के बारे में सवाल किया। हम जानते हैं कि हमारे देश में कलाकारों की कैसी गयी गुज़री हालत है। भयंकर ग़रीबी में उनके दिन गुज़रते हैं। उनके चित्र नहीं बिकते और केवल तूली के सहारे जिया नहीं जा सकता। ऐसी हालत में अक्सर अच्छे अच्छे कलाकारों को सस्ती व्यावसायिकता के साथ समझौता करना पड़ता है और अपना पेट पालने के लिए उसी तरह की तसवीरें बनानी पड़ती हैं, ठीक वैसे ही जैसे बहुत से लेखकों को पेट पालने के लिए बहुत सा अल्लम-गल्लम लिखना पड़ता है जिसकी गवाही उनका दिल नहीं देता। कलाकार की दृष्टि से देखिए तो वास्तव में यही उसकी मौत है और न जाने कितने कलाकार इसी तरह मर रहे हैं। लेकिन क्या करें, आर्थिक दबाव इतना ज़बर्दस्त है कि पेट पालने के लिए उन्हें यह सब करना ही पड़ता है। सरकार से अगर उनको सच्चे अर्थों में कोई प्रश्रय मिले तो उनकी यह विभीषिका कम

हो सकती है। लेकिन सरकार इस दिशा में कुछ खास कर नहीं पाती और अगर करती भी है तो ऐसों के लिए जो कि वास्तव में पात्र नहीं हैं, भले अपनी सिफ़ारिश पहुँचाने की ताक़त उनके अन्दर हो। जब तक कि साधारण जनता के पास कला की चीजों के लिए न तो भूख है और न पैसा और न सुरुचि और कलाकार व जनता एक दूसरे से कटे हुए अलग पड़े हैं और सरकार भी इस ओर से उदासीन है, तब तक यह हालत रहेगी ही।

प्रिन्सिपल को हमने यह कोई नयी बात न बतलायी थी। उन्होंने कहा कि कुओ मिन ताग के राज में चीन की भी बिलकुल यही हालत थी मगर अब बात बिलकुल बदल गयी है। अब अगर किसी व्यक्ति में प्रतिभा है तो वह आगे बढ़ेगा ही। जो भी कलाकार काम करना चाहता है उसका भविष्य सुनिश्चित है। आज़ादी के बाद हर घर में खुशी ने अपना घोंसला बनाया है। लोगों की क्रय शक्ति बराबर बढ़ती जा रही है। उनका सांस्कृतिक स्तर बराबर ऊँचा होता जा रहा है। इसका मतलब यह होता है कि कला की चीज़ों का बाजार निरन्तर फैलता चला जा रहा है। लोग अपने घरों को सजाना चाहते हैं। सरकार सभी सार्वजनिक स्थानों को, जहाँ पर लोग काम करते हैं या जाते-आते हैं, सजाना चाहती है और सिर्फ़ सजाना ही नहीं चाहती बल्कि जनता के नैतिक धरातल को ऊपर उठाना चाहती है, उनमें देश-प्रेम और जन-प्रेम की स्वस्थ भावनाओं को मज़बूत करना चाहती है। इसलिए स्वभावत: उसे सभी तरह की कला की चीज़ों की ज़रूरत होती है, यानी ज्यादा तसवीरों की भी ज़रूरत होती है जिसका मतलब होता है कि कलाकार के लिए बाज़ार हमारे यहाँ की तरह संकुचित होने के बदले फैल जाता है और उसे शिकायत करने का कोई मौक़ा नहीं मिलता कि उसकी तसवीरें उसके स्टूडियो में पड़ी सड़ रही हैं और कहीं उनका गाहक नहीं है। उन्होंने कहा कि अब हमारे यहाँ दूसरी ही समस्या है : हमारे यहाँ चित्रकारों की कमी पड़ गयी है। जिस तेज रफ़्तार से हम काम करना चाहते हैं उसके लिए हमारे पास काफ़ी चित्रकार नहीं हैं। आप अगर अपने यहाँ से भी कुछ चित्रकार हमारे यहाँ भेज दें तो बड़ा एहसान हो। इस जगह

पर हमने इस बात को उठाया कि अगर हम अपने कुछ कलाकारों को चीन भेज सकें और वहाँ पर उनके चित्रों की कुछ खपत हो सके तो कैसा रहेगा। प्रिन्सिपल ने हृदय से इस प्रस्ताव का स्वागत किया। उन्होंने हमको जो कुछ बतलाया उससे यह साफ था कि अगर हमारे कुछ कलाकार चीन जाना चाहें और वहाँ काम करना चाहें और अपने चित्रों की खपत करना चाहें तो चीनी इसका स्वागत करेंगे।

और अब हम उस महत्वपूर्ण समस्या पर पहुंच जाते हैं जिस पर हमारे शान्ति सम्मेलन ने भी विचार किया था : सभी देशों के बीच मुक्त निर्बाध सांस्कृतिक आदान-प्रदान की समस्या। इसके एक बहुत मार्मिक प्रतीक के रूप में रवीन्द्रनाथ की एक बड़ी सुन्दर तसवीर आर्ट स्कूल की बैठक में लगी हुई थी। संस्कृति के क्षेत्र को सबसे बड़ी आधुनिक प्रतिभाओं में रवीन्द्रनाथ का ही नाम चीन में सबसे ज्यादा प्यार और आदर और श्रद्धा से लिया जाता है। उस चित्र को देखते हुए मुझे रवीन्द्रनाथ की ही एक बात याद आ गयी जो उन्होंने कभी विश्व संस्कृति के बारे में कही थी। रवीन्द्रनाथ ने विश्व की संस्कृति की उपमा एक बाग़ से दी थी जिसमें संसार के सभी देश अपने-अपने फूल और उनकी अलग अलग खुशबुएँ और अलग अलग रंग लेकर आते हैं। रवीन्द्रनाथ की यह विश्व संस्कृति वैसी विश्व संस्कृति नहीं है जिसकी बात कुछ साम्राज्यवादी करते हैं। यह विश्व संस्कृति समन्वय और सामञ्जस्य से पैदा होती है, सभी देशों और जातियों की संस्कृति को बढ़ने और फलने-फूलने का मौका देने से पैदा होती है न कि उन्हें कुचलने से जैसा कि वाशिंगटन और न्यूयार्क के कुछ लोग सोचते हैं। यह एक मिली-जुली चीज होती है जिसमें कि हर देश का कुछ न कुछ अवदान होता है। और उस वक्त सुदूर पीकिंग में रवीन्द्रनाथ के चित्र को देख कर मुझे तो ऐसा लगा कि जैसे वह चीन और हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक मैत्री और मिलन का प्रतीक हो। प्रिन्सिपल से हमने आधुनिक चीनी चित्रकला के बारे में भी बातें कीं। इसी सिलसिले में किसी भारतीय प्रतिनिधि ने पूछा कि क्या चीन में कुछ ऐसे भी चित्रकार हैं जो 'ऐबस्ट्रैक्ट' चित्र बनाते हैं? इसके जवाब में वे मुस्कराये और बोले कि

'ऐब्स्ट्रैक्ट' कला का चीन में कोई भविष्य नहीं है क्योंकि उसके मूल में जनता से कलाकार का विलगाव होता है और आज की चीनी चित्रकला इस जगह से शुरू करती है कि उसे जनता की सेवा करना है। लिहाजा हमारा नया कलाकार जनता के संग अपने आप को मिलाने के लिए बराबर प्रयत्नशील रहता है। इसलिए स्वभावतः हमारी नयी चित्रकला यथार्थवादी और जनवादी होती है। इस चीज पर भले किसी का प्रिन्सिपल से मतभेद हो कि कला के क्षेत्र में यथार्थवाद किसे कहते हैं लेकिन यह तो मानना ही पड़ेगा कि उन्होंने अपनी बात साफ़ साफ़ कही और सवाल से कतराने की कोशिश नहीं की। संस्कृति की दूसरी चीज़ों की तरह चीनी चित्रकला भी जनता की चीज है। कु युआन की काठ खुदाई के चित्र भी उतने ही जनता के हैं जितने कि नब्बे वर्षीय पितामह ची बाइ शी के प्राकृतिक दृश्य जिनमें कुछ ही रेखाओं से पूरे दृश्य को खड़ा कर दिया जाता है और चित्र बोलने लगता है।

चीनी ऑपेरा में भी यही तब्दीली आ गयी है। चीनी ऑपेरा की बड़ी शानदार ऐतिहासिक परम्परा है। लेकिन आज़ादी के पहले उन तक कम ही लोगों की पहुँच थी। उनकी विषय वस्तु संकुचित होती थी और उन्हें कुछ सीमित लोगों के सामने ही दिखाया जाता था, थोड़े से अमीर-उमरा के सामने। अक्सर वे सामन्ती विचारों और सामन्ती नैतिकता के वाहक होते थे। अब बात बिलकुल बदल गयी है। जनता की जिन्दगी और सुखी भविष्य के निमित्त उनके संघर्षों पर आधारित बहुत से नये ऑपेरा तैयार किये गये हैं। बहुत से ऐतिहासिक और अर्द्ध-ऐतिहासिक ऑपेरा भी तैयार किये गये हैं जिनमें आज़ादी की लड़ाई का चित्रित किया जाता है। और जो पहले से चले आते हुए ऑपेरा हैं, उनका भी आज के नैतिक मूल्यों की दृष्टि से थोड़ा बहुत संशोधन और संस्कार कर लिया जाता है। इस काम के लिए ज़िम्मेदार लोगों की कमेटियाँ नियुक्त हैं जो इस बात को देखती हैं कि सामन्ती नैतिक मूल्यों की चीजें ज्यों की त्यों जनता को न दी जायं। हमने बहुत से ऑपेरा देखे और मेरे लिए तो सचमुच यह एक अनूठा अनुभव था। गो कि यह बात सही है कि मैं ऑपेरा से कुछ और ही चीज़ समझता था। मैं सोचता था कि

ऑपेरा बिलकुल संगीतपूर्ण होता है लेकिन मैंने देखा कि बात ऐसी नहीं थी। यह सही है कि संगीत ऑपेरा का एक बहुत ज़रूरी हिस्सा है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें केवल संगीत ही संगीत होता है। उसमें गद्य के भी बहुत से टुकड़े पद्य के साथ आते हैं। इसका भी कोई ख़ास नियम मुझे नहीं दिखायी दिया कि किस जगह पर गद्य का इस्तेमाल होता है और किस जगह पद्य का। यह भी नहीं था कि रोज़मर्रा की बोलचाल के लिए गद्य का इस्तेमाल किया जाता हो और विशेष रूप से भावुक क्षणों में पद्य का। हो सकता है कि अपने मूल रूप में चीनी ऑपेरा में संगीत ही संगीत रहा हो। लेकिन अब जो चीज़ हमने देखी वह तो मुझे बहुत कुछ अपने आधुनिक नाटकों जैसी जान पड़ी सिवाय इसके कि पुराने ऑपेरा की कुछ मुद्राएँ, कुछ भाव-भंगिमाएं उन्होंने ज्यों की त्यों बचा कर रक्खी हुई हैं। हमने अलग अलग मञ्चों के कई ऑपेरा देखे। उनमें सबसे ज्यादा पुरअसर मुझे White-haired Girl, Western Chamber, Monkey Wizard Puts the Heaven in Disorder, Kuei fei's Solace in Wine, Li-Shan Po and Chu Ying Tai, We Cross the Yalu River मालूम हुए।

पीकिंग ऑपेरा का विकास प्रायः दो शताब्दी पहले स्थानीय नाट्य रूपों से हुआ था। उसकी शैली परम्परागत है और लोकप्रिय है। मगर आजादी के बाद के काल में उसमें कुछ नये तत्व भी जोड़े गये हैं और मोटे रूप में कहा जा सकता है कि यद्यपि ऑपेरा का रूप वही है जो कि पहले से चला आ रहा है, उसकी विषय वस्तु में बुनियादी फ़र्क आ गया है। पुरानी विषय वस्तु में जो जनहितैषी बातें थीं, उन्हें तो रहने दिया गया है मगर वे तत्व संशोधित कर दिये गये हैं जिन पर सामन्तवादी विचारधारा और सामन्तवादी नैतिक मूल्यों का असर था, रूप में तो मैं समझता हूँ कि बहुत ही कम अन्तर आया होगा। मुद्राएँ और भंगिमाएँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। कुछ दृष्टियों से मुझको पुराना पीकिंग ऑपेरा अपने कथाकली नृत्य जैसा जान पड़ा, उसमें भी पौराणिक वीर यहाँ की ही तरह मंच पर आते हैं और अपने क्रिया-कलाप

दिखलाते हैं। एक अन्तर यह है कि कथाकली में चेहरों का इस्तेमाल होता है और वहाँ चेहरे को ही रंग-चुग कर वैसा बना देते हैं।

ऑपेरा दो तरह के होते हैं: पीकिंग ऑपेरा और युए ऑपेरा। युए ऑपेरा का जन्म चेकियाग प्रदेश के शाओ शिंग नामक स्थान में हुआ था। शाओ शिंग मशहूर चीनी लेखक, नयी चीनी संस्कृति के प्रवर्तक लू शुन का वतन था। लू शुन की बहुत सी किसानों की जिन्दगी से सम्बन्ध रखने वाली कहानियाँ अब युए शैली के ऑपेरा में दिखलायी जाती हैं। युए ऑपेरा दक्षिण की ओर पीकिंग ऑपेरा उत्तर की चीज है। टेकनीक की दृष्टि से दोनों में एक बड़ा अन्तर यह है कि पीकिंग ऑपेरा में स्त्री पात्रों तक का अभिनय पुरुष करते हैं और युए ऑपेरा में पुरुष पात्रों तक का अभिनय स्त्रियाँ करती हैं। मैं समझता हूँ कि बहुत कुछ इसी कारण उन दोनों की वर्ण्य वस्तु अपने-अपने खास ढंग की हो गयी हैं। युए ऑपेरा में ज्यादा नजाकत है। उसमें सुकुमारता अधिक है और वह प्रेम, विरह आदि की भावनाओं को चित्रित करने का ज्यादा अच्छा माध्यम है। उदाहरण के लिए, जो ऑपेरा मैंने देखे, उनमें दो युए शैली में थे, एक तो 'वेस्टर्न चेम्बर' और दूसरा 'ली शान पो और चू इंग टाइ' जिसका दूसरा नाम 'बटरफ्लाइ लवर्स' भी है। इन दोनों आपेराओं में एक बात समान थी कि दोनों मुहब्बत की सीधी-सच्ची कहानियाँ थीं, वैसी ही जैसी हमारी शीरीं-फरहाद, लैला-मजनूँ और हीर-राँझा की कहानियाँ। उतनी ही सुकुमार, उतनी ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी। बेहतरीन प्रेम कहानियाँ। उनके अन्दर शायद ही कोई तात्कालिक राजनीतिक सन्देश रहा हो। उनमें इतनी ही राजनीति थी जितनी कि शायद लैला-मजनूँ और हीर-राँझा में हो। यानी यह कि ऐसी चीजें उस सामन्ती जमाने की तसवीर पेश करती हैं जब कि मुहब्बत आज़ाद नहीं थी और दिल के बहुत से सौदे इसी तरह ट्रैजडी में खत्म होते थे, आत्महत्या और मृत्यु में। इतना तो वह ऑपेरा कर देता है और फिर दर्शक उसकी पृष्ठभूमि में अपनी आज की हालत को रखकर दोनों के अन्तर को मन ही मन समझ लेता है। मध्ययुगीन सामन्ती जमानों की तरह प्रेम का दुःख में पर्यवसित होना अब

जरूरी नहीं है, नये विवाह कानूनों के मातहत अब हालात बदल गये हैं और दो प्रेमी ज़िन्दगी भर के लिए आपस में मिल सकते हैं मगर यह सन्देश भी दर्शक के अपने समझने के लिए छोड़ दिया जाता है। ये ऑपेरा तो प्रेम और सौन्दर्य की लोक-कथाएँ हैं, अत्यन्त हृदयस्पर्शी और सचमुच में मन को मोह लेने वाली।

मगर 'ह्वाइट हेयर्ड गर्ल' का रस दूसरे ही तरह का है। इस ऑपेरा को हो चिंग ची, तिंग ई और येनान के 'लू शुन आर्ट इन्स्टीट्यूट' के दूसरे सदस्यों ने मिलकर लिखा था। यह प्रतिशोध की कहानी है, वह प्रतिशोध जो एक ग़रीब लड़की अपने संग बलात्कार करने वाले एक नृशंस ज़मींदार से लेती है।

नाटक सन् १९३५ में चीनियों के बसन्त पर्व के एक रोज़ पहले की शाम को खुलता है। उस वक्त, याग आई लाओ नाम का एक किसान बर्फ के तूफ़ान में घर लौटकर आता है। वह अपने ज़मींदार हुआग शी जेन को लगान की पूरी रक़म नहीं अदा कर सका है और साल दिन से मुँह छिपाता फिर रहा है। फिर उसे ख्याल आता है कि घर चलकर अपनी लड़की शियड़ के संग मिलकर हँसी-खुशी त्योहार मनाये। शियड़ के प्रेमी की माँ भी आकर नये साल का त्योहार मनाने के सिलसिले में उनके लिए अच्छा-अच्छा खाना पका देती है। तभी अचानक जमींदार अपने कारिंदे मो जेन ची को यांग के घर पर भेजता है। कारिन्दा याग को फौरन जमींदार के घर जाने के लिए मजबूर करता है।

उसी शाम अपनी हवेली पर ज़मींदार बार बार इन्कार करने पर भी याग को मजबूर करता है कि वह अपनी लड़की शियड़ को उसके हाथ बेच दे। अपने मालिक का हुकुम पाकर कारिन्दा मो जेन ची जबरन उससे काग़ज़ पर अँगूठे का निशान लगवा लेता है कि मैंने अपनी लड़की ज़मींदार साहब के हाथ इतनी रक़म में बेच दी। उसके बाद उस गरीब किसान को ज़मींदार साहब की हवेली से धक्के देकर बाहर कर दिया जाता है और उसके दिल में इस चीज़ की भारी पीड़ा रहती है कि मैंने अपनी लड़की बेच दी।

अपने गाँव के पास पहुंच कर सड़क ही पर याग उसबर्फ और तूफ़ान में बेहोश हो जाता है। उसका एक पुराना दोस्त चाओ उसको वहाँ पर पड़ा देखता है और उठाकर घर लाता है। शियड, उसका प्रेमी ता चुन और ता चुन की माँ तीनों बसन्त का त्योहार मनाने के लिए अच्छे से अच्छे पकवान लेकर आते हैं। चाओ उनको लाल सेना की कहानियाँ सुनाता है। पूरे वक़्त यांग अपने आप में खोया खोया बैठा रहता है। उसे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। रात बहुत बीत गयी है और अपनी खूबसूरत लड़की को गहरी मीठी नींद में सोते हुए देखकर यांग के सीने में दर्द होता है जैसे किसी ने उसे छुरा मार दिया हो। उसे ख्याल आता है कि अब फिर कभी मेरी लड़की को यह नींद नहीं नसीब होगी। मैंने उसे जमींदार के हाथ बेच दिया है और जमींदार पता नहीं उसके संग क्या करेगा। उससे अपनी तकलीफ़ अब और नहीं बर्दाश्त होती और वह ज़हर खाकर आत्मघात कर लेता है।

दूसरे रोज़ सवेरे शियड़ का प्रेमी ता चुन याग को नये साल की शुभ-कामनाएं देने आता है और उसे अपने घर के सामने बर्फ़ पर मरा पड़ा हुआ देखता है। वह शियड़ और दूसरे पड़ोसियों को जगाता है। चाओ यांग के हाथ में उस काग़ज़ की नक़ल देखता है जिस पर जबरिया जमींदार ने उसका अंगूठा लगवा लिया था। चाओ फ़ौरन याग के आत्मघात का कारण समझ जाता है। उसी वक़्त जमींदार का कारिन्दा मो जेन ची कुछ गुण्डों के साथ आता है और शियड़ को घसीट ले जाता है।

आज बसन्त का त्योहार है। सवेरे का वक़्त है। शियड़ घसीट कर ज़मीन्दार की हवेली पर ले आयी गयी है और उसे ज़मींदार साहब की बुढ़िया माँ की नौकरानी बना दिया गया है। वहीं शियड़ की मुलाक़ात काकी चांग नाम की एक दूसरी नौकरानी से होती है। वह तकलीफ़ में अपने दिन काट रही है और जल्दी ही दोनों में दोस्ती हो जाती है।

एक महीने बाद जमींदार के अत्याचारों से मजबूर होकर शियड़ का प्रेमी ता चुन और एक दूसरा किसान नौजवान ता सो, दोनों मिलकर मो जेन ची की खूब मरम्मत करते हैं। ता सो पकड़ लिया जाता है मगर ता

चुन भाग निकलता है और जाकर लाल सेना में भरती हो जाता है। जाते समय ता चुन चाओ काका से शियड के लिए अपना यह सन्देश कह जाता है कि वह उसकी प्रतीक्षा करे।

जमीन्दार के यहाँ शियड़ की ज़िन्दगी जानवरों से भी गयी-गुजरी है। उसे हर वक़्त गालियाँ मिलती रहती हैं और वह पीटी भी जाती है। एक रात वह पतित व्यभिचारी ज़मींदार शियड़ के संग बलात्कार करता है। उसके बाद शियड़ अपने आप को इतना अपमानित और कलंकित महसूस करती है कि फांसी लगाकर आत्मघात कर लेना चाहती है मगर चाग काकी उसे बचा लेती है।

बलात्कार के सात महीने बाद हुआग एक दूसरे ज़मींदार की लड़की के संग अपने ब्याह की तैयारी करता है। इसी बीच वह इस कोशिश में भी लगा है कि शियड़ को किसी रंडी के हाथ बेच कर उससे छुट्टी पा ले। यह सुनकर शियड़ हुआग को बहुत कसकर ललाडती है। उसे एक कमरे में बन्द कर दिया जाता है मगर चाग काकी अपनी जान पर खेल कर उस ताले की चाभी चुरा लाती है और शियड़ को आज़ाद कर देती है। यह पता लगने पर कि वह लड़की भाग गयी, हुआग अपने गुण्डों के साथ उसे पकड़ने के लिए निकलता है। उसी रात हुआग शी जेन और मो जेन ची शियड़ के पीछे भागते-भागते नदी किनारे पहुँचते हैं जहाँ पर उनको शियड़ का एक जूता मिलता है। जूते को देख कर वे अन्दाज़ लगाते हैं कि वह ज़रूर नदी में डूब मरी होगी और उसके बाद भटकने को बेसूद जानकर घर लौट आते हैं। मगर असलियत यह है कि शियड़ नदी में डूबती नहीं बल्कि भाग कर पहाड़ों में जा छिपती है। उसके दिल में ज़बर्दस्त नफ़रत की आग जल रही है।

तीन साल गुज़र जाते हैं। चीन पर जापानियों का हमला होता है। एक दिन नदी के पास पहाड़ के क़रीब चाओ भेड़ चराता दिखलायी देता है। वह चाग काकी और वांग काकी के पास आता है और फिर सब शियड़ की स्मृति में शोक मनाते हैं क्योंकि सब का यही ख़याल है कि वह मर गयी। मगर शियड़ मरी कहाँ, वह तो ज़िन्दा थी और जंगली फलों और पहाड़ पर

बने मन्दिर पर के चढ़े हुए कन्द मूल खाकर जी रही थी। इस डर से कि ज़मीन्दार उसे पकड़ लेगा, वह पहाड़ से नीचे कम ही उतरती थी और ज्यादातर अपनी गुफ़ा में ही छिपी पड़ी रहती थी। उस गुफ़ा में तीन साल तक रहते रहते शियड़ के बाल एकदम सन की तरह सफेद हो जाते हैं। किसान उसको देखकर उसे किसी का प्रेत समझते हैं और अपने जानने-समझने के लिए उन्होने उसको सफेद बालों वाली परी यह नाम दे रक्खा है। एक दिन तूफ़ान में शियड पहाड़ से नीचे उतरती है और इत्तिफ़ाक से हुआंग से उसकी मुलाकात हो जाती है। हुआग उसे भूत समझता है और डर के मारे उसका बुरा हाल हो जाता है। शियड अपने पुराने दुश्मन पर गुस्से के मारे हज़ार लानतें भेजती है।

जैसे जैसे जापानियों की फ़ौजें चीन के भीतरी हिस्सों में दाखिल होती हैं वैसे वैसे कुओमिनतांग की फ़ौजें घबराहट के मारे दक्खिन की तरफ़ भागती हैं। मगर चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में आठवीं रूट सेना दुश्मन के पिछाये में दाखिल हो जाती है और उससे लड़ते हुए उन्हें पीछे की ओर ढकेल देती है। तब तक शियड़ का प्रेमी ता चुन आठवीं रूट सेना का एक अच्छा सैनिक बन चुका है। जापानियों को पीछे ढकेल कर वह अपनी टुकड़ी के सग अपने गॉव में आता है। आने के साथ ही कम्युनिस्ट पार्टी और आठवीं रूट सेना लगान कम करने के संघर्ष में किसानों को आन्दोलित कर देती है। लोगों के पिछड़े हुए ख़यालों का फ़ायदा उठाकर हुआंग तरह-तरह की अफ़वाहें फैलाकर संघर्ष को कमज़ोर बनाने की कोशिश करता है।

ता चुन अपने जिले की सरकार का एक पदाधिकारी भी हो जाता है। लगान कम करने के आन्दोलन में ज़्यादा से ज़्यादा किसानों को खींचने के लिए और अत्याचारी ज़मीदारों से मोर्चा लेने के लिए उनको सन्नद्ध करने के सिलसिले में ता चुन अपने ज़िले के प्रधान से सलाह मशविरा करता है और वे फ़ैसला करते हैं कि किसानो के अन्धविश्वासो को ख़तम करने के लिए सफ़ेद बालों वाली चुड़ैल को पकड़ना ज़रूरी है। उसी रात ता चुन और ता सो लाई-लाई के मन्दिर में जाकर छिप जाते हैं। और उस चुड़ैल को देखने

पर उसका पीछा करते हैं और जब उसको जाकर पकड़ते हैं तो ता चुन को यह जानकर बड़ा ताज्जुब होता है कि वह तो उसकी प्रेमिका शियड़ ही है।

इस तरह किसानो के अन्धविश्वासो का अन्त होता है और फिर एक मीटिंग की जाती है जिसमें ज़मींदार के अनेक जुर्मों के बारे में किसान उसके ऊपर अभियोग लगाते हैं। और तभी शियड़ अपने उस सारे गुस्से और नफ़रत को उगलती है जिसे वर्षों तक उसने भीतर ही दबा कर रक्खा है। एक के बाद दूसरा किसान हुआंग के बुरे कामों के बारे में अपने-अपने अनुभव से बतलाता है। जनता की सरकार इस घृणित अत्याचारी जमींदार और उसके कारिन्दे को कानून के मुताबिक सज़ा देती है। अत्याचारों से पिसे हुए लोग आज़ाद हो जाते हैं।

Kuei-Fei's Solace in Wine इससे भिन्न है मगर उसके अन्दर भी अपनी एक खास तरह की शक्ति है। यह नाटक सौ साल से बहुत लोकप्रिय रहा है। उसमें परम्परा से चले आते हुए चीनी ऑपेरा के नाट्य संगीत, नृत्य और गान के सारे गुण मौजूद हैं। सामन्ती ज़माने में जिस तरह चीनी औरतों को खेलने की गुड़ियाँ बना कर घर के अन्दर कैद रक्खा जाता था, उसका सारा तीखापन, उसकी सारी पीड़ा इस ऑपेरा के अन्दर चित्रित की गयी है। और उसको चित्रित करने का माध्यम रहा है, शाही महल के अन्दर की रोज़-रोज़ की एक ही सी दिनचर्या की छोटी-छोटी बातो को अत्यन्त यथार्थवादी और कलात्मक और सांकेतिक ढंग से प्रस्तुत करना। इस नाटक की नायिका सम्राट् तांग मिंग हुआंग की स्त्री कुएइ फेइ है। सम्राट् उससे कहते हैं कि हम लोग आज रात उद्यान में विहार करेंगे। यह जानकर कुएइ फेइ की खुशी का ठिकाना नहीं रहता। लेकिन उसे बड़ी निराशा होती है जबकि उससे मिलने के वक़्त सम्राट् दूसरी जगह एक दूसरी स्त्री से मिलने चले जाते हैं। बेचारी कुएइ फेइ का दिल टूट जाता है और अपनी पीड़ा को भूलने के लिए वह प्यालों पर प्याले चढ़ाना शुरू करती है। यहाँ तक कि नशे में एकदम चूर हो जाती है। अपनी उस हालत में वह अपने सेवक के हाथ सम्राट् के पास सन्देश भेजती है।

मगर डर के मारे वह नहीं जाता। लिहाजा कुएइ फेइ अपना टूटा हुआ दिल ले कर महल में लौट जाती है। बस इतनी सी कहानी है मगर इस कहानी को जैसे दिखलाया गया है, उसमें मनोवैज्ञानिक कौशल बहुत है। इस नाटक की शुरूआत वहाँ से होती है जब कुएइ फेइ अपने बगीचे से पुष्पकुंज की ओर जाती है। रास्ते में चाँद को एकटक देखते हुए उसका रस लेना, सफेद संगमरमर के पुल को पार करना, हंस मिथुन को देखना, रंग बिरंगी मछलियों को पुल पर से देखना, उड़ते हुए बगलों को देखना, नशे की वजह से पैरों का लड़खड़ाना, शराब के प्याले को मुँह से लगाना और उसे खाली करना, फूल सूंघना—ये सारी चीजें एक से एक खूबसूरत नाच की मुद्राओं द्वारा व्यक्त की गयी हैं।

नायिका का पार्ट एक पुरुष ने किया है। यह पुरुष और कोई नहीं चीनी रंगमंच का सबसे बड़ा अभिनेता मे ला फा है। मे ला फा की उमर साठ के क़रीब है और वह चालीस बरस से ऊपर से स्त्रियों का ही पार्ट करते चले आ रहे हैं। इस काम में उनको अब इतनी दक्षता मिल चुकी है कि उनको उदाहरण के लिए, कुएइ फेइ की भूमिका में देखकर कोई भी यह नहीं कह सकता कि यह पार्ट कोई पुरुष कर रहा है। एक एक भंगिमा, एक एक अंग-संचालन, एक एक मुद्रा इतनी सुदक्ष है कि देखे बिना उसका अंदाज़ा करना मुश्किल है। मुझे यह ऑपेरा सचमुच बहुत ही आकर्षक लगा। लेकिन इस वक्त जब मैं उसका खयाल कर रहा हूँ तो मैं सिर्फ़ उसकी कला की बारीकियों की ही बात नहीं करना चाहता बल्कि यह कहना चाहता हूँ कि इस नाटक की समूची परिकल्पना बहुत ही अनोखी है। नौजवान कुएइ फेइ की जिन्दगी की थकन इतनी अच्छी तरह पेश की गयी है कि देख कर हैरानी होती है। हैरानी इसलिए होती है कि यह नाटक सौ साल पुराना होते हुए भी इसका भाव, इसकी अनुभूति, मन पर इसका संस्कार एकदम आधुनिक है।

केवल ऐक्टिंग और खेल-तमाशे की दृष्टि से मंकी विज़र्ड जैसी कोई चीज न थी। आदमी बन्दर का पार्ट करे, यह बात ही कुछ अजीब है। लेकिन जब आप उसे देखिए तो वाक़ई हैरानी होती है कि कितनी खूबी से यह चीज

अदा की जा सकती है। स्पष्ट ही अभिनेता ने बन्दर के चेहरे पर आने जाने वाले भावों का बहुत बारीकी से अध्ययन किया होगा। सबसे पहले तो चेहरे की हड्डियों, नसों, पेशियों को अपने वश में करने की बात है। नाक, आँख, ओठ वगैरह का हिलना, रह रह कर पूरे चेहरे का खिंचना, वैसे ही जैसे बन्दर करता है, सब कुछ था उसमें। कहीं कोई ऐब नहीं था। यह कमाल हासिल करना आसान बात नहीं है। यह ऑपेरा कुछ बहुत गम्भीर या संजीदा नहीं है। इस नुकते से देखिए तो इस ऑपेरा में आप को कुछ भी खास नहीं मिलेगा। लेकिन जो चीज उसमे है ही नहीं, उसकी तलाश करना ही ग़लत है। मैंने तो उसे जनता के, धरती के संस्पर्श वाले हास्य के एक टुकड़े के रूप मे देखा। जिस वक्त मंकी विज़र्ड (जादूगर बन्दर) अपनी फ़ौजें लेकर स्वर्ग पर चढाई कर देता है और स्टेज पर दोनों ओर के बीसियों आदमियों मे बड़ी देर तक युद्ध होता रहता है और बाद मे स्वर्ग की सेनाएँ हार जाती हैं, उस वक्त बड़ा ही मजा आता है। स्वर्ग की सेनाएँ हारें या न हारें, वह बाद की बात है लेकिन असल मजा तो युद्ध मे है। दोनों ओर से डंडे हवा में घूमते रहते हैं और कोई मुँह के बल गिरता है और कोई भागता है, वह दृश्य अपने आप में बड़ा दिलचस्प है और उस वक्त सचमुच यह हैरत होती है कि जहाँ पचासों लाठियाँ भाँजी जा रही हों, वहाँ कोई लाठी किसी ऐक्टर के सिर पर जाकर क्यों नहीं गिर पड़ती। जिसे अंग्रेजी में 'हॉर्स प्ले' कहा जाता है, उसका यह एक बहुत नायाब नमूना है और इसमें सन्देह नहीं कि उस नाटक को देखकर हँसते हँसते पेट में बल पड़ जाता है। उसको देखते समय अनायास मुझे रावण की राज सभा में हनुमान का ध्यान आया।

अन्तिम नाटक जिसके बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूं, क्योंकि मेरे मन पर उसका बहुत गहरा असर पड़ा, 'क्रासिंग द यालू रिवर' (हम यालू नदी के पार उतरे) था। यह नाटक हमें यांग्जो में दिखलाया गया था और कम से कम मैंने तो वैसी छोटी जगह में इतने अच्छे नाटक की उम्मीद नहीं की थी। कुछ तो शायद इसलिए कि उसके पहले तिएनजिन में हमें जो नाटक दिखाया गया

था, उससे मुझे तो निराशा ही हुई थी। इसलिए मेरे मन में कुछ ऐसी धारणा बन गयी थी कि शायद पीकिंग में ही सबसे अच्छे कलाकारों का जमघट है और वहीं पर सारे साज-सामान मिल सकते हैं। इसलिए वाकई आला दरजे की चीज़ शायद और कहीं मुमकिन नहीं है। मगर यांग्जो के इस नाटक ने तो हमारी आँखें खोल दीं। इस नाटक का डिज़ाइन अत्यन्त सादा था और उतना ही सादा और सच्चा था उसको पेश करने का ढंग। मगर यही उसकी ताकत थी। यह नाटक किसी मतलब में पीकिंग के बेहतरीन नाटक से घटकर नहीं था। मुझे तो वह चीज़ 'व्हाइट हेयर्ड गर्ल' के पाये की मालूम हुई। उसकी कहानी बहुत सीधी सी है। नाटक कोरिया की सीमा पर के एक चीनी गाँव में खुलता है। गाँव के सब लोग बड़े खुश दिखलायी देते हैं, वे शान्ति के साथ अपना सुखी जीवन बिता रहे हैं। खेत में काम कर रहे हैं, नदी में मछली पकड़ रहे हैं और चारों ओर खुशी की हरियाली छायी हुई है। बच्चे नाच रहे हैं और इधर उधर कूदते फिर रहे हैं। जवान लोग अपने खेतों पर काम कर रहे हैं और उसके साथ साथ उनका प्रणय का व्यापार भी चल रहा है। यह चीनी जनता की आज़ाद ज़िन्दगी का एक छोटा सा दृश्य है जिसमें सब सुखी और प्रसन्न हैं... ..मगर कुछ ही दिन बाद अमरीकी बम खुशी की इस हरियाली पर गाज बन कर गिरते हैं। गाँव के कई लोग मारे जाते हैं जिनमें छोटे बच्चे भी हैं। उनकी खुशी पर गाज गिरती है मगर वही चीज़ उनमें जोश और कुरबानी का माद्दा भी पैदा करती है। और इस तरह हम उस अन्तिम दृश्य पर पहुँचते हैं जब कि जनता की ओर से बदला लेने वाले स्वयंसेवक हमें मोर्चे की ओर जाते दिखायी देते हैं।

कथानक में वैसा कोई वैचित्र्य नहीं है, ज़रा भी नहीं। लेकिन चूंकि वह उनकी अपनी ज़िन्दगी का ही टुकड़ा है, अभिनय इतना जानदार हुआ है कि दर्शक की आँख में आँसू आ जाते हैं और नाटक बिजली का सा असर करता है। यह मुश्किल से सवा घण्टे का नाटक होगा लेकिन इतनी ही देर में प्रेम और घृणा, ज़िन्दगी की ट्रैजडी मगर उससे हार न मानने वाला प्रतिरोध, भावनाओं के ये सारे स्रोत हमारी आँखों के सामने आ जाते हैं और हम

अनुभव कर लेते हैं कि वह चीज़ कौन-सी है जो चीनी जनता को अपनी शान्ति और अपनी आज़ादी, अपने जीवन और अपने प्रेम की रक्षा के लिए अपने खून की आख़िरी बूंद तक लड़ने की ताकत देती है। हम अक्सर सैनिकों के लड़ाई से उकता जाने की बात सुनते हैं और इसमें सन्देह नहीं कि जो सैनिक साम्राज्यवादी लूट के लिए लड़ते हैं उनमें निश्चय ही आगे पीछे लड़ाई की उकताहट पैदा होती है। लेकिन जब लोग अपनी सबसे प्यारी और बेशक़ीमत चीज़ों की हिफ़ाज़त के लिए लड़ते हैं तब उनमें कहीं यह चीज़ नहीं दिखायी देती। चीन ने इस बात को साबित कर दिया है। बिना अपने कन्धों से एक मिनट को बन्दूक उतारे और ज़रा सा भी सुस्ताये बहादुर चीनी जनता एक मोर्चे से दूसरे मोर्चे पर चली गयी। उन्होंने क्यों ऐसा किया, इस चीज का साहस उनके अन्दर कहाँ से आया, उनकी प्रेरणा का स्रोत क्या था—यह सब कुछ इस छोटे से नाटक से साफ़ हो जाता था। वे अभिनेता सम्पूर्ण चीनी जनता की भावनाओं को रंगमंच पर दिखला रहे थे। वे खुद सीधे-सादे किसान लड़के थे और उन्हें इन भावनाओं का अभिनय करने की ज़रूरत नहीं थी क्योंकि वे उनकी अपनी भावनाएँ थीं, उनके अपने हृदय के भाव थे, अपनी अनुभूति, अपना दर्द था जिसे कि उन्हें अभिनय नहीं करना था, ज्यों का त्यों रख देना था। इसीलिए वह अभिनय इतना यथार्थ और स्वाभाविक हुआ। नाटक ख़त्म होने पर जब रोशनी जली तो मैंने देखा कि मैं अकेला आदमी नहीं था जो रूमाल अपनी आंख पर लगाये था।

इससे मैं चीन के नये नाटक की एक खास विशेषता पर आता हूं। यह मैं कोई नयी बात नहीं कह रहा हूं लेकिन वह बात इतनी बड़ी है कि उसे कहना चाहिए। 'सबसे अच्छे नाटक का यह गुण बतलाया जाता है कि उसमें अभिनेताओं और दर्शकों के बीच की दूरी ख़तम हो जाती है और वे एक इकाई बन जाते हैं। मैंने यह बात ग्रीक और एलिज़ाबेथकालीन अंग्रेजी नाटक के बारे में किताबों में पढ़ी थी। लेकिन इसको वाकई सशक्त रूप में होते मैंने इससे पहले नहीं देखा था। इसका बोध मुझे सच्चे अर्थों में

ह्वाइट हेयर्ड गर्ल और क्रॉसिंग द यालू देखकर हुआ। ह्वाइट हेयर्ड गर्ल में दर्शकों का पूरा पूरा तादात्म्य किसान याग और उसकी बदनसीब लड़की शियड के संग होता है और अन्तिम दृश्य में जब किसान बदमाश ज़मींदार हुआंग के खिलाफ़ अपना खरीता खोलते हैं, उस वक्त सारे दर्शकों में बिजली सी दौड़ जाती है और मैंने महसूस किया कि उस समय मंच पर के लोगों के साथ साथ हॉल का एक एक आदमी उस ज़मींदार के खिलाफ़ मूर्त अभियोग बना हुआ था। उसी तरह क्रॉसिंग द यालू में जब वालंटियर एक ओर से मंच पर प्रवेश करते हैं और दूसरी ओर कोरिया के मोर्चे पर चले जाते हैं, उस वक्त हॉल के हर आदमी को ऐसा लग रहा था कि जैसे वह उन वालंटियरों के साथ दोशबदोश मोर्चे पर जा रहा हो। मैं जो कि एक अजनबी था, मुझे भी उस वक्त ऐसा ही मालूम हो रहा था। यह चीज़ क्यों और कैसे होती है, यह एक ऐसी समस्या है जिसका कोई जवाब पुराने नाट्य शास्त्र में नहीं मिलता। और ठीक भी है क्योंकि यह नाट्यशास्त्र की नहीं, जीवन की समस्या है और जीवन ही इसका जवाब दे सकता है। जो नाटक जनता की अपनी ज़िन्दगी का टुकड़ा है, जिसके अन्दर जनता का अपना रक्त मांस है, जो उनके सपनों और उनकी भूखों की वाणी है, उसी में वह समग्र तादात्म्य सम्भव है जिसकी अभी मैंने चर्चा की है। और यह बात जितनी चीन के नाटक आन्दोलन के बारे में सही है उतनी शायद और किसी देश के बारे में नहीं।

चीन का नया नाट्य आन्दोलन सन् १६२५ और २७ के बीच और पहले क्रान्तिकारी गृहयुद्ध के दौर में शुरू हुआ। बाद में, जैसा कि हम जानते हैं, वामपक्षी नाटककारों के संघ की स्थापना हुई और उसके अन्तर्गत बहुत से नाटक खेले गये जिनका मजदूरों, किसानों, सैनिकों और बुद्धिजीवियों सब पर बहुत गहरा असर पड़ा। सन् १६३७ में जापान ने चीन पर हमला किया और चीनी जनता का आत्म-रक्षा का युद्ध शुरू हुआ। उस वक्त ऐसी बहुत सी टुकड़ियाँ बनीं जो देश भर में घूमती थीं और जनता को उस राष्ट्रीय संकट से मोर्चा लेने के लिए जगाती थीं। चैयरमैन माओ

ने साहित्य और कला के बारे में जो सीखें दी हैं उनका अनुकरण करते हुए आज़ाद इलाकों में नाटक का काम बड़े ज़ोर शोर से चला और कई बहुत अच्छे नाटक लिखे और खेले गये। हमको बतलाया गया कि ह्वाइट हेयर्ड गर्ल भी उसी काल की रचना है। यहाँ पर मैं यह भी बतला दूँ कि इस ऑपेरा को १९५१ में स्तालिन पुरस्कार भी मिला था।

इस सिलसिले में यह कहना भी अप्रासंगिक न होगा कि नाटक प्रकृतया एक जन माध्यम है, जैसा कि शायद दूसरा कोई नहीं है। और नाटक ने जब भी और जहाँ भी बड़ी तरक्की की है तब वह उसी हालत में हुआ है जब कि उसने सही मानी में जनता की जिन्दगी को, उनकी सबसे गहरा और सबसे बड़ी सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक समस्याओं और भावनाओं को चित्रित करने की कोशिश की है। जब भी उसने केवल मनोरंजन करना चाहा है या शून्य में दार्शनिकता बघारने की कोशिश की है तब अनिवार्य रूप से नाटक का पतन हुआ है। जहाँ तक चीन का सम्बन्ध है वहाँ का नया नाटक आन्दोलन उसी रौरव नरक के बीच से गुजरा है जिसके बीच से चीन की जनता गुज़री है। उसने कभी जनता का साथ नहीं छोड़ा, इस लिए जनता के हृदय में उसकी जड़ें इतनी गहरी हैं।

वह फ़सल जो तब बोई गयी थी, आज काटी जा रही है। आजादी की लड़ाई और जापान-विरोधी लड़ाई के उन दिनों में नाटक दलों को बिना किसी साज-सामान के काम करना पड़ता था। न उनके पास रंगमंच होता था न अच्छे-अच्छे परदे न कपड़े। वे खुद ही पलक मारते भर में अपना स्टेज खड़ा कर लिया करते थे और एक काला परदा टाँग कर अपने रोज़मर्रा के कपड़ों में नाटक खेला करते थे। अब उनके पास अच्छे से अच्छे रंगमंच हैं और क़ीमती से क़ीमती परदे और सेटिंग और कपड़े। उनके परदों और दमकते हुए कपड़ों को देखकर तो रश्क होता है। थियेटरों के साज-सामान के लिए बहुत पैसा खर्च किया जाता है। सरकार से जो पैसा मिलता है वह तो मिलता ही है, ट्रेड यूनियनें भी अपने थियेटरों को बढ़ाने के लिए बहुत पैसा देती हैं।

ये नाटक सभी दृष्टियों से बड़ी उच्चकोटि के थे। अभिनय बिलकुल स्वाभाविक था, सेटिंग बेहतरीन था, इस मतलब में कि सेटिंग का जो काम है उसे वह अच्छी तरह पूरा करता था। सेटिंग का काम है वास्तविकता का भ्रम पैदा करना और यह चीज सभी नाटकों में बहुत खूबी के साथ की जाती थी। रात, चांद, तारे, चारों ओर का स्तब्ध वातावरण, पौ फटना, उगता हुआ सूरज और उसका धीरे-धीरे फैलता हुआ प्रकाश, जंगल और पहाड़ और आसमान, बादल का गरजना और बिजली का कड़कना इन सारी चीजों के एफेक्ट बड़ी अच्छी तरह निभाये गये थे। यह सेटिंग का ही जादू था कि नाटक देखते समय आदमी नाटक की दुनिया में बिलकुल खो जाता था। जिस वातावरण की सृष्टि वे करना चाहते थे, अच्छी तरह कर रहे थे। रंगमंच की व्यवस्था भी बड़ी चुस्त और फुर्तीली थी। मैंने अपने देश में अच्छे से अच्छे थियेटरों का काम देखा है और बहुत बार मुझे इस बात पर चिढ़ पैदा हुई है कि एक दृश्य और दूसरे दृश्य के बीच में इतना वक्त क्यों गंवाया जाता है। जब एक दृश्य के बाद दूसरा दृश्य तत्काल नहीं आता तो रस भंग होता है। इन चीनी ऑपेराओं में मैंने देखा कि कितनी फुर्ती से यह काम किया जा सकता है। बिजली की तेजी से एक सेट हटाया जाता था और उसकी जगह दूसरा आ जाता था। एक दो बार जब सामने वाले बड़े परदे ने थोड़ा असहयोग किया और समय से नहीं गिरा तो मैंने देखा कि यह चीज कैसे होती थी। आखिर यह क्या जादू था कि प्रायः तत्काल ही सेट बदल जाता था। मैंने देखा कि एक विंग में खड़े हुए लोग तेजी से दौड़े और सेट को उठाते हुए दूसरी ओर निकल गये और ठीक उसी वक्त दूसरे विंग में खड़े हुए लोग तेजी से दौड़े और सब चीजें यथा स्थान जमा कर दूसरी ओर निकल गये। बिलकुल बिजली की तरह। इसके अलावा नाटक के बीच में भी बहुत उलझे हुए दृश्यों में भी किसी वक्त कोई गड़बड़ी नहीं पैदा हुई। मिसाल के लिए मंकी विजर्ड वाले ऑपेरा में युद्ध के दृश्य में मंच की व्यवस्था दुष्कर चीज थी। देखकर लगता था कि वाक़ई कुछ लोग लड़ रहे हैं। अजब एक उठा-पटक का समाँ था मगर कोई किसी को धराशायी नहीं कर रहा था।

ये छोटी-छोटी बातें मै इसलिए बता रहा हूँ कि इनसे पता चलता है कि कितने परिश्रम से हर चीज का रिहर्सल करके ये सब कुछ एकदम पक्का-पोढा कर लेते है।

दो शब्द सांस्कृतिक आदान प्रदान के बारे में क्योंकि हमको चीन ले जाने वाली चीज वही थी और सम्मेलन ने भी इस चीज पर बहुत जोर दिया था। हमारे सम्मेलन का यह निश्चित मत था कि लड़ाई की आग लगाने वाले जनता के अन्दर युद्ध का जो उन्माद पैदा करते हैं उसका मुकाबिला करने के लिए इससे अच्छी चीज दूसरी नहीं हो सकती कि संसार के सब देशों के लोगों को एक दूसरे के करीब आने और एक दूसरे को जानने-पहचानने का मौका दिया जाय। यह चीज तभी सम्भव है जब उन दीवारों को तोड़ कर गिरा दिया जाय जो कि आज देशो के बीच खड़ी हैं और जिनके कारण सब देशो के लोग आजादी के साथ एक दूसरे से मिल नहीं सकते और अपने विचारो, अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान नहीं कर सकते। अगर उनको इस चीज का मौका मिले तो वे खुद देख लेंगे कि सब जगह की जनता एक है, सब लोग एक ही हाड़-मास के बने हुए हैं और सब हृदय से शान्ति चाहते हैं क्योंकि सभी जीना चाहते हैं। लोगों को अगर इस बात का पूरा विश्वास हो जाय तो लड़ाई चाहने वालों के लिए जनता को लड़ाई के बूचड़खाने में फुसला कर ले जाना मुश्किल हो जायगा। आपस का अविश्वास ही वह चीज है जिसका फायदा इन्सानियत के दुश्मन उठाते हैं और अगर किसी तरह इस अविश्वास को लोगों के दिलों से निकाला जा सके तो समझिए कि शान्ति रक्षा की आधी लड़ाई जीत ली गयी। अतः हमारे सम्मेलन ने सभी देशों के बीच मुक्त सांस्कृतिक आदान-प्रदान पर बहुत जोर दिया। वहाँ पर सब लोगों के दिलों में पूरे वक्त यही एक सबसे बड़ा ख्याल था। इस सिलसिले में माओ दुन से हमारी जो मुलाकात हुई उसकी भी चर्चा अप्रासंगिक न होगी। जैसा कि मै ऊपर बतला आया हूँ, माओ दुन एक बड़े उपन्यासकार हैं और केन्द्रीय सरकार में संस्कृति के उप-मन्त्री हैं। काश्मीर के कवि नादिम और मैं उनसे मिलने गये थे। बहुत अच्छे सजे हुए कमरे मे हमें ले जाया गया और वहाँ पूरे चीनी आतिथ्य सत्कार से

हमारी आवभगत की गयी। फलों और पेस्ट्रियों का अम्बार मेज पर लगा हुआ था। चाय का दौर बराबर चल रहा था। हमारे अपने दुभाषिये के अलावा चुन चान ये हमारे दुभाषिये का काम कर रहे थे। भारतीय रचनाओं के चीनी अनुवाद की बात निकलने पर माओ दुन ने बड़े उत्साह से यह बात कही कि हम जल्दी ही इस बात की व्यवस्था करने वाले हैं कि भारतीय साहित्यिक कृतियों के अनुवाद चीनी में ज्यादा से ज्यादा निकल सकें। उन्होंने एक व्याव-हारिक अड़चन यह बतलायी कि अभी उनके यहाँ सीधे-सीधे भारतीय भाषाओं से चीनी में अनुवाद करने वालों की कमी है। हिन्दी की शिक्षा के लिए पीकिंग में विभाग खोल दिया गया है और दूसरे विश्वविद्यालयों में भी खोला जा रहा है। विद्यार्थी बहुत बड़ी संख्या में हिन्दी सीख रहे हैं और उनके परिश्रम और उनकी प्रगति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि कुछ ही वर्षों में हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने वालों की कमी उनके यहाँ नहीं रहेगी। फिलहाल उनके पास अँग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, जर्मन और रूसी जबान से अनुवाद करने वाले हैं। जापानी भाषा से भी अच्छे अनुवाद करने वाले उनके पास हैं। जहाँ तक हमारे दोनों देश के बीच लेन देन की बात है, फिल-हाल हमें अँग्रेजी से काम चलाना पड़ेगा। एशियाई शान्ति सम्मेलन ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए एक परिषद् की स्थापना कर दी है और जब वह काम करने लगेगा एशिया और प्रशान्तसागरीय देशों के लोगों के लिए सांस्कृतिक आदान-प्रदान सम्भव हो जायगा। हमारा और चीन का बहुत पुराना सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है और हमने एक दूसरे से साहित्य और दर्शन, स्थापत्य और चित्रकला के क्षेत्रों में बहुत कुछ सीखा है। कोई कारण नहीं है कि एक बार फिर हम उस प्राचीन सम्बन्ध को एक नये धरातल पर क्यों नहीं जिन्दा कर सकते। शान्ति सम्मेलन खतम हो जाने के बाद एक दिन लेखकों और कलाकारों की एक मीटिंग हुई थी। उसमें सभी देशों के वक्ताओं ने इसी चीज पर बार-बार जोर दिय

इसी मीटिंग में मेरी मुलाक़ात कवि एमी शिआओ और आई चिंग और उपन्यासकार चाओ ली पो से हुई जिन्हें हाल ही में स्टॉर्म नामक अपने

उपन्यास पर स्तालिन पुरस्कार मिला है। हम लोग बड़ी देर तक आपस में बातें करते रहे और गो हमें दुर्भाग्यवश एक दूसरे के साहित्य और कला के बारे में काफी जानकारी नहीं थी तो भी उसकी हार्दिक लालसा दोनों ओर थी जोकि निश्चय ही फल लायेगी। सांस्कृतिक आदान-प्रदान शुरू हो गया है और गो अभी वह अपनी आरम्भिक दशा में ही है, तब भी वह एक अच्छी शुरूआत है।

चीन जाने के पहले मैंने कुछ किताबों में पढा था कि चीन में विचारों की आज़ादी नहीं है। इस बात को कहा बहुत तरीके से जाता है मगर उसका लुब्बेलुबाब एक ही होता है, जिसको इन शब्दों में रक्खा जा सकता है : हाँ, यह ठीक है कि वहाँ बेकारी नहीं है और लोग काम से लगे हैं और लोगों को खाना कपड़ा मिल रहा है मगर यही क्या सब कुछ है ! जहाँ इन्सान का दिमाग़ आजाद न हो, वह अपने मन के मुताबिक़ लिख-पढ न सके, आज़ादी से अपने दिल की बात न कह सके, आज़ादी से सोच न सके, वहाँ के लोगो को बहुत खुशनसीब तो न कहना चाहिए। यह भी क्या बात हुई कि सब लेखक एक तरह से लिखते हैं, सब चित्रकार एक से चित्र बनाते हैं, सब अखबार एक ही तरह से खबरों को सजाते हैं। अगर यह विचारों की पाबन्दी नहीं है तो और क्या है ?

मैंने भी इस तरह की बातें सुनी थीं और सच्चाई का पता खुद लगाना चाहता था। मैंने सोचा, जब कोई नयी क्रान्तिकारी समाज व्यवस्था आती है

तो स्वभावतः उसके बारे में बीस मुँह से बीस तरह की बातें कही जाती हैं। लेकिन कही ही क्यों जाती हैं, इसका पता भी मैं लगाना चाहता था। इसलिए मैंने अपने चीनी दोस्तों से सवालात किये और जो कुछ मुझे मालूम हुआ और जो कुछ खुद मैंने देखा, उसी के आधार पर मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

लेकिन इसके पहले कि मैं कुछ कहूं, यह अच्छा होगा कि हम अपनी बुनियादी स्थापनाओं को ठीक कर लें। चीन की नयी समाज व्यवस्था के बारे में इस तरह के किसी सन्देह को दिल में जगह देने के पहले हमें अपने आप से सवाल करना चाहिए कि क्या सचमुच वहाँ की नयी व्यवस्था को विचारों की पाबन्दी लगाने की जरूरत है? क्या उसे आत्म-रक्षा के लिए इसकी जरूरत है? अगर नहीं तो फिर किसलिए? क्या वहाँ पर लोग भूखे हैं, नंगे हैं, बेकार हैं? दुखी और परेशान हैं? क्या वहाँ चोरी डकैती और भिखमंगई का बोलबाला है? क्या वहाँ जरायम बढ़ रहे हैं? ये सवाल इसलिए करना जरूरी है कि आखिरकार भूख या ग़रीबी या बेकारी या चोरी या भीख मागना या वेश्यावृत्ति ये सब एक अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था के ही द्योतक तो हैं? एक ऐसी समाज व्यवस्था के जो मुट्ठी भर लोगों के स्वार्थ के लिए विशाल जन समाज को उस हालत में रखता है? क्या यह बात झूठ है? मैं तो समझता हूँ कि यही चीजें वह कसौटी हैं जिस पर किसी समाज व्यवस्था को कस कर यह कहा जा सकता है कि वह सामाजिक न्याय की बुनियाद पर खड़ी है या अन्याय की। मोटी बात और तत्व की बात यह है कि सामाजिक अन्याय की बुनियाद पर खड़ी हुई समाज व्यवस्था को ही विचारों पर पाबन्दी लगाने की जरूरत होती है क्योंकि ऐसा किये बग़ैर वह अपने आप को बचा ही नहीं सकती। जनता के रोष का ज्वालामुखी फटने न पाये, इसी के लिए विचारों पर पाबन्दी लगाने की जरूरत होती है। इसलिए चाहे चीन की बात हो, चाहे रूस की, चाहे दुनिया के किसी और देश की, अगर विचारों की पाबन्दी का अभियोग लगाया जा रहा हो तो सबसे पहले हमें वहाँ के समाज में ऊपर गिनाये गये कोढ़ों की तलाश करनी चाहिए। और अगर यह बात सही है कि वहाँ पर लोग सुखी हैं सन्तुष्ट हैं और भूख, ग़रीबी, वेश्यावृत्ति आदि समाज

के कोढ़ दूर कर दिये गये हैं या बहुत हद तक दूर कर दिये गये हैं तो हमें इस विचारों की पाबन्दी वाली बात को फ़ौरन न मान लेना चाहिए। तब यह हो सकता है कि हम किसी और ही चीज़ को विचारों की पाबन्दी समझ रहे हों। लोगों के मुस्कराते हुए प्रसन्न चेहरे और उनका अपने काम में उल्लास पाना, इन चीज़ों का कोई मेल विचारों की पाबन्दी से नहीं बैठता। सच बात यह है कि दोनों में ३६ का सम्बन्ध है। या तो यही सच है कि लोग खुश हैं और खुशहाल हैं या यही सच है कि उनके ऊपर विचारों की जकड़बन्दी है और उन्हें दबा कर रक्खा गया है। जहाँ तक मैं समझता हूँ चीन से लौटने वाले किसी व्यक्ति ने यह नहीं बतलाया है कि उसे भूखे, नंगे, बदहाल लोग वहाँ पर मिले। इसकी उल्टी ही बात सबने कही है। यहाँ तक कि वे लोग भी जो विचारों की पाबन्दी का अभियोग लगाते हैं उन्होंने भी इस बात को स्वीकार किया है कि लोग आर्थिक दृष्टि से खुशहाल हैं और चोरी, डकैती वग़ैरह जरायम बड़ी तेज़ी से कम होते जा रहे हैं। तब फिर यह बात क्या है? अगर यह बात सच हो, जैसी कि है, तो फिर नयी सरकार को विचारों की पाबन्दी की जरूरत ही क्या है क्योंकि वह तो यों ही बहुत सुरक्षित है, उसके लिए जनता का प्रेम ही उसकी सबसे बड़ी सुरक्षा है। उससे बड़े और किसी कवच की उसे क्या ज़रूरत है? ऐसी हालत में तो अगर कोई विचारों पर पाबन्दी लगाये तो वह न सिर्फ़ अनावश्यक बल्कि पागलपन की बात होगी। कोई भी समझदार आदमी अपने सबसे सगे दोस्त को ज़ंजीर में बाँध कर नहीं रखे

इस तरह हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि जो लोग विचारों की पाबन्दी की बात करते हैं वे या तो समझ बूझ कर उस नयी व्यवस्था को बदनाम करना चाहते हैं या वाक़ई उन्हें कोई ग़लतफ़हमी है। जहाँ तक समझ बूझकर बदनाम करने वालों की बात है, उनको कोई जवाब नहीं दिया जा सकता। उन्हें तो जीवन की वास्तविकता द्वारा ही झूठा साबित किया जा सकता है और किया जा रहा है। जिनको ग़लतफ़हमी है, उन्हीं के संग विचार विमर्श हो सकता है।

इस जगह पर एक और बात साफ़ कर लेने की जरूरत है कि जनतन्त्र से हम क्या समझते हैं ? क्योंकि आखिर यही तो हमारी कसौटी है। हममें से ज्यादातर लोग काग़जी जनतन्त्र की परम्परा में पले और बढे हैं। हमारी पाठ्य पुस्तकों ने हमको सिखलाया है कि जनतन्त्र मे पूर्ण विचार स्वातन्त्र्य होता है यानी हर आदमी को हर कुछ कहने की, किसी को कुछ भी कहने की आजादी होती है। मैं सफ़ेद को काला बतला सकता हूँ और आप काले को सफ़ेद बतला सकते हैं और बिना इस बात का विवेक किये कि क्या सच है और क्या झूठ, सबको अपने विचारों की पूरी पूरी आजादी होती है और जो बात जिसकी समझ में जैसे आये कह सकता है। मैं नहीं जानता, सिद्धान्त रूप से भी यह स्वच्छन्दतावाद कितने पानी में है लेकिन जहाँ तक व्यवहार की बात है वहाँ तक तो यह काग़ज़ी जनतन्त्र ही है। यह जनतन्त्र है सत्तावानों के लिए जिनके हाथों में अखबार हैं, प्रकाशन गृह हैं, जो सरकार को चलाते हैं और जिनके पास अपने विचारों को फैलाने के सारे साधन हैं। अभिव्यक्ति के सारे माध्यमों पर अपना एकछत्र नियन्त्रण रखकर वे ही इस बात का निर्णय करते हैं कि किन विचारों को हम सामने आने देंगे और किनको नहीं। और इस तरह काग़जी रूप में जनतन्त्र अपनी जगह पर मौजूद होते हुए जनता की ज़िन्दगी, उसकी मुसीबतों और उसके संघर्षों की बातें सामने नहीं आने दी जातीं। उनका गला घोट दिया जाता है। उनकी ख़बरें अख़बार में नहीं निकलतीं, उनकी किताबें नहीं छपतीं। बड़े बड़े पूँजीपतियों की साजिशें उन्हें ख़त्म कर देती हैं। और जहाँ यह चीज मुमकिन नहीं होती या केवल उतने से काम नहीं चलता, वहाँ पर सरकार भी बड़ी मुस्तैदी से लड़ने वाली जनता के ख़िलाफ़ और बडे बड़े थैलीशाहों के हित में हस्तक्षेप करती है। मै यह कोई काल्पनिक या गढी हुई बात नहीं कह रहा हूँ। यह चीज़ पूरे वक्त होती रहती है और तमाम उन देशों में होती है जो अपने जनतन्त्र का बड़ा ढिंढोरा पीटते हैं। हर रोज़ हम अख़बारों का गला घोंटा जाते देखते हैं। हर रोज हमारे सामने किताबें जब्त की जाती हैं और वे लेखक जो जनता के प्रति सच्चे हैं उन्हें ग़रीबी और बदहाली में रहने के लिए मजबूर किया जाता है

और अक्सर जेल की हवा भी खिलायी जाती है जब कि उनका अपराध बस इतना होता है कि वे आज़ादी से अपने विचार लोगों के सामने रखते हैं। लेकिन सरकार की निगाह मे यह एक बहुत बड़ा गुनाह है कि वे अपने समाज के बारे में अच्छी अच्छी मीठी मीठी बातें नहीं कहते और जब देखो तब भूख भूख का रोना लगाये रहते हैं ! साराश यह कि यह कागज़ी जनतन्त्र मुट्ठी भर पैसे वालो के लिए तो पूरी तरह जनतन्त्र है मगर विशाल जनता के लिए भयंकर तानाशाही है—यह बात अलग है कि जब तक पूंजी की व्यवस्था पर ख़ास आंच न आ रही हो तब तक यह तानाशाही अपने नंगे रूप में सामने न आये।

जहाँ तक चीन की जनवादी सरकार का सम्बन्ध है वह दूसरे मामलों ही की तरह इस मामले में भी साफ़ नीति बरतना चाहती है। कथनी कुछ और करनी कुछ का सिद्धान्त उसे नहीं पसन्द है। उससे आप का विरोध भले हो लेकिन आप उस पर पाखंड का दोष नहीं लगा सकते। चेयरमैन माओ ने बहुत समझ बूझ कर नयी राज्यव्यवस्था को जनता की लोकशाही कहा है। जिसका मतलब है कि वह जनता के लिए जनतन्त्र है और जनता के दुश्मनों के लिए डिक्टेटरशिप। साफ़ बात है, अटकलबाज़ी की कोई गुंजाइश नहीं है।

अब आइए हम देखें कि व्यवहार में इसका क्या रूप होता है। पहले आइए हम अख़बारों को लें और उसके बाद हम नयी सरकार की साहित्य और कला सम्बन्धी नीति के बारे में बात करेंगे।

नये चीन की पत्रकारिता से हमारा सम्बन्ध एक अकेले शांघाई डेली न्यूज़ के ज़रिये था क्योंकि वहाँ पर अँग्रेजी में निकलने वाला वही एक अख़बार है। वह हमें रोज़ देखने को मिलता था और मैं बिला हिचक इस बात को स्वीकार करूंगा कि उस पत्र का स्वाद हमारे पत्रों से बहुत भिन्न था। ख़बरें देने का उनका तरीक़ा हमारे तरीक़े से बहुत अलग था। अन्तर्राष्ट्रीय ख़बरें भी उसमें कम ही थीं और जो थीं वह एक ख़ास तरह की थीं। अक्सर उसमें यही ख़बरें थीं कि चीन में कहाँ कहाँ से, कौन कौन से सरकारी और व्यापारिक शिष्टमण्डल आये और कृषि में कहाँ पर किसने कौन सी नयी खोज की,

भूमि सुधार आन्दोलन कैसी प्रगति कर रहा है, आदि आदि। फिर उसमें सोवियत यूनियन और पूर्वी योरप के जनवादी देशों की सफलताओं की ख़बरें रहती थी, उन्होंने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में क्या नयी प्रगति की। 'पश्चिमी जनतन्त्रों' के बारे में ज्यादातर ख़बरें यही होती थीं कि कहाँ पर शान्ति का प्रदर्शन हुआ या जनता ने अपनी ज़िन्दगी को सुधारने के लिए कहाँ कहाँ कौन कौन से संघर्ष किये। उस सब को देखकर हमने अपनी कसौटी के मुताबिक यह ज़रूर महसूस किया कि अन्तर्राष्ट्रीय ख़बरें काफ़ी नहीं हैं। इसीलिए जब पीपुल्स डेली और ता कुंग पाओ के सम्पादकीय विभाग के कुछ लोग पीकिंग होटल में हमारे पास आये तो हमने उनसे बहुत देर तक दिल खोल कर बातें कीं। और इस बातचीत के सिलसिले में मैंने उनसे कहा कि आपका अख़बार पढकर हमारी ऐसी धारणा बनती है कि आप अन्तर्राष्ट्रीय खबरें काफ़ी नहीं देते और कुछ लोग उसका यह मतलब लगा सकते हैं कि चीन की सरकार अपनी जनता को अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के बारे में अँधेरे में रखना चाहती है। मैंने बग़ैर किसी कलई मुलम्मे के साफ़ साफ़ अपनी बात कही। मगर हमारे चीनी दोस्त उससे ज़रा भी नहीं नाराज़ हुए। बल्कि उन्हें खुशी ही हुई कि हमने निस्संकोच उनके सामने अपने दिल का चोर रख दिया। हमारी शंकाओं को दूर करने के सिलसिले में उन्होंने हमको बतलाया कि ख़बरों का चयन वे किस दृष्टि से करते हैं। सबसे पहले तो उन्होंने हमसे यह कहा कि हम किसी एक अख़बार के आधार पर अपनी राय न बनायें और उन दिनों के शांघाई डेली न्यूज़ पर तो और भी नहीं क्योंकि उन दिनों तो सारा अख़बार शान्ति सम्मेलन की खबरों से ही भरा रहता था। इसके अलावा यह भी बात है कि तमाम अखबारों ने एक तरह से कहिए कि आपस में काम बाँट लिया है, कोई अख़बार किसी ख़ास चीज़ पर ज़ोर देता है तो कोई दूसरा अख़बार किसी दूसरी चीज़ पर। मिसाल के लिए विद्यार्थी एक अख़बार निकालते हैं जिसमें सबसे ज्यादा जगह अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं को दी जाती है। इसी सिलसिले में उन्होंने हमको यह बतलाया कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के मुख पत्र पीपुल्स डेली का चौथा पेज

अन्तर्राष्ट्रीय खबरों का पेज होता है। और मैं उनकी इस बात को पूरी तरह मानने के लिए तैयार था कि ऐसा ही होता होगा क्योंकि अपने दुभाषियों और दूसरे लोगों से बातचीत के सिलसिले में मैंने यह बात लक्ष्य कर ली थी कि यद्यपि वे लोग यहाँ-वहाँ की तमाम छोटी-मोटी खबरों का वैसा खजाना न थे जैसा कि हम लोग थे मगर तब भी जहाँ तक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का पता होने की बात है, उसका पता वे अच्छी तरह रखते थे और इस मामले में अगर वे हमसे अच्छे नहीं तो बुरे भी न थे। मिसाल के लिए उन्हें इस बात का पूरा पता था कि हिन्दुस्तान की वैदेशिक नीति का विकास कैसे और किस दिशा में हो रहा है और इस सिलसिले में पण्डित नेहरू के ताजे से ताजे बयान की भी खबर उनको थी। मेरे दोस्त भगवत शरण उपाध्याय ने मुझको बतलाया कि उन्हें बड़ा ताज्जुब हुआ जब शुन चुन में एक लड़की ने उनको कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी के इन्दौर अधिवेशन में स्वीकृत उस प्रस्ताव की बात बतलायी जिसमें पाँच बड़ी शक्तियों के बीच शान्ति-संधि की बात थी। चीन आने की अफ़रातफ़री में यह खबर उनकी नज़र से छूट गयी थी और उसकी बाबत उस चीनी लड़की से ही उनको मालूम हुआ। यह घटना बहुत छोटी है मगर असलियत का कुछ अन्दाज़ा ज़रूर देती है। और सिर्फ़ इस घटना की ही बात नहीं है बल्कि तमाम लोगों से हमारी जो जो राजनीतिक गप-शप होती थी, उसका मेरे मन पर यह संस्कार पड़ा है कि औसत शिक्षित चीनी राजनीतिक रूप से अपने हिन्दुस्तानी दोस्त के मुक़ाबले में ज्यादा जानकार है। यह ज़रूर है कि खबरों के टिट बिट उसे उतने नहीं मालूम थे। सच पूछिए तो इस मामले में उसका हमसे कोई मुक़ाबला ही नहीं। इसकी वजह भी है। उसके अखबार यह चीज़ उसे नहीं देते जब कि हमारे अखबार हमको यही मुख्य आहार देते हैं। मगर देखने की चीज़ यह है कि ऐसी-वैसी, बेजोड़, बेमेल खबरों से राजनीतिक शिक्षा नहीं हुआ करती बल्कि कुशिक्षा ही फैलती है।

इस सिलसिले में मैं एक आम जानकारी की बात बतलाना चाहता हूं जो कि उन चीनी पत्रकार दोस्तों ने मुझे बतलायी। उन्होंने हमको बतलाया कि

अन्तर्राष्ट्रीय खबरें देने के लिए उनको यह तरीका ज्यादा अच्छा मालूम होता है कि रोज रोज एक दूसरे की विरोधी खबरों की भीड़ में अपने पाठक को भुलवा देने के बदले कुछ समय रुक कर बाकायदा उस विषय पर सम्यक् रूप से लेख दिया जाय। कुछ समय रुकना इसलिए जरूरी है ताकि वह घटना विशेष कोई दिशा पकड़ ले और विचारों की सफाई भी हो जाय। मुझको भी लगा कि वाकई यह तरीका ज्यादा अच्छा है क्योंकि इससे सचमुच पढ़ने वालों की राजनीतिक शिक्षा होती है। मैं खूब समझ रहा हूँ कि इस नयी व्यवस्था को अविश्वास की दृष्टि से देखने वाला आदमी इस पर आपत्ति कर सकता है और कह सकता है कि इसका तो मतलब यह है कि आप लोगों के नाक में नकेल डाल कर उनको एक खास तरह से सोचने के लिए मजबूर करते हैं। उसका तो ख़ैर कोई इलाज नहीं है। जिन लोगों ने चीन की जिन्दगी को नयी रोशनी दी है वे अपने आप को इस बात के लिए काफ़ी योग्य समझते हैं कि अपनी जनता को उचित राजनीतिक शिक्षा भी दे सकें। इस मामले में उनसे झगड़ा मोल लेने से कुछ हासिल न होगा क्योंकि वह मज़बूत ज़मीन पर खड़े हुए हैं। उनको अपने ऊपर विश्वास है क्योंकि सत्य उनका आधार होता है। और जनता को उनके ऊपर विश्वास है क्योंकि वे ही उनकी नयी और सुखी जिन्दगी के मेमार भी हैं। इस तरह बड़े मजे में दोनों की निभती चली जा रही है और हममें से कुछ लोग चाहे चीनी जनता के भविष्य के बारे में खुद चीनियों से भी ज्यादा विक्षुब्ध और चिन्तित होने का अभिनय करें, मैंने तो यही देखा कि लोग बड़े खुश हैं और किसी भी किस्म की कोई कड़ुवाहट उनके मन में नहीं है। दूसरी अहम बात जो हमारे चीनी दोस्तों ने कही वह खबरों के चुनाव के बारे में थी। अच्छा तो खबरों का चुनाव किया जाता है कि कौन सी खबरें दी जायं और कौन सी न दी जायं! जी हां, किया जाता है और आप इस क़दर चौंकते क्यों हैं? जिसे अख़बारी दुनिया का कुछ भी हालचाल मालूम है वह जानता है कि हमारे यहाँ भी ख़बरों का चुनाव होता है, जहाँ हम लोग अख़बारों की आज़ादी का इतना ढिंढोरा पीटते हैं। कौन सी ख़बर उभार कर देनी है और किसकी हत्या करनी है, किस ख़बर को मोटी-

मोटी सुर्खी लगाकर दिया जायगा और किसे छोटे-छोटे टाइप की हेडिंग लगाकर कहीं किसी ऐसे-वैसे कोने में डाल दिया जायगा, किसी खास वक्त किस आन्दोलन को बढ़ा-चढा कर दिखलाया जायगा और किसकी कोई भी खबर न दी जायगी—इन सारी बातो में प्रेस के मालिकों का डडा चलता है और समय-समय पर उनके आदेश निकलते हैं जिनका पालन करना जरूरी होता है। कहने का मतलब यह कि खबरों का चुनाव यहाँ भी होता है और खबरों का चुनाव वहाँ भी होता है। मगर दोनों में एक बहुत बडा अन्तर है। वह अन्तर यह है कि हमारे यहाँ खबरो का चुनाव बड़े-बड़े पूँजीशाहों की दृष्टि से होता है और उनके यहाँ साधारण जनता की दृष्टि से। हमारे यहाँ यह एक बड़ी खबर समझी जाती है अगर राजराजेश्वरी एलिजबेथ द्वितीय की परम चहेती ईरानी बिल्ली को जुकाम हो जाय या राजराजेश्वर श्रीमान आगा खाँ के अश्व की एक टॉग में मोच आ जाय लेकिन जब दुनिया भर के साठ करोड़ आदमी यानी हर तीन आदमी में से एक आदमी युद्ध के विरोध में और शान्ति के पक्ष में अपना मत देता है तो उनके नजदीक यह कोई खबर नहीं होती जिसे दिया जाना चाहिए! लेकिन कोई जरूरी नहीं है कि सब लोग इसका अनुकरण करें। लिहाजा बहुत सी खबरें जो हमको वहाँ पर पढने को मिलती हैं, हमारे अखबारों में कभी देखने को नहीं मिलतीं। उसी तरह बहुत सी खबरें जो हमको अपने यहाँ पढ़ने को मिलती हैं, उनके यहाँ नही मिलतीं। कुल मिलाकर इसका नतीजा यह होता है कि अखबारों का फ्लेवर, उनका मजा बदल जाता है। इसलिए जब हम उनके अखबार को पढ़ते हैं तो हमें कुछ अटपटा सा मालूम होता है। लेकिन उसके आधार पर हमें झट कोई निष्कर्ष न निकालना चाहिए।

तो भी एक बात की सफ़ाई करना मैं बहुत जरूरी समझता हूँ। मैं यह नहीं चाहता कि कोई मेरी बात से यह नतीजा निकाले कि चीन में अखबारों को कुछ भी छापने की आजादी है। इसी 'कुछ भी' में चोर छिपा हुआ है। चीन में जहां खुलेआम सरकार की आलोचना करने की पूरी आजादी है, घूसखोरी, भ्रष्टाचार वगैरह के बारे में बड़े से बड़े

और छोटे से छोटे व्यक्ति पर सप्रमाण अभियोग लगाने की आज़ादी है, वहाँ किसी अखबार को, मिसाल के लिए, इस बात की आज़ादी नहीं है कि वह च्यांग काई शेक के पुनरागमन के लिए आन्दोलन करे या यह कहे कि अमरीकनों को आकर चीन को आज़ाद कर देना चाहिए या यह कि लड़ाई जनता के भले की चीज होती है, उसके बगैर दुनिया का काम नहीं चल सकता। यह बात साफ़ तरीके से समझने की जरूरत है कि वहाँ दुनिया को गुलाम बनाकर रखने वाली शक्तियों को अपने पुनर्जीवन के लिए काम करने की आज़ादी नहीं है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि चीन में ऐसे तत्व हैं। लेकिन अगर ऐसे तत्व हों भी तो उन्हें मनमानी वाही-तबाही बकने की खुली छूट न होगी, उन्हें अपना वह पुराना गाना न गाने दिया जायगा जिसे चीनी जनता ने सदियों सुना है और इतनी तकलीफ और दर्द के साथ सुना है। अगर आप इसे विचारों की पाबन्दी कहना चाहें तो कह सकते हैं। लेकिन जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक का सम्बन्ध है, वह समझता है कि विचारों की पाबन्दी कहने से एक खास मतलब होता है और वह यह कि मुट्ठी भर लोग अपने स्वार्थ के लिए विशाल बहुमत को दबाये बैठे हों और जहाँ तक चीन की बात है वहाँ पर विचारों की अगर कोई रोक है भी तो वह रोक विशाल बहुमत ने अपनी नयी जिन्दगी की हिफ़ाजत के लिए, अपनी सफल जनक्रांति से उसने जो कुछ पाया है उसकी रक्षा के लिए कुछ थोड़े से लोगों पर लगायी है। अगर स्थिति का यह बुनियादी फ़र्क जनतन्त्र की शास्त्रीय बात करने वाले आदमी के नज़दीक कोई फ़र्क नहीं पैदा करती तो शायद उस ज़बान के पैदा होने में अभी देर है जो हम दोनों की समझ में आ सके! बहरहाल इस बीच अन्धकार की शक्तियों से चीनी जनतन्त्र की रक्षा करनी है और वह जनतन्त्र की किताबी बात करने वाले आदमी के सन्तोष के लिए अपने गले में फांसी नहीं लगा सकता। बात वह व्यक्ति शायद ठीक कहता है। अखबारों को पूरी आज़ादी नहीं है। कोई नहीं कहता कि है। वह तो ज्यादा से ज्यादा आज़ादी है जो कि आज की स्थिति में सम्भव है जब कि चारों तरफ़ लड़ाई झगड़ा है और पुरानी साम्राज्यवादी दुनिया की ताक़तें नयी वास्तविकता के साथ समझौता नहीं कर सकी हैं और उनका बस चले

तो आज चीन की इस जनता की सरकार का अस्तित्व मिटा दें। इसलिए जनता को अपनी पहरेदारी करनी पड़ती है और जनता की सरकार चीनी जनता और उसकी नयी जिन्दगी की रक्षा के लिए वचन-बद्ध है। कहने का आशय यह कि आज की परिस्थिति में पूर्ण आजादी सम्भव नहीं है और जो है वह किसी तरह कम नहीं कही जा सकती। उस सम्पूर्ण बल्कि ऐब्सोल्यूट आजादी के लिए उस दिन का इन्तजार करना पड़ेगा जब कि देशों के आपसी झगड़े नहीं रहेंगे। वह चीज किसी अफ़ीमची का सपना नहीं है लेकिन हाँ अभी उसके आने में थोड़ी देर है और चीन की जनता इतिहास में अपनी यथार्थ-वादिता के लिए, अपनी व्यावहारिक बुद्धिमत्ता के लिए मशहूर है। मौजूदा हालत में विचारों की पाबन्दी में इस चीज़ का कहना कि लोगों को अपनी तकलीफ़ और मुसीबत की कहानी खुले आम कहने की आजादी न होती और उन्हें इस बात के लिए मजबूर किया जाना कि वे अपनी सारी तकलीफ़ों और ज़ख्मों को चुपचाप सहें और मुँह न खोलें। लेकिन जैसा कि मैंने देखा, नये चीन में यह बात ज़रा भी नहीं है। मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि सभी अखबारों में सम्पादक के नाम चिट्ठी का स्तम्भ रहता है और उसमें सभी घूस और भ्रष्टाचार वगैरह की बातों को, जो उन्हें मालूम हैं जनता के सामने ला सकते हैं। हमारे यहाँ भी सम्पादक के नाम चिट्ठी का स्तम्भ रहता है मगर वह एक दिखाऊ चीज़ होती है। उसमें आप सिर्फ़ वैसी बातों का ज़िक्र कर सकते हैं जिनका आपकी रोज़मर्रा ज़िन्दगी से कोई ख़ास लगाव नहीं है या कम से कम ऐसा लगाव नहीं है कि उसकी चर्चा करने से व्यवस्था पर, सरकारी प्रबन्ध पर किसी तरह की कोई आँच आती हो। आप नृतत्व की बात करना चाहें तो करें, ग्रहों-नक्षत्रों की बात करना चाहें तो करें लेकिन अगर आपको पुलिस के कोतवाल या शहर के कलक्टर की किसी ज्यादती के बारे में कुछ कहना है तो वह मुमकिन नहीं है क्योंकि उसके लिए खुद कलक्टर साहब की इजाज़त लेनी जरूरी है। चीन में यह सम्पादक के नाम चिट्ठी वाक़ई जनता के हाथ का एक हथियार है जिसका वह इस्तेमाल करती है और अपराधियों का पर्दाफ़ाश करती है। सरकार न सिर्फ़ इस चीज़ को होने देती है बल्कि प्रोत्साहित करती है।

इस चीज़ के बारे में मैंने सरकार की एक आशा देखी है कि इन जनता की चिट्ठियों को ज्यादा से ज्यादा प्रोत्साहित करना चाहिए। क्योंकि इन्हीं के ज़रिये जनता सही मानी में, सजीव रूप में, रोज़ के काम काज में अपने जनतान्त्रिक अधिकारों का, अपनी प्रभुता का इस्तेमाल कर सकती है। मैं नहीं समझता कि हमारे यहाँ इस चीज़ की आज़ादी है। बहरहाल हमारे यहाँ इस चीज़ की आज़ादी हो या न हो, जो सरकार ऐसी बात को प्रोत्साहित करती हो, उस पर कम से कम यह दोष तो नहीं लगाया जा सकता कि वह अपनी जनता को गुलाम बना कर रक्खे हुए है।

तो यह तो अखबारों की आज़ादी की बात हुई।

साहित्य और कला के बारे में भी बहुत कुछ ऐसी ही बातें कही जाती हैं। और इस मामले में भी मैं ऐसा सोचता हूँ कि जो लोग नयी राज सत्ता को जान-बूझ कर बदनाम करने के लिए ऐसा नहीं कहते वे भी वहाँ की स्थिति का पूरा जायज़ा लिये बग़ैर जल्दबाज़ी से किसी निर्णय पर पहुँच जाने की भूल तो करते ही हैं। बात यह होती है कि हम अपने यहाँ की हालतों को नये चीन पर लागू करने की कोशिश करते हैं और स्पष्ट ही यह बात न तो बहुत ठीक ही है और न उनके संग न्याय ही करती है।

अन्य क्षेत्रों ही की तरह साहित्य और कला की सृष्टि के क्षेत्र में भी नया चीन मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तों को चीन की हालतों पर लागू करने की कोशिश करता है। इस सम्बन्ध में चेयरमैन माओ की सीखें नये चीन के लेखक और कलाकार का मार्ग-प्रदर्शन करती हैं। यहाँ पर इस बात को अच्छी तरह समझ लेने की ज़रूरत है कि साहित्य गोष्ठियों और सांस्कृतिक पत्रों में खुली बहसों के ज़रिये कला और साहित्य को एक स्पष्ट सामाजिक दृष्टि देने की कोशिश की जाती है। वे इस जगह से शुरू करते हैं कि कला और साहित्य का सृजन मूलतः एक सामाजिक क्रिया है और उसका सम्बन्ध अकेले कलाकार या लेखक से नहीं है। जनता भी अपने को उसके संग लगा हुआ महसूस करती है और इसलिए जानने की कोशिश करती है कि जो कुछ लिखा या चित्रित किया जा रहा है वह सच है या नहीं, उसमें उसकी ज़िन्दगी

का अंश है कि नहीं और अगर है तो कितना। कला और साहित्य को देश की, जनता की सेवा करनी चाहिए—यह सबक़ उन्होंने बहुत पहले सीखा था और वक्त गुज़रने के साथ-साथ, उनका क्रान्तिकारी अनुभव दिल में गहरे उतरने के साथ-साथ उनका वह सबक़ भी और पक्का होता चला गया है। अपने महान लेखक लू शुन के पदाकों में चलते हुए उन्होंने अपनी क़लम को जनता के लिए ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल करना सीखा। यह सही है कि यह सबक़ उनको अपने ड्राइंग रूम में नहीं मिल गया। इसको उन्हें सीखना पड़ा लड़ाई के मैदानों में, एक निर्मम युद्ध के धुएं और कीचड़ और बारूद की तेज़ गन्ध में। इसको उन्हें सीखना पड़ा फ़रारी की ज़िन्दगी में, छापेमार लड़ाइयों में। और इसकी क़ीमत भी उन्हें कम नहीं चुकानी पड़ी। बहुत से नौजवान कवियों और कहानीकारों और बुद्धिजीवियों और काठ पर खुदाई करने वाले चित्रकारों की जानें गयीं। उन्हें गोली से उड़ाया गया, फाँसी पर लटकाया गया, ज़िन्दा दफ़न किया गया। उन्हें कन्सेन्ट्रेशन कैम्पों में बन्द किया गया और एक से एक अमानुषिक यातनाएँ दी गयीं। सचमुच उन्होंने अपने विश्वासों के लिए मँहगी क़ीमत चुकायी। मैंने उनके नौजवान मज़बूत चेहरे शांघाई में लू शुन के पुराने घर में लगे चित्रों में देखे। मैंने ऐसे लगभग बीस लेखकों और कलाकारों के चित्र देखे। वे लू शुन के निजी दोस्त थे। वे अपनी चीज़ें लेकर लू शुन के पास सलाह और इसलाह के लिए आते थे। और लू शुन उन्हें सलाह देते थे और दो सलाहें जो लू शुन ने उन्हें दीं, वे थीं कि जनता के साथ रहो और अपने विश्वासों पर अडिग रहो। अपने गुरु के आदेश को मानते हुए उन नौजवान लेखकों और कलाकारों ने अपनी जानें दे दीं मगर कहीं कमज़ोरी न दिखलायी। जिस लक्ष्य के लिए उन्होंने जानें दीं उसे आज पा लिया गया है। उनका जीवन-लक्ष्य विजयी हुआ है। यह उस साहित्यिक सिद्धान्त की भी विजय है जिसे चेयरमैन माओ ने इतनी खूबी के साथ और इतने संक्षेप में बतलाया है। तो फिर क्या अचरज कि आज जब कि चीन में जन सत्ता स्थापित हो गयी है, जनता के लेखक, पहले ही की तरह अपनी लेखनी और तूलिका का उपयोग समाज की सेवा के लिए करते हैं और उसी तीक्ष्ण दायित्वबोध से करते हैं जैसे

कि पहले करते थे। यह दायित्व बोध लेखक में तभी पैदा हो सकता है जब वह अपनी मेहनतकश जनता के भविष्य और उसके संघर्षों के साथ अपने को बिलकुल मिला दे। दूसरों की समझ में वह चीज़ कभी नहीं आ सकती क्योंकि उनको उस अनुभूति का स्पर्श ही नहीं लगा है। और यही असल बात है। हमारे बहुत से दोस्त नये चीन के साहित्य को सिर्फ़ इसलिए सन्देह की दृष्टि से देखते हैं कि उसके अन्दर देश और समाज की तात्कालिक आवश्यकताओं की गहरी चेतना रहती है। यह सन्देह इसलिए पैदा होता है कि हमारे यहाँ समाज व्यवस्था और व्यक्ति में परम्परागत संघर्ष की स्थिति है इसलिए हमको यह समझने में अड़चन होती है कि ऐसी कोई दूसरी स्थिति भी हो सकती है जिसमें समाज व्यवस्था और व्यक्ति में आपसी संघर्ष न हो और दोनों एक दूसरे के पूरक बन गये हों। यही वजह है कि हमारे बहुत से लेखकों में अपने अन्दर उस भराव की कमी मिलती है जो कि चीन के लेखक के लिए एक अनायास चीज़ है, क्योंकि वह सदा जनता के साथ रहा है और आज भी है। इसलिए हमको अपनी मनःस्थिति दूसरे पर लादने की कोशिश न करके दूसरे की मन स्थिति को भी समझने की कोशिश करनी चाहिए। हममें से ज्यादातर लोग कुछ अपने पुराने संस्कारों के कारण और कुछ परिस्थितियों के चक्र में पड़ कर विशाल जन समूह से अलग अलग अपनी जिन्दगी गुज़ारते हैं और धीरे धीरे अपने इसी अलगाव को प्यार करने लग जाते हैं और तब उन्हें यह बात बहुत तकलीफ़देह मालूम होने लगती है कि उन्हें अपने व्यक्ति को समाज हित के ऊपर रख कर नहीं देखना चाहिए। चूँकि वे सदा अपनी ही नन्हीं-नन्हीं खुशियों और पीड़ाओं के गीत गाते रहे हैं इसलिए उन्हें किसी का यह कहना कि दुनिया आप की इन छोटी-मोटी खुशियों और पीड़ाओं से ज्यादा बड़ी है और आपको उसकी तरफ़ से बेख़बर नहीं होना चाहिए, एक धृष्ठता मालूम होती है। अपनी खुशियों और पीड़ाओं के गीत गाने में स्वतः कोई बुराई नहीं है लेकिन बुराई वहाँ पैदा हो जाती है जब कि लेखक की समग्र दृष्टि अपनी ही छोटी सी दुनिया में खोकर रह जाती है और लेखक दिशाहारा होकर अपनी पीड़ा को समाज

की बड़ी पीड़ा से अलग कर के देखने लग जाना है। तभी व्यक्तिवाद आकर लेखक को पूरी तरह अपना दास बना लेता है। हम सभी में कमोबेश यही धारणा बद्धमूल है। इसलिए चीन के नये साहित्य को देखकर हम फ़ौरन यह सोचने लगते हैं कि उस समाज व्यवस्था में निश्चय ही कोई बुनियादी गड़बड़ी है जिसमें सब लेखक अपने लेखन कार्य द्वारा भी समाज की सेवा को ही अपना सबसे बड़ा श्रेय मानते हैं। वे अपने दिल में कहते हैं : भला ऐसा कभी हो भी सकता है! ग़ैर मुमकिन! जिस लेखक को देखो वही भूमि सुधार के बारे में, कारख़ानों की पैदावार बढ़ाने के बारे में समाज सुधार की समस्याओं पर, कोरिया में लड़नेवाले स्वयंसेवकों के बारे में लिख रहा है! ऐसा कैसे हो सकता है, ज़रूर कोई न कोई है जो उनसे कहता रहता है कि इन्हीं के बारे में लिखो! लेखक तो सभी जगह एक से होते हैं। चीनी लेखक किसी ख़ास साँचे के गढ़े हुए लोग थोड़े ही होंगे। तब फिर यह कैसे होता है कि सब के मन में इस तरह की रूखी-सूखी बातों की ही प्रतिक्रिया होती है? निश्चय ही उनके संग ज़ोर-जबर्दस्ती चलती होगी! हमारा यह दोस्त इसी तरह तर्क करता है। मगर वह इस बात को भूल जाता है कि चीन में एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रान्ति हुई है और उसके लिए जो संघर्ष हुआ वह स्वयं लेखक के समीप एक सृजनात्मक प्रक्रिया रही है जिसने पुराने साँचों को तोड़ कर नये साँचे में लेखक के मन को गढ़ा है। यह कोई चीन की ख़ास बात नहीं है। वैसी ही परिस्थितियों में सब जगह वही बात होती है। हमारे देश में भी होगी और हो रही है, उसी अनुपात में जिस अनुपात में देश सामाजिक क्रान्ति की ओर बढ़ रहा है। और जिस दिन यह चीज़ अच्छी तरह जड़ पकड़ लेगी और जनता को अपने संग बहाकर ले जाना शुरू कर देगी, उस दिन हमारे बहुत से दोस्त जिनकी समझ में आज यह नहीं आता कि यह बात किस तरह होती है, इसी बात को बुद्धि से और बुद्धि से भी ज़्यादा अपनी भावना से, अपनी सहज चेतना से समझ लेंगे। इतिहास जानता है कि जिस वक़्त देशभक्ति की पुकार आयी, हमारे लेखक भी पीछे नहीं रहे और उन्होंने नागरिक और लेखक दोनों ही रूपों में अपने देश की आज़ादी के लिए हथियार उठाया। दुर्भाग्यवश यह चीज़ थोड़े-

थोड़े दिनों के लिए ही होकर रह गयी लेकिन मैं समझता हूँ कि अपना इतना संस्कार वह अवश्य हमारे मन पर छोड़ गयी है कि हम समझ सकें कि देश के लिए अपने आप को समर्पित कर देने में कैसा उल्लास मिलता है।

इसी चीज़ से चीन के लेखक को प्रेरणा मिलती है और जो चीज़ हमको कुछ अजीब मालूम होती है वही उसकी नैसर्गिक जीवन प्रणाली है। दूसरे रूप में वह अपनी कल्पना ही नहीं कर सकता। अगर वह देश की तात्कालिक माँगों को लेकर लिखता है तो इसलिए नहीं कि उसे इसके लिए मजबूर किया जाता है बल्कि इसलिए कि अपनी आज़ादी की लड़ाई से यही उसने सीखा है। यह चीज़ उसकी भावना का अंग बन गयी है, उसकी अनुभूति का साञ्चा ही वैसा है। मैं यह भी समझता हूँ कि यह चीज आसानी से उसे न मिली होगी। कला की सामाजिक उपयोगिता के सिद्धान्त को अपने दैनन्दिन अभ्यास में उतारने के पहले उसे अपने आपसे भी काफ़ी संघर्ष करना पड़ा होगा। लेकिन अब उसने ऐसा कर लिया है और एक सचेत मन से अपनाया हुआ सिद्धान्त सृष्टि की प्रक्रिया का अंग बन गया है। इस बात को समझ लेने के बाद ही हमें इस सम्बन्ध में कुछ कहना चाहिए क्योंकि अगर हम गैर-ज़िम्मेदार तरीके से अपने चीनी भाइयों पर विचारों की जकड़बन्दी का आरोप लगाने लगे तो शायद वे भी अपने को हम पर यह आरोप लगाने का अधिकारी समझें कि असल पाबंदी तो हमारे लेखन पर है, कि हमने थैलीशाहों की सरकार के हाथ अपनी आत्मा बेच दी है और क़सम खायी है कि किसी सामाजिक विषय पर नहीं लिखेंगे क्योंकि सामाजिक विषय बारूद के ढेर के समान होते हैं, कि हमने कायरों की तरह विचारों की उस जकड़बन्दी को क़बूल कर लिया है जो हमें आदेश देती है कि देखो, चाँद और तारे और मधुमास और ऐसी ही चीज़ों के बारे में लिखना, इनके अलावा अगर किसी चीज़ पर क़लम उठायी तो तुम्हारी ख़ैर नहीं। हाँ, अपने मन की पीड़ा को फुसलाने के लिए भी तुम गीत गा सकते हो मगर देखना ऐसी किसी चीज़ के बारे में भूल कर भी न लिखना जिससे यह ध्वनि निकलती हो कि समाज के मौजूदा ढाँचे में किसी बड़े परिवर्तन की जरूरत है।

अगर कोई चाहे तो ऐसी बात कह सकता है। एक मसल है कि जो लोग खुद शीशे के मकानों में रहते हों, उन्हें दूसरों पर ढेलेबाजी नहीं करनी चाहिए! बहरहाल तत्व की बात यह है कि हम लोग सामाजिक स्थिति की निष्क्रिय प्रतिक्रिया के अनुसार लिखते हैं और वहाँ का लेखक इस बात को समझने लगा है कि लेखक और कलाकार को सामाजिक जीवन में सक्रिय हिस्सा लेना चाहिए। यह दृष्टिकोण के एक बुनियादी अन्तर की बात है। यह अन्तर किसी सरकारी फरमान के मातहत नहीं आया है बल्कि आपस में खुले आम बहस-मुबाहिसे के ज़रिये और लेखक और कलाकार के अपने अनुभव और अपनी प्रेरणा से आया है। इसलिए विचारों की पाबन्दी का हल्ला मचाना बिलकुल पोच बात है। यह तो बिलकुल वैसी ही बात हुई जैसे कोई यह कहे कि मुझको मार-मार कर मार्क्सवादी बनाया गया है या मैं यह कहूँ कि आपको मार-मार कर कोई दूसरा वादी बनाया गया है। अगर किसी चीज़ में मेरा विश्वास है तो है, बस बात ख़तम हुई। यह सारा सवाल लेखक और जनता या लेखक और समाज के सम्बन्ध का है। इस सवाल में और गहरे उतरने पर इस बात पर थोड़ा मतभेद हो सकता है कि दोनों के सम्बन्ध की इस राशि मे व्यक्ति पर कितना ज़ोर देना चाहिए। मिसाल के लिए कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि अब तक व्यक्ति पर जितना ज़ोर दिया जाता रहा है, उससे ज़्यादा की ज़रूरत है। इसका जवाब चीनी लेखक यह कहकर दे सकता है कि काम्य तो मेरा भी वही है लेकिन क्या किया जाय अभी उसका वक़्त नहीं आया है और पहले दुनिया में शान्ति क़ायम हो लेने दो तब फिर उसकी फ़िक्र कर लेंगे, अभी ज़्यादा ज़रूरी सवाल सामने हैं। इन दो दृष्टिकोणों से इस सवाल को देखा जा सकता है। मगर वह ख़ैर जो भी हो, यह सौंदर्य शास्त्र का सवाल है और विचारों की पाबन्दी के हल्ले से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने एक भोज में चाइनीज़-लिटरेचर के सम्पादक से पूछा कि कोई स्वस्थ प्रेम का उपन्यास आपके यहाँ से क्यों नहीं आ रहा है? सामन्तशाही ख़तम कर दी गयी। सामन्ती विवाह उखाड़ फेंके गये। औरत आज़ाद हो गयी। दो नौजवान प्रेमियों के लिए मिलन अब

सम्भव हो गया तो फिर नयी परिस्थितियों के अनुरूप, नयी ज़िन्दगी को साहित्य में उतारते हुए प्रेम की कहानियां और प्रेम का एक महान एपिक क्यों नहीं आ रहा है। मैं तो समझता हूँ कि आना चाहिए। श्री चुन चान ये ने मेरी बात से अपनी सहमति जतलायी लेकिन मुस्कराते हुए कहा: पहली चीज़ें पहले ! पर मैं उनकी बात से अंशतः ही सहमत हो सका क्योंकि मेरा ख्याल है कि ऐसे मामलों में कैलेण्डर बहुत सहायक नहीं होता और कौनसी चीज पहले आनी चाहिये और कौन सी चीज़ बाद को, इसका निर्णय इतना आसान नहीं होता। लेकिन इससे ज़्यादा मैं कुछ नहीं कह सकता था क्योंकि इस तरह की चीज़ें भी तो आदेश देकर नहीं लिखवायी जा सकतीं, वे भी तो अन्त: प्रेरणा पर निर्भर हैं ? इस तरह का भी कुछ साहित्य आ रहा है और वह अच्छा साहित्य है मगर परिमाण में कम है और कम इसलिए नहीं है कि लेखक के लिए इस तरह की चीजें लिखने पर रोक है बल्कि इसलिए कि लेखकों को खुद दूसरी चीजें ज़्यादा ज़रूरी मालूम पड़ती हैं। हो सकता है हममें से कुछ लोग इस बात से सहमत न हों मगर इसको समझने में तो कोई मुश्किल न होनी चाहिए। चीन में हम लोग इतना काफ़ी नहीं रहे कि नये चीनी साहित्य के पूरे विस्तार को और उसकी सारी बातों को पूरी तरह समझ सके लेकिन वहां के लेखकों और कलाकारों से हमारी जो बातें हुईं उनसे इतना साफ़ था कि वे लोग सुखी हैं और किसी तरह की शिकायत उनको नहीं है। सरकार अगर रोक लगाती है तो सिर्फ़ समाज-विरोधी और देश हित-विरोधी चीज़ों पर। उनके अलावा बाकी सारी चीजों के लिए लेखक लिखने के लिए आज़ाद हैं और बहुत से गैर-सरकारी प्राइवेट प्रकाशक हैं जो उनकी रचनाएं छापते हैं। इस सिलसिले में एक बात और है जिसकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाता और वह यह है कि जैसे जैसे पाठक समाज सचेत होता जाता है वैसे वैसे वह लेखकों के सामने अपनी मांगें रखने लगता है और धीरे धीरे जनता खुद कला और साहित्य पर अपना एक व्यापक नियन्त्रण रखने लग जाती है। साहित्य की सृष्टि में यह एक नया तत्त्व है। मैं नहीं जानता, हो सकता है शुरू शुरू में यह चीज़ लेखक और कलाकार को कुछ बुरी लगे मगर इसका

कोई इलाज नहीं है। जनता के हाथ में जब सत्ता आती है तो वह अपने प्यारे लेखकों और कलाकारों से कुछ माग न करे, यह सम्भव नहीं है।

यह किसकी मुहब्बत है ? किससे ?

भई, मुहब्बत तो उसी की जो उसकी कीमत चुका सके, जो अपने खून की सुर्खी गुलाब को दे सके।

सभी जगह अपने देश से ऐसी ही मुहब्बत करने वाले होते हैं जो गुलामी और जिल्लत का दाग़ अपने कलेजे के खून से धोते हैं।

चीन मे ऐसे बहादुरों की फ़सल और गहगहाकर फली क्योंकि इन्कलाबी तहरीक के हल ने खूब ही अच्छी, खूब ही गहरी जुताई की और उनकी इस जाँबाज़ मुहब्बत का ही यह सिला है कि आज चीन को नयी ज़िन्दगी गुलाब के सुर्ख फूल की तरह फूल रही है और यह भी सच है कि उसकी जड़ों को जिन शहीदों ने सींचा है उनमें अगर एक नामवर है तो एक हज़ार गुमनाम हैं। यह सही है कि आज जब हम नये चीन जाते हैं तो वहाँ हमें एक जादू की दुनिया की तहें सी खुलती नज़र आती हैं लेकिन सच बात यह है कि उस जादू की कहानी अधूरी रहेगी अगर हम उन शहीदों की याद न करें

जिन्होंने आज के इसी नये चीन के अपने साहसी स्वपन के लिए हँसते-हँसते अपनी कुर्बानी दी। मैं उस कहानी के विस्तार में न जाऊँगा, जा सकूँगा भी नहीं—वह एक एपिक कहानी है, अमर गाथा है। वीरता के वे ऐसे शिखर हैं जिन्हें वही छू सकते हैं जो अपने मन की सारी खोट को जलाकर पूरे दिल-ओ-जान से आज़ादी को प्यार करते हैं। यह नहीं कि ऐसे वीर किसी एक ही ज़मीन पर होते हैं और दूसरी पर नहीं होते। ऐसी कोई बात नहीं है। होते सब जगह हैं। इस मामले में कोई देश किसी दूसरे से उन्नीस नहीं होता, बात सारी जुताई की होती है, कि जुताई अच्छी गहरी हुई या हल की नोक बस ऊपर ही ऊपर मिट्टी को छूकर लौट आयी!

इतिहास साक्षी है कि तीस साल के क्रान्तिकारी संग्राम में चीन की ज़मीन खूब ही अच्छी जुती, खूब पोढ़े हाथों से खूब भीतर तक···और दूसरी गति भी तो न थी। लड़ाई कठिन थी, ताक़तवर दुश्मन से थी और अगर लक्ष्य को पाना था तो कुर्बानी करनी थी और सब को करनी थी और दिल खोलकर करनी थी·····

और फिर तो उनकी कुर्बानियों के आगे एक बार दुनिया में सब की कुर्बानियाँ माँद पड़ गयीं। बहादुरी का कोई जौहर उनसे अछूता नहीं बचा, और एक बार यह बात साबित हो गयी कि आदमी के साहस और सकल्प के आगे फिर कोई बाधा-विघ्न नहीं रह जाते, ऊँचे ऊँचे पहाड़ भी सिर झुकाने पर मजबूर हो जाते हैं और अंधी तूफानी नदियाँ भी शर्मीली कुलवधू की तरह एक ओर हटकर आदमी को रास्ता दे देती हैं। रहीं यातनाएँ—सो निकलीं तो एक से एक भीषण, एक से एक लोमहर्षक यातनाएँ लेकिन उनको झेलने के लिए हिम्मत पहले से आदमी के सीने में मौजूद थी, इम्तहान ज्यों-ज्यों कड़ा होता गया त्यों-त्यो आदमी ने अपने भीतर ताक़त के नये-नये सोते खोले और शरीर को चाहे कितनी ही भयानक यातना क्यों न दी गयी ओंठ जो एक बार सी गये तो सी गये और फिर उन सिले हुए ओंठों से जान भले निकल गयी पर उफ़ न निकली। मगर उस सब की कहानी मुझे यहाँ नहीं कहनी है, न लांग मार्च की, न टाट्टू दरिया के पार उतरने की, न उन अभियानों को

जिनके आगे चंगेज और तैमूर और हैनिबल और नेपोलियन के अभियान फीके पड़ जाते हैं। उनकी कहानी कहना अपने आप में एक बड़ा काम है। मैं तो बस उन वीरों की स्मृति को अपनी श्रद्धा के दो फूल चढ़ाना चाहता हूँ।

और मैं समझता हूँ यह बात बिलकुल आकस्मिक न थी (और अगर आकस्मिक थी तो इसे बहुत पवित्र संयोग कहना चाहिए) कि नये चीन की यात्रा का प्रारंभ हमने कैंटन में शहीदों की समाधि से किया। अंग्रेजी में उस जगह का नाम 'येलोफ्लावर नॉल' यानी पीले फूलोंवाला टीला है। यह सन् ११ के मांचू सम्राट्-विरोधी क्रान्ति के ७२ शहीदों की समाधि है। चारों ओर काफी ऊँची-ऊँची पहाड़ियों से घिरी हुई यह जगह बड़ी शान्त है।

नानकिंग में हमने वह पहाड़ी भी देखी जहाँ एक लाख शहीदों का स्मारक है। चियाङ् काइ शेक ने अपने बाइस साल के आतंक राज में अकेली इस एक पहाड़ी पर एक लाख चीनी देश-भक्तों को मौत के घाट उतारा। उनमें कम्युनिस्ट भी थे और गैर-कम्युनिस्ट भी मगर सभी देशभक्त थे, सभी अपनी मातृभूमि को अमरीकी गुलामी की लानत से आजाद देखना चाहते थे और यही उनका गुनाह था।

शहीदों की समाधि पर फूल बरसने की कल्पना दुनिया भर में सभी जगह एक-सी है। शायद इसीलिए नानकिंग की इस एक लाख वीरों की समाधि का नाम 'बरसते फूलों की बारहदरी' है। वहाँ सफेद संगमर्मर का स्मारक बना हुआ है जिसके द्वार पर चेयरमैन माओ की हस्तलिपि में लिखा है : युग युग जियें हमारे वीर शहीद जो मरकर भी अमर हैं।

चीन की एक लाख वीरतम सन्तानों ने हँसते-हँसते यहाँ पर अपने प्राणों की बलि दी। यहाँ सारी जगह, जमीन पर, हवा में उन्हीं की कुर्बानी रची हुई है। इस जमीन पर उनके मजबूत, निडर क़दम घूमे होंगे और यहाँ की हवा में उनके इन्कलाबी नारे और इन्कलाबी गाने आधी-रात के सर्द सीने को चीरते हुए और प्रत्यूष के झुटपुटे में भोर का आवाहन करते हुए गूँजे होंगे, बार बार, बार बार, न जाने कितनी बार और हर बार एक से ही तरुण कंठों से जो कभी काँपे नहीं।

हंगामे के डर से रात ही के वक़्त गिरफ्तार क्रान्तिकारियों को जेल से यहाँ ले आया जाता था, मोटर से, रिक्शे से, दूसरी सवारियों से, और यहाँ ले आकर गोली मार दी जाती थी। हमने वह अँधेरी गुफा भी देखी जिसमें भेड़-बकरियों की तरह उन्हें ठूसा गया होगा और फिर इतमीनान से दो-दो चार-चार छः-छः की टोलियों में बाहर निकाल कर गोली मारी गयी होगी। वे खास जगहें भी हमें दिखायी गयीं जहाँ खड़े करके उन बहादुरों को गोली मारी गयी थी। वे जगहें भी हमने देखीं जहाँ पर वे लोग दफ़न हैं, उनकी कब्रें जो उन्हीं के हाथों से खुदवायी गयीं और खुद जाने पर जिनके अन्दर बैठे-बैठे या खड़े-खड़े ही उन्हें गोली मार दी गयी—लाश ढोने की जहमत भी बची और वो बहादुर भी जिस तरह अपने सर पर क़फ़न बाँधकर इस लड़ाई में आये थे उसी तरह अपनी ही खोदी हुई क़ब्र में हमेशा के लिए सो गये! जिस तरह उनको हलाक किया गया है और जिस तरह वो ढेर से एक-एक क़ब्र में गड़े हुए हैं, उन सब शहीदों की शिनाख्त भी न की जा सकी। बहरहाल, हमारे गाइड ने अपनी तक़रीर में बतलाया कि उन शहीदों में युन दाइ-यिंग, तेङ्-चुङ्-शिया, लो तेङ्-शियान और शेन चिन्-चुआन जैसे बड़े-बड़े नेता भी थे।

युन दाइ-यिंग, ४ मई १६१६ के आन्दोलन के नेताओं में से एक था। वह चीनी कम्युनिस्ट यूथ लीग के प्रचार विभाग का अध्यक्ष और 'चीनी नौजवान' का सम्पादक था। चीन के नौजवानों के बीच उसकी रचनाओं का बड़ा सम्मान था। वह क्वान्तुङ् प्रदेश की व्हाम्पो फ़ौजी अकादमी का प्रधान राजनीतिक शिक्षक था। जब च्यांङ् ने १६२७ में क्रान्ति के साथ विश्वासघात किया, युन शांघाई चला गया और वहाँ मज़दूरों में काम करने लगा। १६३० में वह शांघाई में ही पकड़ा गया और नानकिंग जेल ले आया गया। पहले उसे कोई पहचान नहीं सका कि वह कौन है। पूरे एक साल तक वह जेल में रहा और दुश्मन उसे पहचान नहीं सके। हाँ, बहुत से कैदी जरूर थे जो उसे जानते थे।...बाद में किसी ने दुश्मन को बतला दिया कि वह कौन है और उसे गोली मार दी गयी।

तेङ्-चुङ्-शिया १६२२ से ही चीनी मज़दूरों का नेतृत्व कर रहा था।

वह १६३३ में शांघाई में पकड़ा गया। उसे फ्रेंच कन्सेशन में पकड़ा गया था। (शाघाई अंतर्राष्ट्रीय बन्दरगाह था) उसे फ्रेंच कन्सेशन से बाहर अपने यहाँ ले जाने के लिए च्चियाङ् ने बहुत बड़ी रकम फ्रेंच सरकार को दी थी। मरते समय तेङ् चुङ्-शिया के आखिरी शब्द थे : हमें बराबर अपने उद्योग में लगे रहना चाहिए। अंतिम विजय हमारी ही होगी।

लो तेङ्-शियान ने १६२५-२७ की क्रान्ति में मज़दूरों का नेतृत्व किया था। १६३१ मे, जापानियों के आक्रमण के बाद वह उत्तर-पूर्वी प्रदेश में छापेमार आंदोलन का नेतृत्व करने लगा। वह बहुत बार पकड़ा गया मगर हर बार भाग निकला। आखरी बार १६३३ मे पकड़ा गया और यहीं इसी पहाड़ी पर गोली से उड़ाया गया।

शेन चिन-चुआन ने नानकिंग में पार्टी का संगठन किया था। वह १६२८ में पकड़ा गया और भयंकर यातनाओं के बाद यहाँ ले आकर उसे गोली मार दी गयी। मरते समय उसने कहा : अगर तुम मुझ जैसे एक आदमी को मारते हो तो समझ लो कि दस और उठ खड़े होंगे, दस को मारोगे तो सौ उठ खड़े होंगे, हज़ार लाख करोड़....

हममें से बहुत से लोगों ने वहाँ के थोड़े थोड़े पत्थर चुन लिये। वे सच-मुच पूजा के योग्य पत्थर थे। और कितना कुछ न देखा होगा उन पत्थरों ने—नीचता के कैसे अतल गर्त, पराक्रम के कैसे उत्तुंग शिखर। काश कि उन पत्थरों के ज़बान होती तो शायद वे अलिफ़लैला की तरह हर रोज़ एक नयी और चमत्कारों से भरी हुई कहानी सुना सकते। कहने को वे हैं पत्थर, उनके सीने पत्थर के हैं मगर उनमें दर्द है और कुछ अजब नहीं कि यह कहानी जो आप सुन रहे हैं उसमें उन्हीं का दर्द बोल रहा हो। आखिर को मेरी मेज़ पर रक्खे हुए ये पत्थर कुछ तो बोलते ही होंगे!

शांघाई में नये चीनी साहित्य के पितामह, चीन के गोर्की लू शुन के घर पर, जहाँ वे दस बरस तक रहे थे और जिसकी देखरेख अब सरकार करती है,

मैंने ऐसे बीस-बाइस नौजवान लेखकों और कलाकारों के चित्र देखे जिन्होंने अपने विश्वासों की खातिर शहादत का जाम पिया।

शांघाई में ही मजदूरों के सांस्कृतिक भवन में एक बड़ा-सा विभाग क्रान्ति के इतिहास का है। वहीं घूमकर, गाइड की मदद से, तसवीरों तसवीरों में ही इन्कलाबी लड़ाई का पूरा इतिहास समझा जा सकता है। हमारे संग तो खैर समझानेवाला था (समझानेवाले की जरूरत इसलिए और भी पड़ती है कि वहाँ सब कुछ चीनी में ही होता है, अंग्रेजी की कहीं जरा-सी भी गुजर नहीं है) लेकिन समझानेवाला अगर न भी हो तब भी कुछ बात नहीं बिगड़ती। ये तसवीरें तो खुद बोलती हैं—क्रान्तिकारियों के फोटो, सड़कों पर के प्रदर्शन, पुलिस की गोलियाँ, लाशें बिछी हुईं; हड़तालों की तसवीरें; यहाँ वहाँ नौजवान माओ, जू दे, चाउ एन लाइ और दूसरे किसान-मजदूर नेताओं के दो एक ग्रुप-फोटो और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रथम अखिल देशीय सम्मेलन की तसवीर, जो सम्मेलन गुप्त रूप से एक नाव पर हुआ था।

इन तसवीरों के अलावा वहाँ पर और भी तमाम इन्कलाबी souvenir रखे हुए हैं जैसे शहीदों की इस्तेमालिया चीजें, किताब, नोटबुक, क़लम, पेंसिल, रिवालवर, गोली से छिदे, खून के धब्बे-लगे कपड़े, सीने से लगाकर रक्खे हुए, गोली से छिदे पार्टी-कार्ड, और और भी चीजें इसी तरह की।

लगी हुई तसवीरों में कई तसवीरें शांघाई के मशहूर मजदूर नेता वांग शाओ-हो की हैं। उन तसवीरों में एक तसवीर उस वक्त की है जब वांग को वध-भूमि ले जाया जा रहा है। वाह, क्या मस्त, हिम्मतवर चेहरा है। उसके चेहरे पर डर की कहीं एक हलकी सी भी छाया नहीं है। मृत्युभय को उसने जीत लिया है। उसको कैद करने वाले कुओमिन्तांग सिपाहियों के चेहरे अलबत्ता बुरी तरह डरे और सहमे हुए हैं। बात अजीब है मगर सच है कि क़ातिल मक़तूल से डरे हुए हैं। मक़तूल तो गा रहा है एक आज़ाद पंछी की तरह जो पहाड़ों की ऊँचाइयों पर उड़ान भरता है और जिसकी रूह पर किसी क़ातिल का मनहूस साया नहीं पड़ सकता। अपनी उस ऊँचाई से वह औरों की बनिस्बत कुछ पहले ही चीन की नयी सुबह की पौ

फटते देख रहा होगा, तभी तो उसके चेहरे पर उल्लास है, गर्व है, विश्वास है। वांग को १६४८ में वध किया गया और १६४६ में शांघाई में नयी सुबह हुई।

वांग की तसवीर की बग़ल में वह आखिरी खत है जो वांग ने अपने मा-बाप को लिखा था। उस खत में वांग ने लिखा था :

तुमने मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया, इसके लिए मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। अब मेरी जिन्दगी खत्म होने जा रही है। पीछे मुड़कर देखने पर मुझे लगता है मैं कह सकता हूँ कि मैंने जैसे जीने की कोशिश की, वैसे ही जिया—एक मर्द की तरह। मेरे मरने का शोक मत करना। यह सच है कि मेरे संग बहुत अन्याय हुआ है मगर मैं बहुत अच्छी मौत मर रहा हूँ। मेरी बेटी चिन् से और उस बच्चे से, जिसका अभी जन्म नहीं हुआ, कहना कि उनका बाप कैसे और किस चीज़ की खातिर इस दुनिया मे रुखसत हो रहा है। मेरी मृत्यु स्वयं मेरे लिए एक घटना हो सकती है मगर पूरे देश के लिए उसका भला क्या महत्व है ? दुनिया मे अभी लाखों करोड़ों नेक और इन्साफपसन्द लोग बाकी हैं। वे मेरी मौत का बदला लेंगे।

ये वही शब्द हैं जो कय्यूर के शहीदों ने कहे थे और गेब्रियल पेरी ने कहे थे और जूलियस फूचिक ने कहे थे और इधर आकर रोज़ेनबर्ग दंपति ने कहे। कय्यूर के शहीद हिन्दुस्तानी थे, गेब्रियल पेरी फ्रांसीसी था, जूलियस फूचिक चेक था, रोज़ेनबर्ग दंपति अमेरिकन थे, वांग चीनी था—मगर ज़बान सबकी एक थी। वही दृप्त स्वाभिमान, वही अजेय साहस, भविष्य में वही अडिग विश्वास, जीवन का वही मृत्युंजय उल्लास।

उन्हीं दीवारों पर वांग के उन शब्दों की तरह चेयरमैन माओ के ये शब्द भी कहीं टँके हुए थे, क्रान्ति के नेता के शब्द जिसने अपनी ही आकृति के हज़ारों लाखों वीर गढ़े :

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और चीनी जनता कभी डरायी न जा सकी, खतम न की जा सकी। हर बार वह फिर से उठकर खड़ी हो गयी। उसने अपने शरीर पर लगे हुए खून के दागों को पोंछा, अपने साथियों की लाशों को

दफ़न किया और फिर से अपने मोर्चे पर डट गयी।...

हमारे चीनी मेज़बानों ने जहाँ हमें बहुत-से बहुमूल्य उपहार दिये, वहाँ उन्होंने एक जो सबसे अनमोल उपहार दिया, वह यही शहीदों की समाधि के पत्थर हैं और यह कैसे हो सकता है कि चीन की नयी ज़िन्दगी की बात करते वक्त कोई इन शहीदों को जिन्होंने इस दिन के लिए ही जान दी अपनी मुहब्बत के दो सुर्ख़ फूल न चढ़ाये।

हांगचो हमारी यात्रा का अंतिम नगर था। चीन में हमको आये छः हफ्ते पूरे हो रहे थे और अब हमें घर लौटना था। लौटते समय अब रास्ते में कैंटन ही एक अकेला बड़ा शहर था। हममें से कई लोग यात्रा के आरम्भ में ही कैंटन में रह लिये थे, इसलिए अब हम दो बड़ी टोलियों में बँट गये, एक तो वे जो हांगचो से कैंटन जाने वाले थे और वहाँ रुकने वाले थे और दूसरे वे जो हांगचो से कैंटन होते हुए, बिना वहाँ रुके, सीधे शुनचुन पहुँचने वाले थे। हुसैन, रोहिणी, नादिम, मैं और कलकत्ते के तीन और दोस्त इसी बाद वाली टोली में थे।

हांगचो में हम लोग तीन दिन रहे। हांगचो प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से चीन की सबसे खूबसूरत जगहों में से है। यहाँ की चाय और रेशम बहुत मशहूर हैं। यहाँ एक बड़ी खूबसूरत झील है, कई बौद्ध विहार हैं और एक पहाड़ की गुफाओं में बुद्ध की छोटी बड़ी एक हजार से ऊपर मूर्तियाँ हैं। मैं उन विहारों में भी गया और गुफाओं की भी कई बुद्ध मूर्तियाँ देखीं

(सबको देखने का समय ही कहाँ था !) और मैंने लक्ष्य किया कि गुफाओं वाली बुद्ध प्रतिमाओं पर स्पष्ट भारतीय प्रभाव मिलता है, आँख-नाक-ओंठ की बनावट में, वेशभूषा में।

ख़ैर, तो कहने का मतलब यह कि तीन दिन हम लोग इधर-उधर काफ़ी घूमे, विहारों में कन्दराओं में, दियासलाई जला जलाकर बुद्ध-प्रतिमाएँ देखीं, झील की सैर की, रंग-बिरंगी सोनमछलियों की क्रीडा देखी और भारी भारी दिल लिये हुए विदाई के लिए अपने आपको तैयार करने लगे।

उसी रोज़ सबेरे दस बजे हमको रवाना होना था। हम लोग बैठे नाश्ता कर रहे थे। मुझे ठीक याद नहीं कि हमारी मेज़ पर कौन कौन थे। छः सात लोग थे, सबकी याद नहीं, हाँ इतनों की याद अच्छी तरह है—मलाबार के वार्की शान्तिस्थान, रोहिणी भाटे, वाँग शाओ मेइ और मैं। वाँग शाओ मेइ कैंटन से ही हमारे साथ थी और स्वभावतः हमारे बीच दोस्ती के कुछ संबंध पैदा हो गये थे। और अब दो ही चार रोज़ का यह संग-साथ था, फिर कौन कहाँ कौन कहाँ—

लिहाज़ा सबके दिल भारी थे, सबकी तबियत उदास थी मगर सब अपने आपको बहुत बश्शाश दिखलाना चाहते थे, कि जैसे उनको अपने ग़मे-दौराँ के आगे इस ग़मे-जानाँ के लिए फ़ुर्सत ही न हो (कैसी सेंटिमेंटल बात ह, इसमें क्या धरा है !) मगर सच्चाई यह थी कि सबका मन उदास था क्योंकि सब इंसान थे और दिल को दिल से राह होती है और मुहब्बत झट मुहब्बत को पहचान लेती है (पता नहीं किस तारबर्क़ी से !) और दोस्तों की जुदाई सभी के दिलों पर भारी गुजरती है। लिहाज़ा औरत मर्द, हिन्दुस्तानी-चीनी सभी मन ही मन उदास थे मगर चाहते नहीं थे कि दूसरे पर यह बात ज़ाहिर हो।

ऐसी ही वह फ़िज़ा थी जिसमें हम लोग बैठे चाय पी रहे थे। आज वाग शाओ मेइ और रोज़ से कहीं ज़्यादा ख़ामोश थी। उसकी ख़ामोशी और भी ज़्यादा इसलिए अखर रही थी कि यों वह बहुत ही खुशदिल और हाज़िर-जवाब और काफ़ी बात करनेवाली लड़की थी। यूनिवर्सिटी में अंग्रेजी भाषा

के कोर्स में थर्ड इयर की छात्रा थी। उसका वह लड़कों-जैसा, सुर्ख गोरा गोल हँसता हुआ चेहरा इस वक्त भी मेरी आँख के सामने है।

वही वाग जो और रोज़ चिड़ियों की तरह पूरे वक्त चहकती रहती थी, आज एकदम खामोश थी और नजर झुकाये चाय पी रही थी। और आज ही नहीं इधर दो तीन रोज़ से यानी जब से हम लोग हांगचो पहुँचे थे, वह ऐसी ही अनमनी थी। और आज तो उसका हाल और भी बुरा था और वह इस तरह नजर मेज़ पर गड़ाये हुए थी जैसे आँखें ऊपर उठाने में उसे डर मालूम होता हो।

जी तो हमारा भी भारी था लेकिन तब भी हम लोगों ने कुछ हलकी-फुलकी बातों से उसको हिलाने-डुलाने की बहुत कोशिश की मगर कोई नतीजा न निकला, उसकी उदासी न टूटी।

फिर शायद शान्तिस्थान ने अपनी जानकारी के आधार पर कहीं यह कह दिया कि मिस वांग की उदासी का कारण शायद यह है कि उन्हें अब यहीं हाँगचो मे रुकने का आदेश हुआ है और वह कैंटन तक भी हमारे संग न जायेंगी—

शान्तिस्थान अपनी बात पूरी भी न कर पाये थे कि जैसे उनकी बात ने वांग शाओ मेइ की दुखती रग छू ली, उसके संयम का बाँध टूट गया, उसने मेज़ के नीचे सर लटकाये-लटकाये, हाथों से अपना चेहरा ढाँप लिया और फूट फूट कर रोने लगी।

मै नहीं जानता दूसरों पर उसका क्या असर हुआ, अपनी बात जानता हूँ। मेरी आँखों में भी आँसू छलछला आये, गले में जैसे कोई बड़ा-सा डला आकर फँस गया। उसके बाद मुझसे एक भी कौर मुँह में नहीं दिया गया और मैं उठकर बाहर आ गया और खुले में टहलने लगा। बड़ी प्यारी सुनहली धूप छिटकी हुई थी। प्रकृति में यों कहीं कोई उदासी न थी मगर फिर भी हवा में जैसे कुछ एक अजीब-सा भारीपन था। मैं पूरे वक्त अकेले टहलता रहा और मेरी आँखें छलछलायी रहीं। फिर जैसे खुद ही से आँखें चुराता मैं बस में आ बैठा और स्टेशन पहुँच गया।

हाँग्चो से शुनचुन छिशालिम घंटे का सफ़र था। काम कुछ था नहीं, बस अपने केबिन में बैठे बैठे इत्मीनान से सेब छीलना और खाना, कुछ पढ़ना, कुछ गपशप, कुछ सोना और नाश्ते या खाने का वक्त होने पर डाइनिंग कार में पहुँचकर भोजन की सेवा में अपने आपको समर्पित कर देना! लिहाजा फुर्सत होने से मन और भागने लगा, इस बात का पता लगाने को कि आखिर हम क्यों एक नये और अजनबी देश के लिए, जिससे हमारी मुलाकात अभी कुल महीने डेढ़ महीने की थी ऐसा सगापन महसूस करने लगे कि उससे अलग होते समय हमारा मन इतना भारी हुआ जा रहा था? आते समय खुशियों का जो उबाल था, जो उछलता-कूदता धूम मचाता संगीत था वही अब वापस जाते समय एक उदास मींड़ में बदल गया था! ऐसा क्यों? हम सब जरूरत से ज्यादा कच्चे हों, सेंटिमेंटल हों, तो वह भी बात नहीं। हम कोई बच्चे न थे, न हम और न हमारे चीनी मेज़बान। हम सभी अच्छे खासे वयस्क लोग थे, दुनिया की आग में काफ़ी तपे हुए। तब फिर यह कैसे हुआ? यह उदासी, यह रह रहकर मन का मसोस उठना, यह गले मिल-मिलकर बच्चों की तरह रोना? सुननेवाला कहेगा, क्या बकवास लगायी है, ऐसा भी कहीं होता है! ये तो पागलों के ढंग हैं! कहीं एक पूरी जिन्दगी में जाकर ऐसे ताल्लुक़ात बनते हैं और आप हैं कि आपको महीने भर में ही उनसे ऐसी मुहब्बत हो गयी अब इसका क्या इलाज है, यह तो जैसे आप फ़रज करके अपना दिल फेंकने निकले थे!

काश कि यही बात होती! मगर असलियत यह है कि हम कुछ भी फ़रज करके नहीं निकले थे, बस इतना था कि जाने के पहले हमने अपने दिलों के दरवाजे नहीं बंद कर लिये थे कि वहाँ की कोई हवा हमको न लगे।

मुझे याद आती है पीकिंग के रेलवे स्टेशन की वह विदाई। ठट के ठट लोग आये थे हमको विदा करने। मगर मैं उसकी बात नहीं करना चाहता। मैं तो बात करना चाहता हूँ उस उदासी की जो सबके चेहरे पर थी, किसी के कम किसी के ज्यादा। स्वागत करनेवाली भीड़ का मूड विदा करनेवाली भीड़ के मूड में बदल गया था। लोग अपने विशेष परिचितों से हाथ मिला

रहे थे गले मिल रहे थे और जब अभ्रभेदी नारों के बीच रेल चली तो बहुत से लोग रूमालें हिलाते हुए रेल के संग संग दौड़ने लगे और (गो इसे भी पागलपन ही कहा जायगा !) नृत्य अकादमी की प्रिंसिपल मिस ताइ और उनकी कुछ शिष्याएँ कम से कम फर्लाङ्ग भर तक रेल के साथ दौड़ीं।

मगर रेल छूटने के पहले एक और पागलपन हुआ और उसके अपराधी प्रसिद्ध चीनी विद्वान, बावनवर्षीय प्रोफेसर चेन थे ! प्रोफेसर चेन पहले चीनी शिष्टमंडल के संग हिन्दुस्तान आ भी चुके हैं और बहुत पहले कुओमिन्ताङ् के जमाने में कलकत्ते में चीनी दूतावास में रहकर काम भी कर चुके हैं। मुझे वह बहुत ही नेक और मीठे स्वभाव के आदमी मालूम हुए।

हाँ तो वह भी हमको विदा करने के लिए स्टेशन आये थे और गुमसुम खड़े थे, जो कि उनके लिए कुछ असाधारण-सी ही बात थी क्योंकि वैसे वह काफी बातूनी आदमी हैं। इसीलिए उनकी ओर ध्यान विशेष रूप से गया भी। तो जब तक तो दूर दूर से विदा देने की बात थी, सब ठीक रहा, वह थोड़ा थोड़ा मुसकराते भी रहे लेकिन जब कुछ से गले मिलने की बारी आयी तो वह अपने ऊपर और जब्र न कर सके और रो पड़े, बेसाख्ता रो पड़े ! यह भी पागलपन ही था मगर क्या किया जाय, जब तक इन्सान में इन्सानियत बाकी है, यह पागलपन भी वह करेगा क्योंकि इतनी नर्मी उसके अंदर रहेगी ही कि कभी हँस सके, कभी उदास हो सके। सच बात यह है कि व्यावसायिकता की दुनिया में इन्सान की भावुकता, अनुभूतिशीलता दिनोंदिन मरती चली जाती है यहाँ तक कि फिर वह न तो दिल खोलकर हँस पाता है न दिल खोलकर रो पाता है। मगर जहाँ आदमी को फिर से इन्सान बनने का मौका मिल रहा है उसकी यह सलाहियत लौट रही है। इसलिए इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं है कि दोस्तों से बिछड़ने पर हमारा दिल भारी हो आये या दो चार आसू हमारी आँखों में छलक आयें।

और सबसे मार्मिक दृश्य तो था वह जब हम शुन चुन के रेलवे स्टेशन से सीमा की ओर बढ़ रहे थे। मैं जा न रहा हूँ कि जो खुद उस चीज के बीच से नहीं गुजरा वह मेरी बात का यकीन नहीं करेगा या यों कहूँ कि उस क्षण की

हमारी अनुभूति की तीव्रता को नहीं समझेगा, मगर तो भी मैं कहना चाहता हूँ कि उस वक्त हम सभी ऐसे चले जा रहे थे जैसे किसी के मातम में जा रहे हों, खुद अपने मातम में जा रहे हों।

हम हिन्दोस्तानी थे, बर्मी थे, इन्दोनेशियन थे। चीनी और हम सब एकदम खामोश, सिर झुकाये चले जा रहे थे। कोई किसी से नहीं बोल रहा था। कोई किसी से आँख नहीं मिला रहा था। मैं अपनी बात जानता हूँ कि मुझे अपनी तबीयत पर क़ाबू पाने में कितनी मुशकिल हो रही थी। किसी के सामने रोना अच्छा थोड़े ही मालूम होता है मगर कोई करे भी क्या जब आँसू पूरे वक्त भीतर ही भीतर घुमड़ रहे हों, बाहर आने के लिए मचल रहे हों। इसीलिए कोई किसी से नहीं बोल रहा था; सब जैसे अपने आँसुओं से, अपने गले में फँसे हुए पत्थर से लड रहे हों। सबके दिल में बात एक ही थी मगर कोई किसी से बात नहीं करता था। बाहर जाने वाले पीछे मुड़ मुड़कर उन पहाड़ियों को, उन खेतों को, रेलवे स्टेशन की उस इमारत को देख लेते थे। थोड़ा आगे जाते थे और फिर पीछे मुड़कर देख लेते थे जैसे चाह रहे हों कि आँखों से ही उठाकर उस पवित्र भूमि का एक टुकड़ा अपने दिल में रख लें! इसीलिए यह बार बार पीछे मुड़ मुड़कर देखना, वह अजीब-सा संभ्रम। औरों की तो नहीं पर मैं अपनी बात जानता हूँ। मेरे मन की तो ठीक वही स्थिति थी। मैं सीमा की ओर बढ़ा जा रहा था सही मगर कोई जबर्दस्त चुम्बक था जो मुझे पूरे वक्त पीछे को घसीट रहा था। अब मन के धागों को अलग करता ो उस चुम्बक के पीछे कई चीजें खड़ी नजर आती हैं। सबसे बड़ी चीज, सीधी-सच्ची निष्कपट दोस्ती जो झट दूसरे आदमी को अपना बना लेती है। फिर कुछ यह भाव कि यह सफल जनक्रान्ति की भूमि है जहाँ से हम जा रहे हैं और अंत में यह कि शायद अपने इन प्यारे प्यारे दोस्तों से यही हमारा आखिरी मिलना हो। ये सारी बातें मिलकर मन की वह अजी ब-सी हालत हो गयी होगी।

मातम का यह जुलूस, सर झुकाये, क़तई खामोश चला जा रहा था और आखिर को मंजिल आ ही गयी। सरहद के पास पहुँचकर हम लोग बड़ी

देर तक यों ही खामोश खड़े रहे जैसे पैर नये चीन की ज़मीन को छोड़ना ही न चाहते हों। मगर आखिरकार हांगकांग तरफ़ के सरहदी संतरियों ने जल्दी मचानी शुरू की और हमें वह आखिरी कदम उठाने के लिए अपने आपको तैयार करना ही पड़ा, वह एक कदम जो हमें उस नयी दुनिया से वापस अपनी पुरानी दुनिया में ढकेल देनेवाला क़दम था।

कोई यक़ीन करे चाहे न करे, यह सच है कि जिस वक्त हम लोग अपने चीनी भाइयों से गले मिले उस वक्त हर शख्स रो रहा था। हमें सरहद तक विदा करने सिर्फ़ मर्द आये थे (लड़कियाँ तो सब कैंटन में और उसके पहले ही उतार ली गयी थीं) और वे कोई कच्चे मर्द न थे, उन्होंने पता नहीं कितना कुछ देखा होगा, सहा होगा और एक आँसू उनकी आँख से न गिरा होगा लेकिन दोस्तों को विदा करते समय की बात और थी और सब रो रहे थे और कोई अपने इन आँसुओं के लिए शर्मिन्दा न था।

वाकई किसी ने कितनी अनमोल बात कही है—दिल को दिल से राह होती है। जहाँ निश्छल स्नेह होता है वहीं दोस्त बिछुड़ने पर इस तरह रो सकते हैं अन्यत्र नहीं नहीं नहीं। उनको हमसे प्यार था इसकी गवाही हमारे दिल ने दी। हमको उनसे प्यार था इसकी गवाही उनके दिल ने दी। इसके बाद हमें और कुछ न चाहिए।

'अपनी' दुनिया में आने के साथ हमें एक धक्का लगा ! अभी हम लो वू से हांगकांग जानेवाली गाड़ी में ठीक से बैठ भी न पाये थे कि एक रेलवे कर्मचारी आकर हमें सावधान कर गया कि अपनी चीजें अच्छी तरह संभालकर रखिए क्योंकि यहाँ चोरों-गिरहकटों का कुछ ठिकाना नहीं ! 'गिरहकटों से होशियार' के अंग्रेजी ठप्पे हर जगह लगे हुए थे मगर वह शायद काफ़ी नहीं था, इसलिए हम परदेसियों का खयाल करके एक आदमी आकर हमको आगाह कर गया।

एक सेकंड के लिए हमको सचमुच ऐसा लगा जैसे किसी ने लेकर हमको आसमान से ज़मीन पर ढकेल दिया : दुनिया सचमुच बदल गयी थी। कहाँ तो अभी हम एक ऐसे देश से चले आ रहे थे जहाँ चोरी-चमारी अब शायद नाम को ही रह गयी है और लोग अक्सर अपने घरों में ताला भी नहीं लगाते और खुद हमारी चीजें, घड़ी-कलम-बटुए बगैर किसी निगरानी के लापरवाही से इधर-उधर पड़े रहते थे और कभी किसी की एक पैसे की चीज गड़बड़ नहीं

हुई—कहाँ तो वह देश और कहाँ यह क़दम-क़दम पर मिनट-मिनट पर चोरी।

गाड़ी से बाहर निकले नहीं कि भिखमंगों की फौज आपकी अगवानी के लिए तैयार है। शाम हुई नहीं कि छैले बन-संवरकर बाजारों में घूमने लगे और औरतें बिकने के लिए आ गयीं। यह माजरा क्या है?

यह कुछ माजरा नहीं, सब भूख और ग़रीबी का खेल है। यहाँ भी आप इस राक्षस का वध कर दीजिए, फिर देखिए अगर इनमें से एक भी कोढ बाक़ी बचे।

चीन में जो कुछ देखा है, वह ऐसी-वैसी चीज़ नहीं धरती की करवट है। इसीलिए सभी कुछ बदल गया है। हम अपने यहाँ के बहुत-से नौजवानों को देखते हैं—लड़कों को लड़कियों को—जिनको जिन्दगी में बस एक काम है, बनना-ठनना। पतलून ऐसा पहनो जैसा कोई न पहने हो, जूता ऐसा पहनो जैसा कोई न पहने हो। जैसे लोगों को बस एक यही काम हो—अपने कपड़ों की नुमाइश।

दूसरी बात, झूठी डींग हाँकना। कोई अपनी दौलत की डींग हाँकता है कोई अपने पांडित्य की।

कोई किसी का सगा नहीं। हर आदमी दूसरे की जड़ काटने में लगा है।

वहाँ तसवीर ही कुछ और है।

सभी सीधे-सादे कपड़े पहने काम करते रहते हैं, कपड़ों की नुमाइश की वहाँ भला किसे फ़ुर्सत है? और इतना ज्ञान तो उन्हें है ही कि आदमी अपने कपड़े-लत्ते से नहीं अपने चारित्रिक गुणों से सम्मान पाता है, स्नेह पाता है। इसलिए उन्हीं पर उनकी दृष्टि होती है, कपड़े-लत्ते पर तनिक भी नहीं। और यह एक दो की नहीं पूरे देश की बात है। पूरे समाज की यही नयी नैतिकता है।

इसी नयी नैतिकता में उनकी क्रान्तिकारी विनयशीलता भी शामिल है, वह विनयशीलता जो उन्हें अपने बारे में कभी भूल से भी एक शब्द नहीं बोलने देती। मैं सच कहता हूँ, आप उस विनय की कल्पना भी नहीं कर सकते। आपको इसी से इस बात का कुछ अंदाज़ा होगा कि अपने सारे सफ़र में हमको

कोई नहीं मिला जिसने इशारे से भी बतलाया हो कि उसका भी नये चीन के निर्माण में कोई हाथ है! हम ऐसे तमाम लोगों से मिले जो आज वहाँ सम्मानित पदों पर हैं और उनके इस सम्मान के पीछे उनकी पुरानी क्रान्तिकारी सेवाएँ ही हैं; लेकिन तो भी क्या मजाल कि कोई वैसी चर्चा जबान पर ले भी आये। हरगिज नहीं! यहाँ तक कि बाहर के आदमी को लगने लगता है कि वे लोग जिन्होंने इंकलाब किया कोई और रहे होंगे और ये लोग जो आज बागडोर सँभाले हुए हैं, कोई और हैं! मगर बात ऐसी नहीं है। बात यह है कि क्रान्ति ने जहाँ उन्हें और भी बहुत कुछ दिया है, विनय का गुण भी बड़ी मात्रा में दिया है।

बहुत-सी बातें हैं जो हमें उनसे सीखनी हैं। हमारे रोजी के, रोटी के, भाषा के, संस्कृति के तमाम सवाल हैं जिन्हें हल करने में हमें चीन से मदद मिल सकती है। इसके अलावा यह भी एक बहुत बड़ी सीख है कि हमको खुद अपनी कायापलट कैसे करनी चाहिए कि हम बिना एक शब्द बोले अपने आचरण से सबको अपनी ओर खींच सकें, उन्हें अपना बना सकें, उनमें विश्वास पैदा कर सकें। जो लोग जनवादी आंदोलन में काम कर रहे हैं उन्हें तो चीन से और भी ज्यादा सीखना है। उनके जिन गुणों पर हम रीझे हुए हैं उन्हीं की बदौलत तो उन्होंने इतनी कामयाबी से अपनी जनता का नेतृत्व किया होगा? तो फिर जब तक हमारे अंदर भी वही दृढता, वही अनुशासन-प्रियता और वही निश्छल सौहार्द और बंधुत्व और मिठास न होगी, हम कैसे अपनी जनता को लेकर आगे बढ़ेंगे!

हिन्दुस्तान और चीन का बहुत पुराना संबंध है। अपने तीन हजार साल के इस संबंध में हमारे बीच कभी कोई युद्ध नहीं हुआ। ज्ञान-विज्ञान का मुक्त आदान-प्रदान हमारे बीच सदा होता रहा। हिन्दुस्तान ने चीन को कभी बौद्ध धर्म और दर्शन दिया था। आज चीन हमको जीवन का नया धर्म और दर्शन दे रहा है, वह हमको राह दिखला रहा है कि हमारे आज के इस सड़े-गले निजाम को, जिसमें रोज़-ब-रोज़ सभी कुछ सड़ता चला जा रहा है,—इंसान की अक्ल और इंसान का ज़मीर तक!—कैसे नया खून और नयी जिंदगी दी

जा सकती है। और प्रवचन द्वारा नही अपने अमल के ज़रिये चीन यह चीज़ करके दिखा रहा है और जिसका जी चाहे जाकर देख आ सकता है और उसमें से फिर जितना कुछ लेना चाहे ले ले बाक़ी छोड़ दे। बहरहाल अगर हमें भी अपने मुल्क में नया समाज और नया इंसान बनाना है तो हम बहुत कुछ चीन से सीख सकते हैं। इसके लिए ज़रूरी है कि इन दो प्राचीन पड़ोसियों में सच्ची दोस्ती हो, गहरी दोस्ती हो और उनके बीच कोई भी दीवारें न खड़ी हों।

पूरब के देशो को नये चीन की शकल में एक बहुत स्नेही और सजग बड़ा भाई मिला है। हिन्दुस्तान और चीन की गहरी दोस्ती विश्व-शाति की सबसे बड़ी गारंटी है। लिहाज़ा मैंने तो ज़िन्दगी की नयी सुबह का जो मीठा, प्यारा, सुहाना गीत वहाँ सुना है, उसकी गूंज मेरे दिल मे यही है कि दोनों को पास से पास से पास लाने के लिए बराबर यत्न करूंगा।